संस्कृतविश्वविद्यालयग्रन्थमालायाः 55 पुष्पम्

संस्कार–प्रकाश

प्रधान–सम्पादक
डॉ० मण्डन मिश्र

लेखक
डॉ० भवानीशंकर त्रिवेदी

शोध–प्रकाशनविभागः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः
नवदेहली–110016

संस्कृत विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला 55 पुष्प

संस्कार-प्रकाश

प्रधान सम्पादक

डॉ. मण्डनमिश्र

★

लेखक

डॉ० भवानीशंकर त्रिवेदी

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय

नवदेहली-110016

प्रकाशकः

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

बी–4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली–110016

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशनवर्षम् : 1986

पुनर्मुद्रण : 2025

ISBN : 81-87987-30-8

मूल्यम् : ₹ 765.00

मुद्रकः

डी.वी. प्रिन्टर्स

97–यू.बी., जवाहरनगरम्, देहली–110007

सम्पादकीय

भारतीय संस्कृति और संस्कृत के तत्त्वज्ञान का प्रचार प्रसार श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये विद्यापीठ शोध, प्रकाशन, शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा विभिन्न प्रयास कर रहा है। विद्यापीठ के शोध एवं प्रकाशन विभाग ने अब तक विभिन्न विषयों से सम्बद्ध ५४ महत्त्व पूर्ण एवं अत्युपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन एक विशेष उद्देश्य को दृष्टि में रखकर हाथ में लिया गया है। जो लोग राष्ट्र की परम्पराओं एवं मर्यादाओं में विश्वास रखते हैं, उनकी सदा से यह मांग रही है कि उन्हें शास्त्रीय पद्धति और आधुनिक दृष्टि से संपन्न कुछ ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हों, जिनके सहारे सांस्कृतिक कृत्यों व संस्कारों आदि का सम्यक् सम्पादन किया जा सके। इस दृष्टि से विद्यापीठ की शोध एवं प्रकाशन समिति ने यह निर्णय किया कि कर्मकाण्ड पर एक ग्रन्थमाला के प्रकाशन का काम हाथ में लिया जाय। जिसके प्रथम पुष्प के रूप में डा० भवानी शंकर त्रिवेदी विरचित नित्य कर्म प्रकाश का प्रकाशन पहले हो चुका है। अब इस ग्रन्थ माला के द्वितीय पुष्प के रूप में उन्हीं के संस्कारप्रकाश नामक इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है।

पांच मयूखों में प्रकाशित इस ग्रन्थ के प्रथम मयूख में संस्कारों के सम्बन्ध में आवश्यक विवेचन-पूर्ण जानकारी द्वितीय में संस्कारों के पूर्वांग तथा आगे विवाह, प्राग्जन्म, शैशव एवं शैक्षणिक संस्कारों का वैज्ञानिक ढंग से विस्तृत विवेचन, उपयोगिता आदि दर्शाए गए हैं। शास्त्रीय पद्धति पर सम्पूर्ण विधि विधान ऊपर संस्कृत में तथा नीचे हिन्दी में दिया गया है। इस ग्रन्थ की एक विशेषता यह है कि इसमें पारस्कारगृह्यसूत्र का मूल पाठ प्रस्तुत करते हुए सूत्रांक भी साथ साथ दिये गये हैं। ऊपर मन्त्र मोटे टाइप में दिये गए हैं तथा नीचे प्रत्येक मन्त्र का सरल हिन्दी में अर्थ भी समझाया गया है। ग्रन्थ के लेखक डा० भवानी शंकर त्रिवेदी संस्कृत और हिन्दी के जाने माने लेखक हैं, उनके पास शास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक दृष्टि भी है। यही कारण है कि यह ग्रन्थ इस रूप में प्रकाशित हो सका है।

इन्हीं दो शब्दों के साथ मैं यह पुस्तक पाठकों को समर्पित करता हूं।

—डा० मण्डन मिश्र

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
सम्पादकीय	डा० मण्डन मिश्र	
आत्मनिवेदन		
भूमिका		
प्रथम मयूख—संस्कार क्या क्यों व परिभाषाएं आदि		१
१. संस्कार लक्षण		३
२. संस्कार कितने व कौन-कौन से ?		६
३. श्रुति स्मृति		११
४. ऋषि, देवता, छन्द		१५
द्वितीय मयूख—संस्कारों के पूर्वाङ्ग		१६-३२
१. स्वस्तिवाचन		
२. गणपत्यादि स्मरण		
३. कर्मकलश		३६
४. ब्रह्मा व आचार्य आदि का वरण		३६
५. दिग्रक्षण, कङ्कणाभिमन्त्रण		३९
६. प्रधान संकल्प		४१
७. महागणपति पूजन		४३
८. गौरी पूजन		५६
९. ॐकार पूजन		५७
१०. कलश स्थापन		५८
११. पुण्याह वाचन		६३
१२. षोडश मातृका पूजन		७१
१३. वसोर्धारा		७२
१४. नान्दी श्राद्ध		७३
१५. नवग्रहादि पूजन		८५
तृतीय मयूख—विवाह संस्कार		
१. संस्कारों के विधिविधान की इस ग्रन्थ में दीगई पद्धति		९९
२. विवाह—उद्देश्य, महत्त्व		
३. प्रारम्भिक तैयारी		१००—१०७
४. गोत्रमिलान, वाग्दान लग्नपत्रिका, कर्त्तव्यविधियां		
५. महागणपति स्थापन, स्तम्भरोपण, वरयात्रा आदि		

अथ विवाह संस्कार विधानम् १०६

पारस्कर गृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे तृतीयकण्डिका

१. अथार्हणा—वरार्चन मधुपर्क, कन्यादान संकल्प, ग्रन्थिबन्धन, दृढ़पुरुष समीक्षण ११०—२७
२. अग्निपूजन, आघाराज्यभाग, महाव्याहृति, सर्वप्रायश्चित्त (पञ्च-वारुणी), स्विष्टकृद् होम, राष्ट्रभृद्होम, जयहोम अभ्यातान होम १२७—३६
३. लाजा होम १४०
४. पाणिग्रहण १४२
५. अश्मारोहण १४३
६. गाथागान १४३
७. अग्नि-परिक्रमा १४३
८. सप्तपदी १४६
९. अभिषेक, सूर्यदर्शन, हृदयालम्भन, ध्रुवदर्शन आदि १५३
१०. आशीर्वचन, पुष्पाञ्जलि, बेटी की बिदाई, पीला नारियल आदि १५८
११. चतुर्थीकर्म, कंकण मोचन आदि १६३

चतुर्थ मयूख—प्राग्जन्म व शैशव संस्कार १५६
१. गर्भाधान १७१
२. पुंसवन संस्कार १७४
३. सीमन्तोन्नयन संस्कार १७८
४. जातकर्म संस्कार १८३
५. षष्ठी पूजा १९४
६. श्रीसूक्त १९६
७. नामकरण, निष्क्रमण, सूर्यपूजा, जलवापूजन २०१
८. अन्नप्राशन संस्कार २१३
९. चूडाकरण संस्कार २२०
१०. कर्णवेध संस्कार २२६

पञ्चम मयूख—शैक्षणिक संस्कार
१. विद्यारम्भ संस्कार २३१
२. उपनयन संस्कार २३४
३. वेदारम्भ संस्कार २६०
४. केशान्त संस्कार २६५
५. समावर्तन संस्कार २६९
६. स्नातक के नियम २८६
ग्रन्थकृदात्मवृत्तम् २८५

आत्म-निवेदन

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

भगवत्कृपा एवं समादरणीय बन्धुवर डा० मण्डनमिश्र जी के सत्प्रयत्न से श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय (अब केन्द्रीय) संस्कृत विद्यापीठ की विद्वत्समिति ने युगीन प्रासंगिकता के अनुरूप वैज्ञानिक व्याख्या-विवेचन युक्त एक ग्रन्थ माला मुझसे लिखवाकर अनेक भागों में प्रकाशित करने का निर्णय लिया था। तदनुसार 'कर्मकाण्ड प्रकाश' नामक उस ग्रन्थ का प्रथम भाग 'नित्यकर्म प्रकाश' स० २०२७ में प्रकाशित भी हो गया। तत्पश्चात् 'संस्कार प्रकाश' की टंकित पाण्डुलिपि का भी विद्यापीठ के विशेषज्ञ समादरणीय विद्वद्वर शिवदास जी ने सम्यक अवलोकन कर तथा यत्र-तत्र उसे आवश्यक टिप्पण्यादि से समृद्ध भी कर दिया। वही ग्रन्थ आज इतने वर्षों बाद इस रूप में विद्वज्जनों को समर्पित करते हुए हर्षातिरेक के साथ विद्यापीठ के प्राचार्य एवं राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के निदेशक सम्मान्य डाक्टर साहब (मण्डन मिश्र जी) के प्रति साशीर्वाद अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना में अपना सर्वप्रथम और प्रमुख कर्त्तव्य समझता हूं।

सोलह वर्ष की इस सुदीर्घ अवधि में निश्चित ही मूल पाण्डुलिपि में यथोचित संशोधनादि हो गया।

पं० भीमसेन शर्मा कृत संस्कारचन्द्रिका, स्वामी सहजानन्द सरस्वती विरचित कर्मकलाप श्री पं० नित्यानंद पर्वतीय कृत संस्कार दीपक व श्री पं० मुकुन्द वल्लभ जी के कर्मठ गुरु आदि ग्रन्थों से मुझे मार्गदर्शन मिला है। पारस्करगृह्य सूत्र का यहां मूलपाठ दिया गया है और उसके भाष्यपञ्चक से भी यथेष्ट सहायता ली गई है। (सम्भवतः निर्णय सागर प्रेस के द्वारा मुद्रित) इस ग्रन्थ की एक प्राचीन प्रति मुझे मेरे ज्येष्ठ पुत्र चि० रविशर्मा (एम० ए०-हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी) ने मुझे बड़े प्रयत्नपूर्वक कहीं से लाकर दे दी। उसी के आधार पर मेरी गाड़ी आगे चल पाई। इसी प्रकार डा० पाण्डुरंग वामन काणे का धर्मशास्त्र का इतिहास आदि बीसियों अन्य ग्रन्थ भी वही मेरे लिए सुलभ करता रहता है। इसी प्रकार चि० रवि के अग्रजकल्प डा० रघुनाथ शर्मा (दिल्ली विश्वविद्यालय) भी नानाविध ग्रन्थ उपलब्ध कराते रहते हैं।

चि० भारतेन्दु ने प्रेस से प्रूफ आदि लाने ले जाने जैसा श्रमसाध्य काम संभाल लिया। तथापि इस ग्रंथ को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने का सम्पूर्ण श्रेय जाता है मेरे कनिष्ठ पुत्र चि० आनन्द शर्मा को, जो मेरे अन्यान्य ग्रन्थों की भांति इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को भी बार-बार संशोधित व परिवर्द्धित रूप में लिखने व टंकित करने के उबाऊ कार्य को भी बड़े प्रेम और

मनोयोग पूर्वक मूर्तरूप में लाने के अथक परिश्रम में सदा जुटा रहता है। वस्तुतः—

गणेशायत आनन्दशर्मा मे आत्मजः सुधीः ।
लिखिताष्टंकिताश्चैव येन मे ग्रन्थराशयः ।।

एक बार फिर बन्धुवर डा० मण्डन मिश्र जी अन्य प्रकार से भी सहायक बने। यह भूमिका लिखते समय उन्होंने विद्वद्वर पूज्य प० पी० एन० पट्टाभिराम जी शास्त्री का एतद-विषयक सद्यः प्रकाशित एक बहुमूल्य ग्रन्थ 'संस्कार विज्ञान' मुझे दे दिया। इस ग्रन्थ की सामग्री व पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती महाराज के द्वारा लिखित इसकी भूमिका मुझे अपने ग्रन्थ की भूमिका लेखन में सहायक हुई।

कर्मकाण्ड और संस्कार सम्बन्धी उपलब्ध ग्रन्थों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

१. जिनमें संस्कारों अदि का शस्त्रीय विधिविधान प्रामाणिक रूप से दिया है।

२. जिनमें इनका वैज्ञानिक विवेचन आदि प्रस्तुत किया गया है।

किन्तु आज तक ऐसा कोई ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया जिसमें शास्त्रीय विधि विधान के साथ वैज्ञानिक विवेचन आदि भी दिया गया हो।

इस ग्रन्थ में इन दोनों प्रकार की सामग्रियों को एक साथ जुटाने का यथामति प्रयत्न किया गया है, क्योंकि विज्ञान के इस युग में विधिवत् कर्म सम्पादन के साथ ही उनका महत्त्व भी समझाया जाना नितान्त आवश्यक हो गया है और तभी हमारे संस्कारों की परम्परा भलीभांति सुरक्षित रह पाएगी। आशा है इन सब दृष्टियों से यह ग्रन्थ कर्मकाण्ड के अध्यापक अध्येता पुरोहित व यजमान आदि सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

अधिकतर प्रचलित पद्धतियों में समिधाधान अमन्त्रक ही लिखा है, किन्तु शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय माध्यन्दिन शाखा के प्रथम अध्याय में ही समिधाधान के मंत्र दिए गए हैं।

समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ।।१।। —यजु०-अध्याय-३, मंत्र-१

आदि मन्त्रों का विनियोग समिधाधान में ही है। यज्ञोपवीत संस्कार में भी बटुक के द्वारा समिधाधान समंत्रक ही किया जाता है।

इस ग्रन्थ को प्रस्तुत रूप में पाकर गुणग्राहक विद्वज्जन प्रसन्न होंगे। अंत में ग्रन्थ को ऐसे सुन्दर रूप में मुद्रित करने के लिए इसके मुद्रक श्री राजेन्द्र तिवारी भी धन्यवादार्ह हैं।

स्थित्वा वर्षाण्यसम्पृक्तश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
सेवितुं संस्कृतां वाचं संस्कृतिञ्च यते पुनः ।।

विद्वज्जनकृपाकांक्षी
भवानीशंकर त्रिवेदी

गुरुपूर्णिम, सं० २०४३
आर्य भारती
जी० १८, दिलशाद कालोनी
दिल्ली-११००३२

भूमिका

संस्कार-महत्त्व व प्रासंगिकता

प्रभो शम्भो दीनं विहितशरणं त्वच्चरणयो
र्भवारण्यादस्माद्विषमविषयाशीविषवृतात् ।
समुद्धृत्य श्रद्धाविधुरमपि बद्धादरकरम्
दयादृष्ट्या पश्यन्निजतनयमात्मी कुरु शिव ॥[1]

—श्रीमदमृतवाग्भवाचार्यपादानाम् ।

संस्कार-परम्परा के सम्यक् निर्वाह के अभाव में आज राष्ट्र में साक्षर जन-समुदाय और उसमें भी सुशिक्षित वर्ग की संख्या न्यून होती जा रही है। निरक्षरता के निवारण के लिए अथक प्रयत्न व अपार धनराशि के व्यय होने पर भी निरक्षरता में कहीं कोई न्यूनता आती तो दिखाई नहीं दे रही। एक समय था—और वह समय कोई बहुत पुराना नहीं है—अंग्रेजों के शासनकाल से पहले तक भी शहरों की तो बात ही क्या हमारे यहां अधिसंख्य ग्रामवासी भी साक्षर व सुशिक्षित होते थे।

पण्डित सुन्दरलाल ने अपने बहुचर्चित ग्रंथ 'भारत में अंग्रेजी राज' के प्रथम भाग में तथा मैक्समूलर ने अपनी विख्यात पुस्तक 'इंडिया वाट् इट कैन टीच अस' में भी इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि भारत के गांव-गांव में विद्यमान ब्राह्मण लोग अपने यहां के प्रत्येक बालक को बिना कुछ लिए-दिए पढ़ाया करते थे और इस प्रकार उन्हें बचपन में ही 'थ्री आर' (लिखना, पढ़ना और गणित) का अच्छा ज्ञान हो जाया करता था।

किन्तु पाश्चात्य सभ्यता और जीवन-पद्धति के भारत में प्रवेश के साथ-साथ हम अपनी परम्पराओं और संस्कृति से ज्यों-ज्यों विमुख होने लगे त्यों-त्यों हमारी निरक्षरता भी बढ़ने लगी।

स्मरण रहे कि हमारे यहाँ विद्या का उद्देश्य केवल साक्षर बना देना या 'थ्री आर' सिखा देना ही नहीं अपितु मानव में सच्चरित्रता आदि मानवीय गुणों व मूल्यों का आधान करना ही है।

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ॥

---

१. सिद्धमन्त्रस्वरूपिणी इस पर शिव-प्रार्थना के प्रातः एवं सायं शयन से पूर्व नित्य नियमित ११ बार पाठ करने से दिव्य फलावाप्ति होती है, यह सुनिश्चित है।

इस जाने पहचाने श्लोक में विद्याध्ययन के साथ ही भारतीय जीवन-दर्शन के कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य सूत्रबद्ध किए गए हैं।

आज का मानव अपने लिए अधिकाधिक-सुविधाएं जुटाने की दौड़ में लगा हुआ है। वह जानता है कि केवल धन ही एक ऐसी वस्तु है, जिससे वह सर्वविध भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न हो सकता है। आज जो हम प्रतिदिन प्रातः उठते ही दैनिक पत्रों में एक से एक बड़े और भयंकर कदाचार, तस्करी, रिश्वतखोरी तथा अन्यान्य प्रकार से अनेक लोगों के द्वारा अनाप शनाप धन एकत्रित करने वालों के घरों पर पुलिस के छापे के समाचार पढ़ते हैं, उन सबका एक मात्र कारण यह है कि हमने अपनी जीवन पद्धति से मुंह मोड़ लिया है। अन्यान्य शास्त्रों की बात जाने दें और केवल 'विद्या ददाति' आदि उक्त श्लोक के अनुसार ही अपने जीवन को ढाल ले तो कोई भी व्यक्ति कदापि किसी कदाचार में लिप्त हो हो नहीं सकता, क्योंकि यहां धनोपार्जन की बात अवश्य कही गई है, किन्तु उसके साथ ही दो शर्तें भी लगा दी गई हैं। पहली तो यह कि वह इस धन की प्राप्ति का अपने आप को पात्र बनाए।

first deserve than desire, साथ ही यह भी कि वह उतने ही की कामना करे जितनें का वह अधिकारी है।

दूसरी बात यह कही गई कि जब धन मिल जाए तो उसका उपयोग वह अपनें ही लिए न करे अपितु उसे धर्म अर्थात् लोकोपकार, शिक्षा तथा समाज सेवा आदि के कार्यों में लगाए, 'धनाद् धर्मः' (अपने कमाए हुए धन से धर्म करे)।

इस प्रकार व्यक्ति का जीवन जब आरम्भ से ही धर्ममय होगा तो उसे आत्मिक व भौतिक सर्वविध सुख अनायास ही प्राप्त हो जाएंगे। 'ततः सुखम्।' अर्थात् वास्तविक सुख धर्म से ही मिल सकता है, पैसा कमाने से नहीं।

अब देखना यह है कि हमारे यहाँ के बालकों को ऐसी उत्तम शिक्षा देने वाली विद्या के लिए क्या-क्या उपाय अपनाए गए थे। इसके उत्तर में कहां जा सकता है कि मनुष्य को सुशिक्षित चरित्रवान् और नैतिकता आदि मानवीय गुणों से विभूषित बनाने के लिए ही एक के बाद एक दूसरे अनेक संस्कारों की व्यवस्था की गई है।

यदि कोई चाहे कि व्यक्ति में नैतिकता आदि गुणों का विकास कुछ ही दिनों में हो जाए तो यह दुराशा मात्र ही है। इसीलिए हमारे यहां जन्म से भी पूर्व गर्भ-से ही जीव को सुसंस्कृत बनाने का उपक्रम आरम्भ हो जाता है। माता-पिता के तथा जीव के अपने जन्मान्तरीय संस्कार तो होते ही हैं, साथ ही उनके खान पान, रहन सहन, आचार विचार और व्यवहार आदि के द्वारा भी वे संस्कार बनते रहते हैं और बनाए जा सकते हैं। गर्भावस्था में जीव को सत्संस्कार सम्पन्न बनाने के उद्देश्य से ही सीमन्तोन्नयन आदि प्राग्जन्म संस्कारों का विधान किया गया है। इस प्रकार ये संस्कार क्षेत्र (माता) और जीव दोनों के हैं। 'दौ-हृद' (जब माता और शिशु दोनों के हृदय एक साथ रहें) अवस्था में इसीलिए पत्नी की सुख सुविधाओं की देखभाल

के साथ ही उसके विचारों को पवित्र बनाये रखने तथा सदा उसे उत्फुल्ल रखने का विधान है। ये प्राग्जन्म संस्कार आज प्राय: उपेक्षित से हैं, किन्तु विचार करने पर इनकी वैज्ञानिकता और उपयोगिता स्वत: सिद्ध हो जाती है।

इसी प्रकार नामकरण आदि शैशव-संस्कारों का भी महत्त्व कुछ कम नहीं है। माना कि बड़ा होने पर बच्चे को अपने इन संस्कारों का प्राय: ज्ञान नहीं रहता, किंतु अपने परिवार के लोगों और सम्बंधियों से वह सुनता रहता है कि तुम्हारे ये संस्कार यथा समय सम्पन्न हुए थे तो उसमें एक प्रकार की उत्कृष्ट मानसिकता स्फूर्त हो जाती है।

तत्पश्चात् शैक्षणिक संस्कारों का सिलसिला चालू होता है। यूं तो भगवान् मनु ने—

'संस्काराद्द्विज उच्यते'

कहकर प्रत्येक संस्कार का समान महत्त्व बताया है और समझाया है कि संस्कारों की शृंखला में यदि किसी एक का भी विलोप होने लगेगा तो धीरे-धीरे सब लुप्त हो जाएंगे। तथापि यह निश्चित है कि द्विजत्वाधायक मुख्य संस्कार मात्र 'उपनयन' ही है। हम इसी एक संस्कार के संकल्प में 'द्विजत्वसिद्धये' पढ़ते हैं। यह भी प्रत्यक्ष है कि यज्ञोपवीत के बाद ही बालक द्विज कहलाने का अधिकारी बनता है।

उपनयन को ही द्विजत्वाधायक क्यों माना गया, इसका विवेचन शास्त्रों में अनेकत्र हुआ है। तथापि यहां संक्षेप में कहा जा सकता है कि यज्ञोपवीत के समय बटु, सर्वात्मना आचार्य के समर्पित हो जाता है और वह उसे नया जन्म देता है। माता-पिता के द्वारा तो बटुक के स्थूल शरीर का ही निर्माण होता है। उसका संस्कारात्मक शरीर निर्मित होता है आचार्य और उसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान के द्वारा। इसके उपनेता आचार्य को बटुक का उपनयन करने से पूर्व स्वयं भी त्रिरात्र कृच्छव्रत रखना होता है, इन दिनों में उसकी भावनाएं ऐसी बनी रहती हैं मानो वह स्वयं बटुक को (नया) जन्म दे रहा है। इस सम्बंध में वेद भगवान् ने सब कुछ स्वयं स्पष्ट कर दिया है—

उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।

अर्थात् व्रतयुक्त आचार्य तीन रात्रि तक ऐसी भावना बनाए रहे कि उसने बटुक को अपने उदर में धारण किया हुआ है। इस प्रकार तीन रात्रि पश्चात् आचार्य के गर्भ से प्रकट हुए (नया जन्म ग्रहण किए हुए) उस ब्रह्मचारी को देखने के लिए स्वयं देवता भी आया करते हैं।

विष्णुस्मृति में वेद के उक्त आदेश को ही—

कृच्छ्रत्रयं चोपनेता त्रींश्च कृच्छ्रान्बटुश्चरेत्।

अपने शब्दों में दुहराया गया है कालिदास ने भी—

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्

कथन का समर्थन किया है। स्मरण रहे कि यज्ञोपवीत से पूर्व बटुक के लिए भक्ष्याभक्ष्य का विपयय हो गया हो, या असत्प्रतिग्रह ग्रहण कर लिया गया हो तो उसके प्रायश्चित्त के लिये ब्रह्मचारी एवं उसके पिता के लिये भी कृच्छ्रत्रय का विधान किया गया है।

बटुक का मुण्डन भी किया जाता है और उसे पंचगव्य आदि खिलाया-पिलाया जाता है। इस प्रकार जब सब प्रकार से शुद्ध, पवित्र और निर्मल रूप धारण किए बटुक विद्याध्ययन के प्रवेश द्वार के प्रतीक सावित्री-उपदेश के लिए गुरु की सेवा में उपस्थित होता है तो लगता है कि सचमुच उसका नया जन्म हो रहा है या अब वह 'द्विज' बन रहा है।

यज्ञोपवीत और उसके तीन सूत्र

'वेञ्'-तन्तु सन्ताने धातु का अर्थ है बुनना। इसीलिए कपड़ा बुनने वाले को तन्तुवाय (धागों से कपड़ा बुनने वाला) कहा जाता है। इसी आधार पर यह कल्पना की गई है कि आरम्भ में यज्ञोपवीत कोई कंधे पर धारण किया जाने वाला वस्त्र-विशेष रहा होगा। किन्तु 'वीत' से ही पंजाबी और हिन्दी का भी 'बटना' भी तो बनता है। रस्सी और धागा बटा जाता है बुना नहीं जाता। इसी आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि आरम्भ से ही उपवीत त्रिसूत्रात्मक रहा होगा। कुछ भी हो यह तो निश्चित है कि उपवीत से हमारा परिचय त्रिसूत्रात्मक रूप में ही हुआ है उससे पूर्व भले ही उसका कुछ भी रूप क्यों न रहा हो। यज्ञोपवीत के सूत्र तीन ही क्यों होते हैं, इसके लिए यू तो वृद्धसारस्वत-ऋषि-प्रोक्त भगवती पराम्बा त्रिपुर सुन्दरी की स्तुति—

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकम्
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः॥

के अनुसार विश्व का सम्पूर्ण त्रिरूप तत्त्व उपवीत के त्रिसूत्र में समाविष्ट है। इसके अतिरिक्त भी आध्यात्मिक आदि अन्य अनेक व्याख्याएं भी यहाँ अभिप्रेत हैं। यज्ञोपवीत में ध्यान देने योग्य पहली बात यह है कि अलग-अलग तीन सूत्र नहीं होते। एक ही सूत्र त्रिगुणित होता है। इसमें सृष्टिविज्ञान निहित है। ब्रह्मैक्यभावापन्न पूज्यपाद आचार्यचरण अमृतवाग्भव जी महाराज ने अपने आत्मविलास में सृष्टि-विकास की प्रक्रिया समझाते हुए लिखा है कि मूल तत्त्व एक ही है आरम्भ में उससे दो तत्त्व (प्रकृति और पुरुष) विकसित होते हैं, ये तीनों सृष्टि-चक्र के आद्य तत्त्व हैं अर्थात् एक तीन बन जाता है। उपवीत में भी एक ही सूत्र त्रिगुणित है। यहां उस एक की प्रतीक ब्रह्मग्रन्थि भी सबसे ऊपर बनी रहती है। उपवीत के एक-एक में पुनः तीन-तीन तन्तु हैं। अभिप्राय यह है कि मूल त्रितत्त्व भी पुनः तीन-तीन की संख्या में विकसित होता है और इस प्रकार 'नव द्रव्यात्मक' जगत् का निर्माण होता

है। इसी के प्रतीक हैं यज्ञोपवीत नौ तन्तु। नौ की त्रिगुणित संख्या २७ है। साख्य-योगोक्त २५ तत्त्वों के ऊपर सदाशिव और शिव तत्त्व हैं। इस प्रकार मूल तत्त्व हुए सत्ताइस।

सृष्टि-चक्र के संचालन में इच्छा, ज्ञान और क्रिया की समन्विति होनी चाहिए। इनके पृथक् रहने से विश्व की एकांगी उन्नति भले हो हो जाय, सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता।

श्रीयुत जयशंकर प्रसाद जी ने कामायनी में इच्छा, ज्ञान और क्रिया इन तीनों बिन्दुओं के एकीकरण का वैज्ञानिक रहस्य समझाने का प्रयत्न किया है।

यज्ञोपवीत की ब्रह्म ग्रन्थि के द्वारा इन तीनों सूत्रों के एकीकरण का यह भी एक रहस्य है। मूलाधार चक्र (जिसका संयोग गुदा से है) से मस्तिष्क प्रदेश की त्रिकुटि में स्थित आज्ञा चक्र तक सीधे स्थित मेरुदण्ड के सहारे हमारा शरीर टिका हुआ है और इस मेरुदण्ड में है इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नामक तीन नाड़ियां। सुषुम्णा में ही षट्चक्र हैं, जिनमें से ग्रीवा में स्थित पांचवे विशुद्धि चक्र से होकर आकाशगुणात्मक शब्द का प्रादुर्भाव होता है और शिव आज्ञा चक्र से ऊपर सहस्रार दल में प्रतिष्ठित है। ब्रह्मरन्ध्र भी यही है। ऊपर ग्रीवा से नीचे कटि या गुदा तक आने वाले उपवीत के त्रिसूत्र इड़ा पिंगला और सुषुम्णा के बाह्य प्रतीक हैं। इन सबसे ऊपर विद्यमान ब्रह्मग्रन्थी है ब्रह्मरन्ध्र का सही सूचक, जहां त्रिगुणात्मक शिव का अधिष्ठान है, यहीं से त्रिगुणमयी ये तीनों नाड़ियां पृथक् होती हैं। ऊपर कण्ठ (विशुद्धि चक्र) से नीचे मूलाधार तक आने वाले उपवीत के त्रिसूत्र अपने में ऐसे अनेक तत्त्व समेटे हुए हैं।

आरम्भ में भले ही उपवीत कोई वस्त्र-विशेष रहा हो, किन्तु सूत्रकाल में और विक्रम की प्रथम शती के आसपास के शूद्रक के समय में उपवीत अवश्य त्रिगुणात्मक ही था, क्योंकि मृच्छकटिक के पात्र शर्विलक को यज्ञोपवीत से सेंध नापने की डोरी का काम लेते हुए दिखाया गया है। कालिदास ने तो विक्रमोर्वशीय में नारद जी के लिये स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उन्होंने चन्द्रमा के समान शुभ्र उपवीत सूत्र धारण किया हुआ था—

संलक्ष्यते शशिकलामलवीतसूत्रः।

—विक्रमोर्वशीय ५-१९

साथ ही त्रिसूत्र व्यक्ति को सदा यह स्मरण दिलाते रहते हैं कि इन त्रिसूत्रों को धारण करने के लिये मुझे, मेरे पिता को और आचार्य को भी त्रिरात्र कृच्छ्रव्रत रखना पड़ा था, अतः इनकी पवित्रता सदा बनाए रखनी है, और इनके द्वारा विहित कर्मों का सदा पालन करना है, तभी इनकी सार्थकता है।

माता के बाद आचार्य के द्वारा इस नए जन्म के समय भी लगभग उन्ही विधि-विधानों की आवृत्ति होती है। जैसे कि जन्म के समय बालक का पिता के द्वारा अग्नि, सोम, ब्रह्म, देव, ऋषि, पितर और समुद्रों से आयुष्यीकरण किया

जाता है तथा प्राणापान, व्यान, उदान और समान इन पंच-प्राणों को समर्पित किया जाता है।

इधर उपनयन में भी आचार्य बटुक को समझाता है कि तुम केवल मेरे ही ब्रह्मचारी नहीं हो अपितु तुम पंचमहाभूत, प्रजापति सविता, औषधी· द्यावापृथ्वी, विश्वेदेव (सभी देवता) और सब भूतों के ब्रह्मचारी हो। मैं तुम्हें इन सबको समर्पित करता हूँ। ये सब तुम्हारी सदा रक्षा और देखभाल करेंगे।

इसके बाद गुरु शिष्य से कहता है—

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु।[1]

अब हमारा और तुम्हारा हृदय एक हो गया है। अब मेरा अध्ययनाध्यापनादि जो व्रत है, वही तुम्हारा भी होगा। इसके साथ ही वह यह भी स्पष्ट करता है कि अब से हम दोनों गुरु और शिष्य साथ ही साथ खाएंगे, खिलाएंगे। अपनी और दूसरों की रक्षा का कार्य भी साथ मिलकर करेंगे। हमारा सभी प्रकार का पराक्रम व उद्योग एक साथ मिलकर ही होगा—

तेजस्वी नावधीतमस्तु

अन्त में यह कि आज से लेकर हम जो कुछ भी अध्ययन करें, हमारा वह स्वाध्याय—वेदवेदांगों का अध्ययन सदा तेजस्वी रहे, हम दोनों का वह ज्ञान कभी मंदप्रभ न हो जाए। जब हम दोनों मिलकर इस प्रकार प्रयत्नशील रहेंगे तो नश्चित ही उनका बह स्वाध्याय ऐसा तेजोदीप्त बना रहेगा जिसके प्रकाश से सारा विश्व जगमगा उठे।

इस प्रकार उपनयन के द्वारा मानव को जिस नए और समुन्नतिशील जीवन में ढालने की प्रक्रिया आरम्भ हुई आगामी १५-१६ वर्षों तक वह निरन्तर विकसित होती रही। वह सर्वांग सम्पन्न होती है अंतिम शैक्षणिक संस्कार-समावर्तन के साथ।

बटु या ब्रह्मचारी लगभग २५ वर्ष की आयु या यूं कहें कि १६ वर्ष तक (जब आज व्यक्ति स्नातकोत्तर आचार्य या एम० ए० आदि उपाधि धारण करता है तक) गुरु के सान्निध्य में रहकर जब गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए परिपक्व और सुयोग्य बन जाता है तो यहाँ पुनः एक बार उसके लगभग जन्मवत् संस्कार और विधि-विधान सम्पन्न किए जाते हैं।

बालक के जन्म लेते ही सर्वप्रथम उसे स्नान कराया जाता है। ठीक वैसे ही स्नातक आठ कलशों में रखे सर्वौषधी[2] युक्त जल से आम्र-पल्लवों के द्वारा स्वयं

---

१. जैसा उपनयन के समय उक्त मन्त्रों के द्वारा गुरु और शिष्य में एकात्म्य भाव स्थापित हो जाता है, ठीक वैसे ही विवाह संस्कार के द्वारा पति-पत्नी के हृदय और मन वचन कर्म का भी एकात्म्य भाव इन्हीं मंत्रों के द्वारा स्थापित होता है, अतः वहाँ भी ये ही मन्त्र पढ़े पढ़ाये जाते हैं।

२. अभिषेक सर्वौषधी एवं पञ्चरत्नयुक्त कलशस्थ जल से ही किया जाता है। कुछ समय, कुछ

अपना अभिषेक करता है। ये आठ कलश आठ चिरजीवियों के प्रतीक हैं। जन्मोत्सव के समय भी ८ चिरजीवियों का पूजन होता है और यज्ञोपवीत में भी इन्हीं आठ चिरजीवियों के निमित्त दक्षिणा आदि से युक्त ८ पात्र ब्राह्मणों को समर्पित किए जाते हैं। तत्पश्चात् जैसे नवजात शिशु को नए वस्त्र पहनाए और सजाया संवारा जाता है। वैसे ही समावर्तन संस्कार के बाद भी उसे नवीन वस्त्र आदि से समलंकृत किया जाता है। इस प्रकार केवल उपनयन ही नहीं अपितु उपनयन, वेदारम्भ और समावर्तन ये तीनों मिलकर 'द्विजत्वाधायक' संस्कार हैं।

जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ में पौनः पुन्येन स्पष्ट किया गया है प्रत्येक संस्कार के समय जो विशिष्ट मंत्र पढ़े जाते हैं उनमें से प्रत्येक का विशेष महत्त्व व उद्देश्य है, और होती है उसकी प्रासंगिकता। जैसे विवाह करने वाले या पत्नी को अपना संगी बनाने वालों के मन में यह वीर भाव होना चाहिए कि हमारी (मेरी या मेरी पत्नी की) ओर जो बुरी नजर से देखेगा, मैं उसे ऐसे ही दबा दूँगा जैसे मैं इस समय इस आसन को अपने नीचे दबाने जा रहा हूँ—

इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति।

इसी प्रकार समावर्तन संस्कार के समय पठनीय मंत्रों की भी विशेष सार्थकता अथ च प्रासंगिकता है। अब तक तो बटुक भैक्ष्य के द्वारा निर्वाह करता आ रहा था[1], किंतु अब समावर्तन के बाद उसे उस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना है, जहां शेष तीनों आश्रमों का भार भी उसे ही बहन करना होगा। उसे उदार और दानी बनना होगा, दान लेने वाला नहीं। इसीलिए इस समय पाठनीय मंत्र में कहा

दिन या कुछ सप्ताह तक ताम्रकलश में पञ्चरत्न और सर्वौषधी के पड़े रहने से तथा कलश के मुख के पञ्चपल्लवाच्छादित रहने से जल कई दिनों तक वैसा ही शुद्ध बना रहता है, यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है ही साथ ही उसमें जो दिव्य गुण आ जाते हैं, उनका भी वैज्ञानिक परीक्षण अपेक्षित है।

१. पहले विद्यार्थियों के पढ़ने-पढ़ाने का सारा भार समाज मिल जुलकर उठाता था और इस प्रकार सभी पढ़ लिखकर योग्य बन जाया करते थे। इसके विपरीत आज अपने काले धन की कमाई का बहुत बड़ा भाग हजारों लाखों रुपए माता-पिता अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में पाश्चात्य शिक्षा एवं रहन-सहन सिखाने के लिए खर्च करते रहते हैं, फिर भी वे अधिक से अधिक सरकारी अधिकारी ही बन पाते हैं या अपने मां-बाप जैसे ही अनैतिक धन्धों में लग जाया करते हैं। कितना अंतर है, भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा पद्धति में, जिसका आज की नई शिक्षाप्रणाली में शहरों के बाद गांवों तक में प्रचार करने का प्रयत्न किया जा रहा हैं। कहां तो हमारी शिक्षा जो आरम्भ से ही दस गुना देते रहने का पाठ पढ़ाती है और कहां पाश्चात्य शिक्षा जो उचित अनुचित सभी उपायों से अधिक से अधिक धन बटोरते रहने को ही जीवन का एक मात्र उद्देश्य समझाती है।

गया है—

दशसनिरसि दशर्सनि मा कुर्यात्……शतसनिरसि
शतर्सनि मा कुर्यात्…सहस्रसनिरसि सहस्रर्सनि मा कुर्यात् ।

('वन् षण्' सम्भक्तौ धातु से निष्पन्न 'सनि' शब्द का अर्थ है देने या बराबर बांटने वाला।)

यहां प्रभु से यह प्रार्थना और कामना भी है कि हे भगवन् आप दसगुणा, सौ-गुणा और हजार गुणा देने वाले हैं इसलिए मुझ में यह सामर्थ्य प्रदान कीजिए कि मैं भी दस गुना सौ गुना और हजार गुना या अनन्त द्रव्य का दान करता रहूँ। (गृहस्थ के अपनी आय में से दशांश दान करते रहने की मूल प्रेरणा ऐसे मन्त्रों में निहित है।)

इसके पश्चात् भी भगवान् मनु ने स्पष्ट कहा है कि कोई भी व्यक्ति द्विज तभी तक कहला सकता है जबकि वह नित्य नैमित्तिक आदि विहित कर्मों का यथा-विधि अनुष्ठान करता रहे।

अपने इन संस्कारों की प्रासंगिकता को इस प्रकार भी समझा-समझाया जा सकता है कि मानव-जीवन रूपी प्रासाद की नींव प्राग्जन्म संस्कारों के द्वारा स्थापित की जाती है। जैसे नीव का पत्थर अदृश्य रहता है फिर भी सारा मंदिर उस पर टिका होता है, वैसे ही सीमन्तोन्नयनादि प्राग्जन्म संस्कार शिशु के जन्म से पूर्व हो जाने के कारण उसे ज्ञात नहीं होते, फिर भी उसके जीवन के निर्मायक मूलाधार होते हैं, शैशव के संस्कार मानो इस जीवन-मंदिर की आधार वेदी के समान हैं और शैक्षणिक संस्कार हैं उस मंदिर के जगमोहन आदि ऊपरी भाग। किन्तु उनका शिखर है विवाह संस्कार। यदि अन्य सब संस्कार सम्पन्न हो भी जाएं, किन्तु विवाह न हुआ तो हमारा जीवन-मन्दिर 'कोणार्क' बनकर रह जाएगा।

सः शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ।

कहने का तात्पर्य यह कि हमारे ये संस्कार परम वैज्ञानिक अथ च मानव-प्रवृत्तियों के उदात्तीकरण में सहायक व मनुष्य को सब प्रकार के कदाचारों से दूर रख कर सर्वदा सदाचारों में प्रवृत्त रहने की प्रेरणा देते रहते हैं। इन संस्कारों के द्वारा मानव को वास्तविक अर्थों में मानव बनाया जाता है। इसी अर्थ में—

संस्कार आज के युग में प्रासंगिक ही नहीं अत्यधिक प्रासंगिक भी हैं।

प्रसाद जी ने अपने महाकाव्य कामायनी का एकमात्र लक्ष्य बताते हुए स्पष्ट निर्देश दिया है—

विजयिनी मानवता हो जाय ।

और यदि मानवता को विजयिनी बनाना है तो हमें इन संस्कारों के प्रति उपेक्षा के भाव को छोड़ना होगा। उनके वास्तविक महत्त्व और वैज्ञानिक स्वरूप को समझकर उन्हें अपनाना होगा तभी हम सच्चा भारतीय कहलाने में गर्व का अनुभव कर पायेंगे और यही है इस जन का विनम्र निवेदन सभी सुधीजनों से।

—भवानीशंकर त्रिवेदी

प्रथम मयूख

संस्कार क्या, क्यों, कितने तथा परिभाषाएँ आदि

संस्कारोल्लिखितो

महामणिसमो

देदीप्यते

मानवः ।

(संस्कारों की शाण पर चढ़कर मानव-जीवन महामणि के समान देदीप्यमान हो जाता है।)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संस्कार-प्रकाश

[प्रथम मयूख]

गणेशं शङ्करं विष्णुं देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
प्रणम्य गुरुपादाब्जे भास्करञ्च षडाननम् ॥१॥

कात्यायनापराह्वेन प्रोक्तं पारस्करेण यत्।
प्रमुखैर्भाष्यकारैश्च सूत्रकारैस्तथापरैः ॥२॥

तदादृत्य समाहृत्य समीक्ष्य च परम्पराम्।
शास्त्राण्याश्रित्य संस्कारप्रकाशोऽयं विरच्यते ॥३॥

संस्कार-लक्षण

संस्करणं सम्यक्करणं वा संस्कारः।

समुपसर्गात् कृञो घञि निष्पन्नोऽयं संस्कारशब्दस्स्वयमेव स्वलक्षणमप्यभिधत्ते। तद्यथा—आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो हीनाङ्गपूरको दोषापमार्जनकरोऽतिशयाधायकश्च विहित-क्रियाजन्योऽतिशयविशेष एव 'संस्कार' इत्युच्यते।

अर्थात् दोषों का निवारण, कमी या त्रुटि की पूर्ति करते हुए शरीर और आत्मा में अतिशय गुणों का आधान करने वाले शास्त्र-विहित क्रिया-कलापों या कर्मकाण्ड के द्वारा उद्भूत अतिशय-विशेष को ही 'संस्कार' कहा जाता है। इस प्रकार मैल, दोष, दुर्गुण एवं त्रुटि या कमी का निवारण कर शारीरिक एवं आत्मिक अपूर्णता की पूर्ति करते हुए गुणातिशयों या सद्गुणों का आधान या उत्पादन ही संस्कार है। संस्कारों से बुराइयां हटती हैं और अच्छाइयां आती हैं।

संस्कारों का महत्त्व बताते हुए 'मनुस्मृति' में कहा गया है—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचूडामौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकञ्चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

अर्थात् द्विजो के गर्भाधान, जातकर्म, चौल और उपनयनादि संस्कारों के द्वारा बीज-गर्भादिजन्य सभी प्रकार के दोषों और पापों का अपमार्जन होता है।

आत्मिक व भौतिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर मानव को मानव बनाने वाले, उसके जीवन को अकलुष एवं तेजोदीप्त बनाकर उसे धर्मार्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए सतत प्रेरित करने वाले यज्ञोपवीत व विवाहादि षोडश संस्कारों का भारतीय-जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोहा हो या सोना सभी धातुओं एवं मणि-माणिक्य आदि रत्नों को घिस-मांजकर, शाण पर चढ़ाकर, कूट-पीटकर या गला-तपा कर चमका दिया जाता है, उन्हें व्यवहार के योग्य बना दिया जाता है तथा गुग्गुल आदि औषधियों को गोमूत्र आदि से संशोधित एवं संस्कारित कर उनकी गुणवत्ता को शत-सहस्र गुना बढ़ा दिया जाता है, ठीक उसी प्रकार मानव-जीवन को भी सुसंस्कारित कर उसे उदात्त गुणों से विभूषित कर दिया जाता है।

'अंगिरास्मृति' में लिखा है कि—

चित्रकर्म यथानेकैरागैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः॥

जैसे सर्वाङ्गसुन्दर चित्र बनाने के लिए—उसके खाके को सजाने-संवारने और सजीव बनाने के लिए—उसमें कई रंग भरे जाते हैं, वैसे ही ब्राह्मण्य के विकास अथवा चरित्र-निर्माण के लिए विधिपूर्वक किए गए संस्कार आवश्यक हैं।

'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।' (माघ)

के अनुसार जीवन के आरम्भिक वर्षों में जो संस्कार बन जाते हैं, वे अमिट होते हैं, इसीलिए १६ में से यज्ञोपवीत आदि १२ संस्कार बचपन में आठ-दस वर्ष की आयु से पहले ही सम्पन्न करने का विधान है। संस्कारों के समय स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ, पुण्याहवाचन तथा गणेशादि देवताओं के पूजन, एवं यज्ञ-हवन आदि के द्वारा तथा वेदमन्त्रों के घोष से सम्पूर्ण वातावरण को पवित्र, सात्त्विक एवं आध्यात्मिक भावनाओं से परिपूर्ण बना दिया जाता है कि संस्कार्य व्यक्ति को तो ऐसा अनुभव होता ही है कि मानो उसके तन-मन में रोम-रोम में एक अभिनव, पवित्र, उदात्त एवं निर्मल भावनाएं संचारित हो रही हैं। साथ ही अन्य उपस्थित जनों में भी सात्त्विक भावों का संचार होने लगता है। यही कारण है कि हमारे संस्कारों में बहुत समय लगता है। विवाह और यज्ञोपवीत आदि संस्कारों में तो कई-कई दिन भी लग जाते हैं।

इस प्रकार संस्कार्य व्यक्ति को परिवार, समाज एवं राष्ट्र के हित-साधन में तत्पर बना दिया जाता है। संस्कारों के द्वारा मनुष्य के मन में आस्तिकता की भावनाएं जागृत एवं प्रतिष्ठित होती हैं और मानव सन्ध्या-वन्दन, जप, हवन आदि नित्य तथा व्रत-पर्व आदि नैमित्तिक कर्मों को यथाविधि सम्पादित करता हुआ अपने जीवन को सरल, सात्त्विक एवं सुखमय बना लेता है। जैसे घिसने-मांजने आदि से भी लोहा सोना तो नहीं बन जाता, तथापि उसे चांदी के जैसा चमकदार तो बनाया ही जा सकता है और उसमें ऐसे गुण उत्पन्न किए जा सकते हैं कि उसे जंग न लग पाए, या मलिनता न आ पाए। ठीक वैसे ही मानव के जन्मान्तरीय संस्कारो को पूर्णतः बदला भले ही न जा सके, किन्तु उनके दोषों या मलिनताओं

का बहुत कुछ अपमार्जन एवं अभिनव सात्त्विक गुणों या अतिशयता का आधान अवश्य ही इन संस्कारों के द्वारा किया जा सकता है।

हमारा तो जीवन ही संस्कारों के तानों-बानों से बना और बुना हुआ है।

'निषेकादि-श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः।'

कहकर मनु ने बताया है कि जीवन को उत्तरोत्तर शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र, सात्त्विक व तेजस्वी बनाए रखने का प्रयत्न निषेक या गर्भाधान से लेकर मृत्यु-पर्यन्त सतत चलता रहता है।

ऊपर से देखने में तो यह बात बड़ी अटपटी-सी लगती है कि गर्भ में आने के साथ ही पहली बार दूसरे मास में और दूसरी बार छठे से आठवें मास में दो-दो बार जीव के संस्कार कर दिए जाएं, किन्तु है यह सर्वथा वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक विधि-विधान। कारण यह है कि माता के गर्भ में रहते हुए जीव को अपना सम्पूर्ण आहार-विहार माता के द्वारा ही ग्रहण करना पड़ता है, गर्भावस्था में माता जो कुछ भी और जैसा कुछ खाती-पीती, सोचती-विचारती, पढ़ती-सुनती या देखती-भालती है, गर्भस्थ जीव पर भी ठीक वैसे ही संस्कार पड़ते रहते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि माता-पिता सदा सजग रहें कि कहीं उनकी सन्तान दोगली न हो—

यन्मे माता प्रममद्यात् यच्चचारावनुव्रतम्।
तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तान्मा भुरण्योपपद्यताम्॥

स्पष्ट है कि गर्भधारण करने के पश्चात् माता के खान-पान, आहार-विहार एवं विचारों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है, उसकी इच्छा और रुचि का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना होता है। उन दिनों उसे किसी प्रकार का शारीरिक और मानसिक कष्ट न पहुंचे, वह स्वस्थ रहे, उसका चित्त प्रफुल्ल और सात्त्विक विचारों से परिपूर्ण रहे। इसका दायित्व केवल पति पर ही नहीं घर की बड़ी-बूढ़ी सदस्याओं तथा सारे परिवार पर समान रूप से रहता है। इन्हीं महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं तत्त्वों को ध्यान में रखकर ही हमारे ऋषियों ने गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन इन तीन प्राग्जन्म-संस्कारों का विधान किया है।

इसी प्रकार जातकर्म, नामकरण, मुण्डन व यज्ञोपवीत आदि अन्य संस्कारों का भी अपना महत्त्व है।

संस्कार कितने और कौन-कौन से हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि हमारे ४८ संस्कार हैं और उन्हें १. ब्राह्म और २. दैव इन दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया गया है। हारीत ने कहा है—

'द्विविधो हि संस्कारो-ब्राह्मो दैवश्च। गर्भाधानादि-स्मार्तो ब्राह्मः पाकयज्ञहविर्यज्ञ-सौम्याश्च दैवः। ब्राह्मेण संस्कारेण ऋषीणां सलोकतां समानतां सायुज्यतां वा गच्छति इति।

गर्भाधानादि 'स्मार्त' संस्कारों को 'ब्राह्म' इसलिए कहा गया है कि उनके सम्पादन से मानव में ब्राह्मणोचित गुणगण एवं वैशिष्ट्य का आधान होता है।

'महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।'

(मनु के इस कथन में 'तनु'-शरीर-शब्द से तनु से अविच्छिन्न आत्मा का भी बोध होता है, यह कुल्लूक भट्ट की टीका में स्पष्ट कर दिया गया है।) इसीलिए इन ब्राह्म संस्कारों का प्राधान्य है। पाक-यज्ञादि इक्कीस संस्कारों को दैव-संस्कार इसलिये कहा जाता है कि उनके सम्पादन से देवत्व या देव-सदृश गुणों का आधान हो जाता है। कहा गया है कि—

'दैवेन संस्कारेण देवानां समानतां सालोक्यतां सायुज्यतां सारूप्यतां वा गच्छति।'

आश्विन, पौष, माघ और फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को सम्पादित होनेवाले 'अष्टका' तथा चैत्र, श्रावण, आश्विन और अग्रहायण या मार्गशीर्ष की पूर्णिमा की सम्पादित होनेवाले चैत्री, आश्वयुजी, श्रावणी आग्रहायणी तथा पार्वण व एकोद्दिष्टश्राद्ध ये सात पाकयज्ञ संस्थाएं, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास-इष्टि, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढ-पशुबन्ध और सौत्रामणि ये सात हविर्यज्ञ-संस्थाएं तथा अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र व आप्तोर्याम ये सातों सोमयज्ञ-संस्थाएं कुल मिलाकर इक्कीस दैव-संस्कार हैं। हविर्यज्ञादि चौदह संस्कार या यज्ञ गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि नामक श्रौताग्नियों के द्वारा सम्पादित होते हैं और इनका विधि-विधान श्रौत-सूत्रों के अनुसार सम्पन्न होता है। किन्तु यज्ञोपवीत आदि ब्राह्म या स्मार्त संस्कार गार्हपत्य या लौकिक अग्नि के द्वारा ही सम्पादित होते हैं। दैवसंस्कारों को श्रौतसंस्कार या यज्ञकर्म एवं ब्राह्मसंस्कारों को स्मार्त या गृह्यसंस्कार भी कहा जाता है।

सोलह प्रमुख ब्राह्म या स्मार्त-संस्कारों का परिगणन 'व्यासस्मृति' में इस प्रकार किया गया है—

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमोऽन्न-प्राशनं वपनक्रिया॥

कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥
त्रेताग्निसङ्ग्रहश्चेति संस्काराः षोडशः स्मृताः ।[1]

महर्षि अंगिरा ने उक्त षोडश संस्कारों के साथ पंचमहायज्ञ, अष्टका, श्रावणी, आश्वयुजी, आग्रयण, वेदारम्भ, वेदोत्सर्जन, प्रत्यवरोहण तथा दार्श-श्राद्ध का परिगणन कर २५ प्रमुख संस्कार बताए हैं। उन्होंने बलिकर्म और निष्क्रमण इन दोनों का भी षोडश संस्कारों में परिगणन किया है।

महर्षि गौतम ने गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, ४ वेदव्रत, स्नान (समावर्तन), सहधर्मचारिणी-संयोग (विवाह) तथा पंच महायज्ञों का अनुष्ठान इन १९ ब्राह्म-संस्कारों के साथ उपर्युक्त २१ दैव-संस्कारों का परिगणन कर ४० संस्कार बताए हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने दया, शान्ति, अनसूया, शौच, मंगल, अकृपणता, अस्पृहा और अनायास इन आठ आत्मगुणों का परिगणन कर कुल ४८ संस्कार बताए हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से उक्त सोलह स्मार्त संस्कारों को—

(क) प्राग्जन्म-संस्कार (ख) शैशव-संस्कार
(ग) शैक्षणिक-संस्कार (घ) गृहस्थ-प्रवेश-संस्कार

इन चार पृथक्-पृथक् वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

(क) **प्राग्जन्म-संस्कार**—१. चतुर्थी-कर्म या गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन। ये तीनों **'प्राग्जन्म-संस्कार'** कहे जाते हैं।

इनकी कुछ चर्चा ऊपर हो चुकी है।

(ख) **शैशव-संस्कार**

१. **जात-कर्म**—माता तथा उसके नवजात शिशु को प्रसवकालीन अशौचावस्था और असहायता के समय सहज सावधानी और अपेक्षित सुरक्षित सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए जात-कर्म संस्कार का विधान किया गया है। सबसे पहली बात तो यह है कि प्रसव के लिए उपयुक्त सूतिका-भवन का विधान किया गया है। विष्णु-

---

१. जातुकर्ण्य ने अन्त्येष्टि को १६ वां संस्कार बताया है—

आधानपुंससीमन्तजातनामान्नचौलकाः ।
मौञ्जीव्रतानि गोदानसमावर्तविवाहकाः ॥
अन्त्यं चैतानि कर्माणि प्रोच्यन्ते षोडशैव तु ।

पारस्कर, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि. गोभिल, जैमिनि, और कौशीतकि (शांखायन) आदि गृह्यसूत्रों में कहीं भी अन्त्येष्टि को संस्कार नहीं माना गया। अतः इस पुस्तक में भी व्यासोक्त षोडश संस्कारों का प्रतिपादन किया गया है।

धर्मोत्तरपुराण में कहा गया है कि सूतिका-भवन का निर्माण वास्तु-विद्या-विशारदों द्वारा समतलभूमि में किया जाना चाहिए। प्रसूतिका के कमरे का दरवाजा पूर्व या उत्तर में हो तथा वह कमरा सब प्रकार से सुसज्जित हो।

(२) **मेधाजनन-संस्कार**—इससे नवजात शिशु के बौद्धिक-विकास की कामना की जाती है। इस अवसर पर जिन तीन महाव्याहृतियों का उच्चारण करते हैं, वे बुद्धि की प्रतीक हैं और इनका प्रयोग गायत्री-मन्त्र के साथ किया जाता है, जिसमें प्रभु से बुद्धि को प्रेरित करने की प्रार्थना की गयी है। नवजात शिशु को सुवर्ण की शलाका से मधु तथा घृत चटाया जाता है और उसकी जिह्वा पर 'ॐ' लिखा जाता है। मधु घृत और सुवर्ण इन तीनों पदार्थों का भी वैज्ञानिक महत्त्व है। पिता नवजात शिशु के दाहिने कान के पास आयुष्करण मन्त्र पढ़ता है।

(३) **नामकरण-संस्कार**—हमारे ऋषि-मुनियों ने नाम के महत्त्व को भली-भांति समझकर १६ संस्कारों में नामकरण-संस्कार को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। नामकरण के बारे में कुछ निश्चित सिद्धान्त निर्धारित कर दिए हैं। जैसे कि नाम ऐसे रखे जाएं जो सुनने व बोलने में सरल और सुखदायक हों। इसी प्रयोजन के लिए स्वर और व्यंजन भी निश्चित कर दिये गये हैं। ये नाम यश, ऐश्वर्य और शक्ति आदि गुणों के सूचक व देवतावाचक होने चाहिए।

(४) **निष्क्रमण-संस्कार**—सूतक-निवृत्ति के पश्चात् यथासमय माता तथा नवजात शिशु को सूतिका-गृह से बाहर लाने तथा उन्हें शुद्ध वायु तथा धूप में चलने-फिरने की अनुमति या सामर्थ्य का परिचायक है, यह संस्कार।

(५) **अन्नप्राशन-संस्कार**—इस संस्कार का प्रयोजन यह है कि माता शिशु को एक निश्चित समय पर स्तन्यपान कराना छुड़ा दे और उसे अन्नादि भोजन का आरम्भ करा दे। साथ ही यह भी कि निश्चित समय पर बालक को अन्न खिलाया जाए। छठे मास तक एक ओर तो बालक को अपेक्षाकृत अधिक और विभिन्न प्रकार के आहार की आवश्यकता होती है और दूसरी ओर माता का दूध क्रमशः घटने लगता है। अतः माता और शिशु दोनों के हित को ध्यान में रखकर यह निश्चय किया गया कि छठे महीने में या बालक की पाचन-शक्ति विकसित होने पर अथवा दांत निकल जाने पर अन्नप्राशन-संस्कार किया जाए।

(६) **चूडाकरण (मुण्डन) संस्कार**—एक बार बालक के जन्मजात सब या अधिकतर बालों को मुंडवा देने से दोबारा सुन्दर और स्वस्थ बाल निकल आते हैं। साथ ही इससे किसी प्रकार के चर्म-रोग आदि की सम्भावना भी नहीं रहती। यदि किसी प्रकार का रोग हो तो उसकी चिकित्सा भी की जा सकती है। एक निश्चित समय के बाद बच्चों के बाल बढ़े हुए न रहें, उन्हें समय-समय पर कटवा दिए जाएं, ताकि वे स्वस्थ और सुन्दर रहें। इस उद्देश्य से भी यह विधान किया गया है कि यथासमय बालक का चूडाकरण या

मुण्डन-संस्कार किया जाए। पहले वर्ष के अन्त में या तीन वर्ष का पूरा होने से पहले बालक का चूड़ाकरण-संस्कार करना चाहिए। चूड़ा या चौल का अर्थ है चोटी या शिखा। चोटी को छोड़कर एक बार सिर के सब बालों को मुंडा कर बालक-बालिका की अच्छी चोटी रखवा देना ही चूड़ाकरण-संस्कार का मुख्य उद्देश्य है।

(७) **कर्ण-वेध-संस्कार**—तीसरे या पांचवें वर्ष में कर्णवेध का विधान किया गया है। आजकल तो प्रायः लड़कियों के ही कान छेदे जाते हैं, पर पहले पुरुष भी कानों में आभूषण पहनते थे, अतः समय पर कर्णवेध-संस्कार लड़कों का भी होता था।

(ग) **शैक्षणिक-संस्कार**—

(१) **उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार**—प्राचीन आर्य-प्रजाजनों के जीवन में इस संस्कार का अत्यधिक महत्त्व है। यह संस्कार एक प्रकार से इस बात का प्रमाणपत्र है कि बालक की बुद्धि इतनी विकसित हो चुकी है कि वह वेदादि शास्त्रों को भी पढ़ सकता है। इस संस्कार को बालक का दूसरा जन्म ही माना जाता है, क्योंकि यज्ञोपवीत के बाद बालक का नया जन्म ही होता है। वह खेल-कूद में समय गंवाना छोड़ पूर्ण मानव और उससे भी बढ़कर महाविद्वान् बनने के महान् उद्देश्य को सामने रखकर जीवन के क्षेत्र में अग्रसर होता है। साथ ही वह यह भी समझने लगता है कि मुझ पर कुछ दायित्व है और उन्हें मुझे निभाना है। सबसे पहले तो उसे यह जानना होता है कि जिन माता-पिता ने मुझे जन्म दिया, पाला-पोसा और बड़ा किया उनके प्रति मेरा कुछ कर्तव्य है, उनका ऋण मुझे चुकाना है। उसके बाद उसे इस बात का ध्यान रखना होता है कि जिन ऋषि-मुनियों, आचार्यों और गुरुजनों की कृपा से मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ, मैं पशु से मानव बना, उनके प्रति भी मेरा कुछ कर्तव्य है, उनके ऋण से मुझे उऋण होना है। और सबसे बड़ी बात तो यह कि जिस समाज में वह पला, पोसा और बड़ा हुआ उस समाज तथा जिन अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवों और परब्रह्म परमात्मदेव की कृपा से वह सब प्रकार से भुक्ति-मुक्ति का अधिकारी बनने में समर्थ हो सकता है, उनका भी उसके जीवन पर महान् ऋण है।

यज्ञोपवीत के ३ तार इस प्रकार बताते हैं कि देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण से उऋण होने के लिए उसे जीवन में बहुत कुछ करना होगा। आज तो लोग मैट्रिक, इण्टर तो क्या बी.ए. पास कर लेने के बाद भी अपने जीवन का कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं कर पाते। किन्तु हमारे संस्कारों के विधि-विधान में यह व्यवस्था की गयी है कि मानव-जीवन निरुद्देश्य न रह जाए। व्यक्ति के जीवन के प्रमुख उद्देश्यों को निर्धारित करने में यज्ञोपवीत-संस्कार का बहुत बड़ा हाथ है। ये तीन सूत्र ब्रह्मग्रन्थि में एकत्र होकर जीवन में ज्ञान, कर्म और उपासना के समन्वय का भी संकेत करते हैं।

(२) **वेदारम्भ**—उपनयन के साथ ही यह संस्कार भी किया जाता है।

(३) **केशान्त**—प्राचीन समय में ब्रह्मचारी प्रायः बाल नहीं कटाते थे। पर जब दाढ़ी-मूंछ

निकलनी शुरू हो जाती थी तो कोई ब्रह्मचारी चाहे तो सोलहवें वर्ष से दाढ़ी-मूंछ मुंडाना (शेव कराना) आरम्भ कर सकता था। यह संस्कार प्रथम बार दाढ़ी-मूंछ मुंडाते समय किया जाता था। उस अवसर पर उन्हीं सब विधि-विधानों का प्रयोग होता था, जो मुंडन संस्कार में होता है। आजकल यह संस्कार भी प्रचार में नहीं है।

(४) **समावर्तन या स्नान-संस्कार**—कहा गया है कि **'वेदं समाप्य स्नायात्'**। तद्नुसार 'स्नातक' की उपाधि प्रदान करते समय यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इसके बाद ब्रह्मचारी विद्याध्यन समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की तैयारी करता है। आजकल सुप्रचलित 'स्नातक' शब्द का रहस्य भी यही है।

(घ) **गृहस्थ-प्रवेश संस्कार**—विवाह और अग्न्याधान। इन दोनों का विवेचन आगे यथा-स्थान किया जाएगा।

संस्कार अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं, अपितु ये तो ऐसे साधन हैं, जिनके सम्यक् सम्पादन से नैतिक गुणों का विकास होता है। यही कारण है कि इन संस्कारों में जीवन की प्रत्येक अवस्था के लिए आवश्यक एवं उपयुक्त नियम या धर्म भी निर्धारित किए गए हैं। जैसे-गर्भिणी-धर्म, अनुपनीत-धर्म, ब्रह्मचारी-धर्म, स्नातक-धर्म तथा गृहस्थ-धर्म आदि। वास्तव में अभ्युदय और निःश्रेयस के ये संस्कार परम साधन हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

□

श्रुति और स्मृति : परिभाषाएँ

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम् ।।

मनु के इस कथनानुसार हमारा धर्म 'श्रौत-स्मार्त धर्म' है। फलतः हमारे सभी संस्कार या कर्म श्रुति-स्मृति-विहित हैं, अतः हम सबको अपने इन श्रुति (वेद) व स्मृति या धर्मशास्त्रों के बारे में सामान्य जानकारी होनी ही चाहिए। श्रुति और स्मृति की परिभाषा बताते हुए भगवान् मनु ने कहा है कि वेद को 'श्रुति' और धर्म-शास्त्र को 'स्मृति' कहा जाता है—

श्रुतिवदस्तु विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।

इससे स्पष्ट है कि वेद का नाम ही श्रुति है।

आपस्तम्ब ने वेद की परिभाषा बताते हुए कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण का नाम ही वेद है—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम् । (आपस्तम्ब, परिभाषा-३१)

वेद वस्तुतः एक ही प्रकार का है किन्तु स्वरूप-भेद के कारण उसे तीन प्रकार का कहा जाता है—ऋक्, यजुः और साम[1]। जैसा कि कहा गया है: —

"वेदं तावदेकं सन्तं···व्यासेन समाम्नातवन्तः" (निरुक्त दुर्गवृत्ति १/२०)

अर्थात् एक ही वेद को अनेक या तीन रूपों में व्यस्त या विभक्त कर दिया गया।

ऋग्वेद—

जिन मन्त्रों में अर्थवशात् पाद-व्यवस्था है, उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम ऋक् या ऋचा है —

तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था । (जै. सू. २/१/३५)

सामवेद—

इन ऋचाओं पर जो गायन गाए जाते हैं, उन गीतिरूप मन्त्रों को साम कहते हैं—

'गीतिषु सामाख्या' (जै. सू. २/१/३६)

वेद या वेद के मन्त्र-भाग को 'संहिता' इसलिए कहा जाता है कि इनमें मन्त्रों का समूह संहित या संकलित है। ये मन्त्र-संहिताएं ऋक्, यजु, साम और अथर्व नामक चार हैं।

---

१. **वेदत्रयी** और **वेदचतुष्टयी** का व्यवहार हमारे यहां प्रचलित है। अतः चौथा अथर्ववेद भी सर्वमान्य है।

यजुर्वेद—

यजुः यजतेः। अनियताक्षरावसानो यजुः।
'गद्यात्मको यजुः।' अथवा 'शेषे यजुः'।
(जै. सू. २/१/३७)

इन सभी परिभाषाओं के द्वारा यही तथ्य प्रतिपादित हुआ है कि शतपथ-ब्राह्मण में यज्ञ-भागों के प्रसङ्ग में जिन ऋचाओं या मन्त्रों के पाठ का विधान किया गया है, उन्हीं का संकलन यजुर्वेद-संहिता में कर दिया गया है।

वेदों की शाखाएं

व्यास जी ने अपने शिष्य पैल को ऋग्वेद, जैमिनि को सामवेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद तथा दारुण सुमन्तु मुनि को अथर्ववेद का अध्ययन कराया। इन मुनियों के शिष्य प्रशिष्यों ने वेद की संहिताओं का जो प्रचार किया, उसके फलस्वरूप वेद-कल्पवृक्ष की अनेक शाखाएं पल्लवित हुईं। महाभाष्य में लिखा है कि ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की एक सौ एक, साम की एक हजार तथा अथर्व की नौ शाखाएं हैं—

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः।
एकशतमध्वर्युः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः।
एकविंशतिधा बह्वृचम्। नवधाऽथर्वणो वेदः।
(महाभाष्य, पस्पशाह्निक)

वेदों का अध्ययन करनेवाले प्रारम्भिक मुनियों ने अपनी परम्परा में उच्चारण पद-विन्यास तथा मन्त्रों के क्रम व संख्या में अपना-अपना एक विशेष क्रम एवं स्वरूप अपनाया था। इसी के फलस्वरूप वेदों की इतनी शाखाएं बन गईं। जैसे कि ऋग्वेद की शाकल शाखा में दस सौ सत्तरह और वाष्कल में दस सौ पच्चीस सूक्त हैं। इसी प्रकार विभिन्न गायन पद्धति के आधार पर सामवेद की एक हजार और अथर्ववेद की नौ शाखाएं बन गईं।

इस प्रकार यज्ञ-यागों के अनुष्ठान के लिए विनियोग-वाक्यों व मन्त्रों आदि का जिनमें समावेश रहता है, उनको यजुष् कहते हैं।

'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।
(शत० ब्राह्मण० १४/६/५/३३)

तथा— **ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससङ्ग्रहम्।**
चक्रे स परिशेषञ्च हर्षेण परमेण ह॥
कृत्वा चध्यायनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम्।
विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः॥ (म० भा० शा० अ० ३,८)

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि शुक्ल यजुर्वेद के मन्त्रों का संकलन तथा शतपथब्राह्मण के मन्त्रों का प्रणयन वैशम्पायन के शिष्य एवं भानजे योगी याज्ञवल्क्य ने किया था। यजुर्वेद

के १-आदित्य सम्प्रदाय अथवा शुक्ल-यजुर्वेद और २-ब्रह्म-सम्प्रदाय अथवा कृष्ण-यजुर्वेद नामक दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं। इन दोनों में अन्तर यह है कि शुक्ल-यजुर्वेद में दर्शपूर्णमास आदि अनुष्ठानों में प्रयुक्त होनेवाले आवश्यक मन्त्रों का ही संकलन है, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ ही साथ तन्नियोजक ब्राह्मणभाग भी दे दिया गया है। इसीलिए इसे कृष्ण या शबलित कहा जाता है। शुक्ल-यजुर्वेद को ही 'वाजसनेयी संहिता' भी कहते हैं। शुक्ल-यजुर्वेद की माध्यन्दिन तथा काण्व ये दो शाखाएं उपलब्ध हैं।

उत्तरभारत में माध्यन्दिन तथा महाराष्ट्र आदि में काण्व-शाखा का प्रचलन है। कृष्ण-यजुर्वेद की (१) तैत्तिरीय (२) मैत्रायणी (३) कठ और (४) कपिष्ठल कठ ये चार शाखाएं हैं।

याज्ञवल्क्य से मध्यन्दिन आदि जिन २५ ऋषियों ने शुक्लयजुर्वेद का अध्ययन किया, उनका नाम भी इसके साथ जुड़ गया। याज्ञवल्क्य के पिता का नाम था वाजसनिः (वाज अर्थात् अन्न, सनि वितरित करने वाला, अन्न को बांटनेवाला)। वाजसनि का पुत्र होने के कारण याज्ञवल्क्य को 'वाजसनेय' कहा जाता है। इसलिए शुक्ल-यजुर्वेद की इस संहिता का पूरा नाम हुआ 'माध्यन्दिन वाजसनेय शुक्ल-यजुर्वेद संहिता।'

आरण्यक और उपनिषद् भी अधिकांशतः ब्राह्मण ग्रन्थों के ही अन्तिम भाग हैं। 'बृहदारण्यक' उपनिषद् इस नाम से स्पष्ट है कि अरण्य या ऋषि मुनियों के आश्रमों या तपोवनों में ही उनका विशेष रूप से अध्ययन होता था इसलिए उपनिषदों को आरण्यक भी कहा जाता था।

इस प्रकार मन्त्र या संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् इन चारों का एक संयुक्त नाम 'वेद' या 'श्रुति' है। शंकराचार्य आदि ने अपने ग्रन्थों में अनेकत्र उपनिषद् वाक्यों को जो 'श्रुति' कहा है, उसका कारण भी यही है।

वेदाङ्ग

हाथ-पांव आदि अङ्गों के बिना जैसे मनुष्य वैसे हो शिक्षा, व्याकरण, कल्प, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष इन छः वेदाङ्गों के बिना वेद भी अपूर्ण है। इनमें से कल्प (सूत्रों) में श्रौत और स्मार्त कर्मों या यज्ञानुष्ठान एवं संस्कार आदि के विधि-विधान हैं। ये कल्पसूत्र मुख्यतः—(१) श्रौतयज्ञों का विधान करने वाले श्रौत-सूत्र तथा (२) यज्ञोपवीत, विवाहादि संस्कारों के प्रतिपादक गृह्यसूत्र, (३) वर्णाश्रमों तथा राजाओं के कर्तव्यों के प्रतिपादक धर्म-सूत्र और (४) विविध यज्ञ-कुण्डों के आकार-प्रकार तथा माप-परिमाण आदि का प्रतिपादन करने वाले शुल्व-सूत्रों के भेद से चार प्रकार के हैं। प्रायः सभी वेदों के अपने-अपने कल्प-सूत्र भी हैं। जैसे ऋग्वेद के आश्वलायन और शांखायन। शुक्लयजुर्वेद के कात्यायन-श्रौतसूत्र और पारस्कर-गृह्यसूत्र हैं।

कात्यायन और पारस्कर एक ही हैं

गुजराती मुद्रणालय से प्रकाशित भाष्यपञ्चकसहित पारस्कर-गृह्य-सूत्र की भूमिका में स्पष्ट कहा गया है कि—

'पारस्कर इति भगवतः कात्यायनस्यैवाभिधानान्तरम्' ।

इसके समर्थन में पारस्कर गृह्यसूत्र के—

अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म ॥१॥

इस प्रथम सूत्र की व्याख्या करते हुए कर्काचार्य आदि भाष्यकारों ने स्पष्ट लिखा है—

'आदौ तावत्सूत्रकृता श्रौतान्याधानादि-कर्माण्युक्तानि स्मार्तानि चाभिधीयन्ते ।' तत्रायमथशब्द आनन्तर्ये द्रष्टव्यः श्रौतविधानान्तरं स्मार्तान्यनुविधीयन्त इति ।

इससे स्पष्ट है कि एक ही आचार्य ने कात्यायन नाम से 'श्रौतसूत्रों' का और पारस्कर के नाम से 'गृह्यसूत्रों' का प्रणयन किया है ।[1]

पारस्कर-गृह्यसूत्र के—(१) कर्क, (२) जयराम, (३) हरिहर, (४) गदाधर और (५) विश्वनाथ, ये पांच पुराने भाष्यकार हैं । इनमें से मेवाड़ निवासी[2] जयराम ने मन्त्रों की व्याख्या भी बड़ी प्रामाणिकता से की है । इस पुस्तक में प्रायः उन्हीं के आधार पर मन्त्रार्थ दिए हैं ।

धर्मशास्त्र

श्रुति या वेद-वेदाङ्गों के इस संक्षिप्त परिचय के साथ इतना और जान लेना आवश्यक है कि हमारे धर्म का दूसरा तत्त्व या आधार 'स्मृति' है । ये स्मृतियां भी अनेक हैं । इनमें से थे १८ प्रसिद्ध हैं: —

मनुर्बृहस्पतिर्व्यासो गौतमोऽथ यमोऽङ्गिराः । योगीश्वरः प्रचेताश्च शातातपपराशरौ ॥
संवर्तोशनसौ शङ्खलिखितावत्रिरेव च । विश्वापस्तम्बहारीता धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥

यहां 'योगीश्वर' से योगी याज्ञवल्क्य अभिप्रेत है ।

---

१. तथापि सुविख्यात आह्निक सूत्रावलि में कात्यायन और पारस्कर को पृथक्-पृथक् ही नहीं अपितु पारस्कर को कात्यायन की शिष्य परम्परा में बताते हुए लिखा है कि—
याज्ञवल्क्यशिष्यपरम्परायां द्वापरे पुत्रत्वेन दत्तः कात्यायनो नाम ऋषिरभवत् । तेन च वाजसनेयशाखिनां श्रौताग्निकर्मसाधनपद्धतिदर्शकानि सूत्राणि··· ······कृतानि । तदनुरोधेनैवेदानीन्तनानां वाजसनेयिनामाधानादि श्रौतं कर्म प्रवर्तते । तथा कात्यायन-शिष्यानुयायी पारस्करनामा परमर्षिः कलेरारम्भकाले जातः । तेन स्मार्ताग्निकर्मपद्धति-निदर्शकानि सूत्राण्युपनिबद्धानि । तदनुरोधेनैवेदानीं वाजसनेयिनां गर्भाधानादिषोडश-संस्कारकर्माणि प्रवर्तन्ते । (नारायणशर्मविरचित आह्निकसूत्रावलि, पृष्ठ ३८५)
इति कथनस्य मूलन्तु मृग्यम् ।

२. जयरामश्च मेवाड़ो भारद्वाजसगोत्रकः ।

ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग

कहा गया है कि प्रत्येक मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द विनियोग तथा प्रत्येक मन्त्र के अर्थ को भली भाँति जाने बिना यजनाध्ययनजपादि नहीं करने चाहिएं। और यह भी कि इन सबको जानकर जो कार्य करता है, वह अतिथिवत् पूज्य होता है और देवताओं का सायुज्य प्राप्त कर लेता है। यथा —

दानहेमाद्रौ मदनरत्ने च याज्ञवल्क्यः—

यश्च जानाति तत्त्वेन आर्षं छन्दश्च दैवतम्।
विनियोगं ब्राह्मणं च मन्त्रार्थज्ञानमेव च ॥
एकैकस्य ऋषेः सोऽपि वन्द्यो ह्यतिथिवद् भवेत्।
देवतायाश्च सायुज्यं गच्छत्यत्र न संशयः ॥

इसके विपरीत जो इन्हें जाने बिना यजनादि कार्य करता है, उसका फल अल्प होता है—

अविदित्वा तु यः कुर्याद् यजनाध्ययनं जपम्।
होममन्तर्जपादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत् ॥

अतः यहाँ ऋष्यादि के बारे में भी कुछ जान लेना उचित होगा।

ऋषि—

मन्त्र का साक्षात्कार या दर्शन करने के कारण ऋषि को ऋषि कहा जाता है, इसलिए निरुक्त में कहा गया है—

ऋषिर्दर्शनात्। तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भवभ्यानर्षत्, त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते। (निरुक्त २।३)

इससे स्पष्ट है कि ऋषि मन्त्रों के रचयिता नहीं, अपितु द्रष्टा या साक्षात्कर्ता हैं। ऋषि और मुनि में यह अन्तर है कि ऋषि स्वयं मन्त्रद्रष्टा होता है, जबकि मुनि ऋषियों से प्राप्त मन्त्रों या मन्त्रार्थों का मनन करने वाला होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर निरुक्त में कहा गया है—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। (निरुक्त १।६)

इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए याज्ञवल्क्य ने भी कहा है—

येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च यैन वै ।
मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तमृषेर्भावस्तदार्षकम् ॥

इसीलिए संहिताओं के साथ प्रयुक्त होने वाली तैत्तिरीय, काठक, शाकल, वाजसनेयी आदि आख्या उनके ग्रन्थकर्तृत्व के कारण न होकर प्रवचन के कारण है। जैसा कि जैमिनि-सूत्र में कहा गया है—

'आख्या प्रवचनात् ।' (जैमिनि सूत्र १।१।३०)

यहाँ प्रवचन से तात्पर्य यह है कि इन ऋषियों ने तत्तद् मन्त्रसंहिताओं का प्रथम उपदेश किया। निरुक्त, व्याकरण और कल्प आदि वेदाङ्गों के रचयिता व्यास, पाणिनि, कात्यायन आदि को 'मुनि' कहा जाता है, ऋषि नहीं।

छन्द—

मन्त्रों अथवा ऋचाओं की रचना छन्दोमय है। और ये छन्द गायत्री, अनुष्टुप् आदि अनेक हैं। गायत्री सबसे छोटा २४ अक्षरों का छन्द है। ८-८ अक्षरों के अनुष्टुप् छन्द के विचार से २४ अक्षरों में ३ ही पद बनते हैं, इसलिए गायत्री मन्त्र को 'त्रिपदा गायत्री' कहते हैं। छन्द के बारे में कहा गया है—

"छादनाच्छन्द उद्दिष्टं वाससी इव चाकृतेः ।"

वेदों को भी 'छन्दः' कहा जाता है। पाणिनि ने अपने सूत्रों में 'छन्दसि' शब्द का प्रयोग वेद के अर्थ में ही किया है। 'छन्दः' शब्द केवल सामवेद के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, इसीलिए सामगान करनेवाले सामवेदियों को 'छन्दोग' कहा जाता है। 'छान्दोग्य' उपनिषद् का नाम भी इसी आधार पर है।

देवता—

मन्त्र का प्रतिपाद्य तत्त्व, तथ्य, विषय-वस्तु या व्यक्ति ही उस मन्त्र का देवता है। इसीलिए कहा गया है—

यत्कामा ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति ।
(निरुक्त ७-१)

विनियोग—

किसी कार्य के सम्पादन में कौन-सा मन्त्र प्रयुक्त है, अथवा किस मन्त्र से कौन-सा कार्य किया जाय, यही विनियोग है। जैसे कि—

पुराकल्पे समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थमेव च ।
अनेन चेदं कर्त्तव्यं विनियोगः स उच्यते ॥

ऋष्यादि के ज्ञान का महत्त्व बताते हुए कात्यायन ने कहा है—

एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवति···अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवत्, अथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति। (कात्यायन सर्वानुक्रम सूत्र, अध्याय-१)

क्या ऋष्यादि का उच्चारण आवश्यक है ?

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि ऋष्यादि का ज्ञान आवश्यक है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि विवाहादि संस्कारों में मन्त्र पढ़ते समय प्रत्येक मन्त्र के पहले ऋषि, देवता और छन्द का भी उच्चारण किया जाए। इसी तथ्य को स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित करते हुए आश्वलायन ने कहा है कि—

ऋषिदैवतछन्दांसि प्रणवं ब्रह्मयज्ञके।
मन्त्रादौ नोच्चरेत् श्राद्धे यागकालेऽपि चैव हि॥

स्मृतिमहार्णव में भी कहा गया है—

ऋषिश्च्छन्दो यजुषान्नैव कारयेत्।

अन्यत्र यह वचन भी उपलब्ध है—

अग्निहोत्रे वैश्वदेवे विवाहादिविधौ तथा।
होमकाले न दृश्यन्ते प्रायश्च्छन्दर्षिदेवताः॥

इसलिए इस ग्रन्थ में मन्त्रों के ऋष्यादि ऊपर कोष्ठक ( ) में तथा छोटे टाइप में दे दिए गए हैं, ताकि उनका ज्ञान हो जाए, किन्तु कर्मकाल में उन्हें पढ़ना आवश्यक नहीं है।

□

मण्डप तथा वेदी आदि

'पञ्चसु बहिःशालायां विवाहचूडाकरण उपनयने केशान्ते सीमन्तोन्नयन इति।'

पारस्कर के इस आदेशानुसार विवाहादि प्रमुख संस्कार घर के अन्दर या छत के नीचे सम्पन्न नहीं किए जाते, अपितु बहिःशाला या मण्डप में ही किए जाते हैं। इसके लिए चार खम्भों से युक्त चारों ओर से खुला मण्डप बनाया जाता है। इस मण्डप को केले के खम्भों तथा पत्र-पुष्पादि से अलंकृत या सुसज्जित किया जाता है।

'विवाहोत्सवयज्ञेषु मण्डपं कल्पयेत्सुधीः।
सर्वविघ्नविनाशाय सर्वेषां चित्ततुष्टये॥
मण्डपेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः।
कार्यः षोडशहस्तो वा न्यूनहस्तो दशावधिः॥ इति
सप्तर्षिमतेन मण्डपं गृहमानतो (वामतो वा) विधेयम्।
चतुःस्तम्भसमायुक्तं कूजद्भिर्वातयोगतः।
मनोहरद्भिः सर्वेषां प्रेक्षकाणां समन्ततः॥ (ब्रह्मपुराण)

मण्डप में यज्ञवेदी के ऊपर एक वर्गाकार पीले वस्त्र का वितान या चन्दोवा तान दिया जाता है।[1] (विवाह मे मण्डप मुख्यतः कन्या-पक्ष में ही बनता है, अतः उसे ही 'माण्डा' मन्डपवाला पक्ष-) भी कहा जाता है।

यज्ञवेदी

यह मण्डप के ठीक बीचों-बीच यजमान, वर या वधू के (हस्तमान) एक हाथ या चौबीस अंगुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी वर्गाकार तथा चार अंगुल ऊँची मिट्टी बिछाकर बनाई जाती है। उस पर हल्दी, कुंकुम (रोली) और आटे आदि से सुन्दर रंगीन कमल पुष्प या सर्वतोभद्र चक्र बनाकर उसे अलंकृत कर दिया जाता है। वेदी के परिमाण के बारे में गृह्य-संग्रह में लिखा है—

उपलिप्ते महीपृष्ठे चतुर्विंशाङ्गुलायता।
वेदी वैवाहिकी कार्या चतुरङ्गुलमुच्छ्रिता॥ (गृह्यसंग्रह)

---

१. विवाह में इसके बीचो बीच एक दूसरे पर उलटी की गई मिट्टी की ठूठियां या दीपक रख उनके ऊपर कुछ पूड़ियाँ भी रस्सी में पिरोकर टाँग देते हैं तथा मण्डप की एक तनी या रस्सी को बारात के विदा होने से पूर्व वर के हाथ से खुलवा कर विवाह-समाप्ति की सूचना दे दी जाती है। ये दोनों प्रथाएँ हैं।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं स्थण्डिले वा समाचरेत् ।
हस्तमात्रेण तत्कुर्याद् बालुकाभिः सुशोभनम् ॥
(शारदातिलक)

एक हाथ को 'अरत्नि' कहते हैं। जैसा कि—

अङ्गुलस्य प्रमाणन्तु षड् यवाः पार्श्वसम्मिताः ।
चतुर्विंशाङ्गुलोऽरत्निर्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः ॥

कौतुकागार (माया)

विवाह आदि में जिस स्थान पर गणपत्यादि देवताओं तथा कलश आदि की स्थापना की जाती है, उसके लिए 'कौतुकागार' इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया जाता है। राजस्थान आदि प्रान्तों में इसे ही 'माया' और उत्तरप्रदेश में 'कहोवर' कहते हैं। सूत्र ग्रन्थों में बताया गया है कि वरार्चन से लेकर यज्ञ या हवन के आरम्भ से पूर्व तक की सम्पूर्ण विधि कौतुकागार में ही सम्पादित की जाए। कौतुकागार की आवश्यकता बताते हुए कहा गया है—

यज्ञोत्सवविवाहेषु विधायादौ च मण्डपम् ।
धर्मदिक् पश्चिमे भागे कौतुकागारमुत्तमम् ॥

कुशकण्डिका

भूमि-पूजन के पश्चात् निर्मित वेदी पर यज्ञ के लिए अग्नि-स्थापना करने से पूर्व उस वेदी का जिस स्त्रुव तथा कुशा आदि से परिसमूहन, परिमार्जन अथवा संशोधन आदि किया जाता है, इसे कुशकण्डिका कहते हैं।

ऋत्विग्गण—

ऋत्विक् का शब्दार्थ है प्रत्येक ऋतु में या ऋतु के अनुसार यज्ञ या यजन-याजन करने वाला ऋतु+यज्=ऋत्विज् (ऋत्विक्)। प्रत्येक यज्ञ-याग में और संस्कारादि में चार ऋत्विक् रहते हैं। जैसा कि कहा गया है—

नवग्रहमखे कुर्याद् ऋत्विजश्चतुरः पुमान् ।
अथवा चैकमभ्यर्च्य विधिना ब्रह्मणा सह ॥ (स्कन्दपुराण)

और यह भी कहा गया है कि—

ऋत्विजोऽष्टौ च चत्वारो द्वावप्येकस्तथैव च ।

भाव यह कि संस्कार यज्ञादि में समसंख्यक (२, ४, ६, ८) या एक ही ऋत्विज रह सकता है, जबकि पितृ-कर्म में विषम संख्या (३, ५, ७,) के ब्राह्मण निमन्त्रित किए जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि १. ऋग्वेद के मन्त्र पढ़ने वाले तथा उसके ज्ञाता 'होता', २. यजुर्वेद के ज्ञाता 'अध्वर्यु', ३. सामवेद के ज्ञाता 'उद्गाता' तथा ४. चारों वेदों के ज्ञाता और मौनभाव

से सारे कर्म की न्यूनाधिकता का निरीक्षण तथा त्रुटियों आदि से सावधान करने वाले 'ब्रह्मा' इन चारों को ही ऋत्विज' कहा जाता है। आजकल प्रायः आचार्य ही मन्त्र पढ़ता है और अपने सहायक (अध्वर्यु) तथा अपने यजमान को सब विधि-विधान का निर्देश करता है, इसीलिए आचार्य आदि का वरण किया जाता है।

पात्रासादन—

यज्ञोपयोगी उपकरणों को यथास्थान रखना 'पात्रासादन' कहलाता है। यज्ञ के ये उपकरण प्रमुखतया तीन प्रकार के होते हैं—(क) यज्ञ-पात्र, (ख) कुशा और तन्निर्मित वस्तुएं (ग) हवनीय द्रव्य शाकल्य आदि तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ।

(क) **यज्ञपात्र**—अनेक प्रकार के यज्ञपात्रों में से आचमनी, पञ्चपात्र स्रुवा, प्रोक्षणी-पात्र, पूर्णपात्र व आज्यस्थाली प्रमुख हैं। इनमें से आचमनी और पञ्चपात्र, सन्ध्या-वन्दन आदि में प्रयुक्त होने से सभी सद्गृहस्थों के यहाँ सदा उपलब्ध रहते हैं। स्रुवा लकड़ी का एक हाथ लम्बा एक प्रकार का चम्मच है, यह विकन्त (शमी), पलाश, अश्वत्थ, वट, उदुम्बर, बिल्व, चन्दन, सरल, शाल, देवदारु, खदिर और वेतस आदि याज्ञिक वृक्षों में से किसी एक की लकड़ी का बना हुआ होना चाहिए। 'खादिरः स्रुवः', तथा 'अरत्नीमात्रः स्रुवोंऽगुष्ठपर्ववृत्तपुष्करः' कात्यायन के इस निर्देशानुसार स्रुवा अरत्नी (२४ अंगुल या एक हाथ) लम्बा खैर का बना हुआ होना चाहिए। प्रोक्षणी व प्रणीतापात्र भी इन्हीं यज्ञीय वृक्षों के बने हुए पात्र-विशेष हैं, किन्तु सामान्यतया दो कटोरियों या दोनों से ही इनका काम चला लिया जाता है। प्रोक्षणी-पात्र को यज्ञवेदी और प्रणीता के मध्य में यजमान के बांये हाथ के सामने रखा जाता है। हुतशेष या संस्रव की बूंदें प्रोक्षणी पात्र में ही टपकायी जाती हैं और यज्ञ-समाप्ति के पश्चात् संस्रव-प्राशन किया जाता है या इन घी की बून्दों को सूंघ लिया जाता है। प्रोक्षणी और प्रणीता-पात्र कहां रखें जाएं, इसके लिए कहा गया है—

'निदध्यात्प्रोक्षणीपात्रं सपवित्रमसञ्चरे।'

इस 'असञ्चर' शब्द की व्याख्या भी वहीं कर दी गई है—

'यदन्तरं प्रणीताग्न्योरसञ्चारस्तु स स्मृतः।'

प्रोक्षणी के जल से प्रोक्षण (देवतीर्थ या दायें हाथ की चारों अंगुलियों से ऊपर को छींटे देना) किया जाता है। प्रणीता के जल से अभ्युक्षण (हथेली को नीचे कर के वेदी आदि पर जल के छींटे देना) किया जाता है। चारों ओर जल के छिड़कने को 'पर्युक्षण' कहते हैं। **पूर्णपात्र**—ब्रह्मा आदि को संस्कारादि सम्पन्न कराने के पश्चात् दक्षिणा के रूप में 'पूर्णपात्र' और 'वर' प्रदान किया जाता है। यह 'वर' तो ब्राह्मणादि विभिन्न वर्णों के यजमानों के लिए गौ आदि पशु या उनके खरीदे जाने योग्य अथवा यथाशक्ति द्रव्य हैं। किन्तु पूर्णपात्र सबके लिए एक-सा ही बताया गया है—परार्ध्य (१५६ मुट्ठी) या अपरार्ध्य (उसके आधे) चांवलों से भरा ताम्बे का पात्र 'पूर्णपात्र' कहलाता है।

अष्टमुष्टिर्भवेत्किञ्चित्किञ्चिदष्टौ तु पुष्कलम्।
पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं प्रचक्षते ॥

खूब खाने वाला व्यक्ति एक बार में जितना खा सके उसे भी 'अपराध्यं' कहा जाता है। घी भर कर जिस पात्र में रखा और यज्ञवेदी पर तपाया जाता है, उसे 'आज्यस्थाली' कहते हैं। जिसमें 'चरु' या 'स्थालीपाक' पकाया जाता है उसे 'चरुस्थाली' कहते हैं।

(ख) कुशा और तन्निर्मित वस्तुएं—यज्ञ, हवन, पूजन आदि सभी धार्मिक अनुष्ठानों में कुशा का प्रमुख स्थान है। सभी धार्मिक विधियां कुशा के आसन पर बैठकर सम्पन्न की जाती हैं। इसके अतिरिक्त पवित्र, विष्टर, परिस्तरण-कुशा, सम्मार्जन-कुशा, उपयमन-कुशा, तथा ब्रह्मा या 'कुशबटु' आदि का निर्माण भी कुशाओं से ही किया जाता है। यज्ञादि में जड़ सहित कुशा का ही उपयोग होता है। 'पवित्रे' के बारे में कहा गया है कि :—

अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।
प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्रकुत्रचित् ॥

(छन्दोगपरिशिष्ट)

और यह भी कि—

'कुशतरुणे अविषमे अविच्छिन्नाग्रे अनन्तगर्भे प्रादेशमात्रं मापयित्वा कुशैश्छिनत्ति' इति।

भाव यह कि जैसे किसी पतली रस्सी को दूसरी रस्सी के फन्दे में डाल झटककर तोड़ दिया जाता है, वैसे ही किसी जड़ में मिले हुए दो पत्तों वाली कुशा को (यदि अधिक पत्ते हों तो उन्हें तोड़कर केवल दो ही पत्ते रहने दिये जाते हैं) एक प्रादेश-मात्र मापकर उसके ऊपर से तीन कुशाओं से बनाए हुए फन्दे में डालकर उसे दूसरे हाथ से पकड़कर झटके से तोड़ दिया जाता है। इसी प्रादेशमात्र कुशा को 'पवित्र' कहते हैं।

अनामिका में पहनी जाने वाली दो पत्तियों की कुशा की अंगूठी को भी 'पवित्रे' कहते हैं। ब्रह्मा और विष्टर—

पञ्चाशद्भिर्भवेद् ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः।
ऊर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः।
दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तु विष्टरः।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ५० या अपरिगणित कुशाओं के अग्रभाग को दायें घुमाकर एक ब्रह्मग्रन्थि लगा देने से 'ब्रह्मा' बन जाता है, इसे ही 'कुशबटु' भी कहते हैं। किसी पात्र में चांवल भरकर उसे ब्रह्मा के स्थान पर प्रतिष्ठित कर देते हैं (कुशब्रह्मा को तो प्रतिष्ठित किया जाता ही है, भले ही ब्रह्मा के पद के योग्य विद्वान् ब्राह्मण उपलब्ध भी हो)। इसी प्रकार २५ कुशाओं को बाएं घुमाकर उनके सिरे पर गांठ लगा दी जाती है, उसे 'विष्टर' कहते हैं।

समिधात्रय की आहुति के समय तीन, पांच या सात कुशाएं बाएं हाथ में लिए रहते हैं, उन्हें 'उपयमन-कुशा' तथा अग्नि पर तपाने के बाद स्रुव की राख झाड़ने वाले ५ कुशाओं के गुच्छे को 'सम्मार्जन-कुशा' कहते हैं। यज्ञकुण्ड या वेदी के चारों ओर बिछायी जाने वाली कुशा को 'परिस्तरण-कुशा' कहते हैं।

(ग) हवनीय द्रव्य—घृत, शाकल्य (हवन सामग्री) या चरु (स्थली पाक) से यथावसर हवन किया जाता है। शुद्ध घृत (यथासम्भव गौघृत) तिल और जौ अथवा तिल, जौ और चावल में घृत शर्करा और सूखा मेवा मिलाकर शाकल्य बनाया जाता है।

प्रस्थं धान्यं चतुःषष्टिराहुतेः परिकीर्तितम्।
तिलानां तु तदर्धं स्यात्तदर्धं तु घृतस्य च॥
व्रीहीणां च यवानां च शतमाहुतिरिष्यते।

और यह भी कि—'तिलार्धास्तु यवाः प्रोक्ताः।' (अनुष्ठान प्रकाश)

स्थालीपाक, चरु

प्रायः 'शाकल्य' और 'चरु' पर्यायवाचक समझ लिए जाते है, किन्तु 'चरु' 'शाकल्य' (आम या कच्चा हविष्यान्न) को नहीं अपितु 'स्थालीपाक' को कहते हैं। 'स्थालीपाक' के लिए छन्दोग-परिशिष्ट में लिखा है कि :—

श्रपयेत सवत्सायास्तरुण्या गोः पयस्यनु।

'अनु' इति ओदनचरोः पश्चात्। ततश्च संस्कृते वह्नौ गोक्षीरेण चरुः पच्यते।

(शारदा-तिलक)

व्रीहीन्यवान्वा······यथान्तरुष्मणा सम्यक् पाको भवति गालनं न भवति, दाहश्च न भवति। सम्यक् पाके भूते मध्ये घृतस्रुवं दत्वाग्नेरुत्तरतः कुशोपरि स्थापयित्वा पुनर्मध्ये घृतस्रुवं दद्यात्। स्थाल्यां पच्यते इति 'स्थालीपाकः।'

आशय यह है कि यज्ञवेदी की अग्नि पर चांवल या कुटे-छंटे तुष-रहित जौ को स्थाली में ऐसे पकाया जाता है कि उनके दाने कुछ खड़े रहें। पकते समय उसमें गोघृत तथा उसके बाद गो-दुग्ध मिला दिया जाता है। नीचे उतारने के बाद भी स्थालीपाक या चरु में थोड़ा घृत मिलाया जाता है।

किन्तु सीमन्तोन्नयन में चांवलों के साथ मूंग और तिल को मिलाकर 'स्थालीपाक' बनाया जाता है।

'अर्थवदासाद्य' कह कर पारस्कर ने इन्हीं वस्तुओं को यथास्थान रखने का आदेश दिया है। इसे ही 'पात्रासादन' कहते हैं।

अन्वारम्भ—

यज्ञ करते समय ब्रह्मा अपने दाहिने हाथ में पकड़ी कुशा से यजमान या वर के दाहिने

कन्धे या भुजा को स्पर्श किये रहता है, इसे ही 'अन्वारम्भ' कहते हैं।

'अन्वारम्भश्च दक्षिणहस्तेन दक्षिणबाहौ कार्यः तत्रापि कुशेन कार्यः।'

(पारस्कर-गृह्यसूत्र, गदाधर-भाष्य)

देवतीर्थ आदि—

हवन करते समय शाकल्य की आहुति देवतीर्थ से दी जाती है, अर्थात् हाथ में कोई वस्तु लेकर जैसे किसी को अपने हाथ से खिलाया जाता है, वैसे ही चारों अंगुलियों पर शाकल्य भर कर सीधे हाथ से आहुति देना या सङ्कल्प का जल आदि छोड़ना 'देवतीर्थ' से कार्य करना कहलाता है। देवतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ आदि के लिए कहा गया है—

कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्य तु।
प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥

पञ्चगव्य—

पञ्चगव्य का विधान यह है कि गोमय और गोघृत समानभाग तथा गोमय से दुगुना गोमूत्र और उससे त्रिगुणित दही तथा उससे द्विगुणित दूध उतना ही गङ्गाजल या कुशजल मिलाया जाता है। पहले गोमय और गोमूत्र को मिलाकर कपड़े से छान लिया जाता है और उन्हें दूध, दही आदि में मिला दिया जाता है—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चगव्यं यथाविधि।
पावनार्थे द्विजातीनामिहलोके परत्र च ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यञ्च पवित्रं कायशोधनम् ॥

मूत्रस्यैकपलं दद्यात्तदर्धं गोमयं स्मृतम्।
क्षीरं सप्तपलं दद्याद् दधि त्रिपलमुच्यते ॥

आज्यस्यैकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम्।

(पाराशरस्मृति अ. ११, श्लोक २८, ३४, ३५)

पञ्चामृत—

दूध, दही, घृत, शहद और शर्करा को मिलाकर पञ्चामृत बनाया जाता है।

मधु-पर्क—

शहद, दही और घृत के योग से बनता है। इनका परिमाण एक, दो, तीन रहता है।

पञ्चपल्लव—

आम, जामन, अशोक, बकुल, (मौलश्री) और प्लक्ष के पत्तों को पञ्चपल्लव कहते हैं।

अन्यत्र पीपल आदि अन्य पत्तों का भी विधान है। जैसे कि—

आम्रजम्बुकपित्थानां बीजपूरक-बिल्वयोः।
गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥

अथवा

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः ।
पञ्चपल्लवमित्युक्तं सर्वकर्मणि शोभनम् ॥
तथा— पनसाम्रे तथाश्वत्थं वटं बकुलमेव च ।

पञ्चरत्न—

सोना, चांदी, लाजावर्त, मूंगा और मोती को पञ्चरत्न कहते हैं। अकेला स्वर्ण भी पञ्चरत्न का प्रतिनिधित्व करता है। ये जौहरियों के यहां से पूजा के लिए उपलब्ध हो जाते हैं।

सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्तं प्रवालकम्।
रत्नपञ्चकमाख्यातं धर्मशास्त्रे स्फुटं बुधैः ॥

सप्तधान्य (सतनाजा)—

जौ, गेहूं, चना, तिल, मूंग, कंगनी और सावां को सप्तधान्य कहते हैं :—

यवगोधूमधान्यानि तिलाः कंगुश्च मुद्गकाः।
श्यामाकाश्चणकाश्चैव सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥

सप्त मृतिका—

हाथी, घोड़ा, और गौ के निवास की या उनके पैरों की मिट्टी, चौराहा, तालाब, नदीतट और बल्मीक (बांबी) की मिट्टी को सप्तमृत्तिका कहते हैं।

सर्वौषधि—

कूट, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, तालीसपत्र, चन्दन, बच, चम्पा और नागरमोथा को सर्वौषधि कहते हैं।

कङ्कण-बन्धन—

विवाह में वर-वधू का कङ्कण-बन्धन किया जाता है, इसी को 'कङ्गना बांधना' कहते हैं। दूब, जौ अथवा यवाङ्कुर, खस, हल्दी, अम्बाहल्दी, सफेद सरसों, मोरपंख, आम्रपल्लव, सांप की केंचुली और लाख व लोहे का छल्ला; इन सबको एक लाल कपड़ की छोटी-सी पोटली में बांध कर उसे त्रिगुणित बटी हुई मौली के साथ वर के दायें हाथ तथा वधू के बायें हाथ में गणपति-स्थापना वाले दिन बांधा जाता है और विवाह के पश्चात् चतुर्थीकर्म

वाले दिन वर-वधू को परात में दूध की लस्सी डाल कर उसमें से कौड़ी ढूंढकर निकालने आदि लौकिकाचारों के बाद खोल दिया जाता है। यज्ञोपवीत के समय बटुक के तथा इन दोनों अवसरों पर परिवार की अन्य सभी सधवा महिलाओं के हाथों में भी कङ्कन बांधा जाता है। भविष्यपुराण में कङ्कण की निम्न नौ वस्तुएं बताई हैं :—

दूर्वा यवाङ्कुराश्चैव वालकं चूतपल्लवाः।
हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः ॥
कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृताः।

अहत-वस्त्र—

सभी धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के समय अहत-वस्त्र धारण करने का विधान है। यदि रेशमी या ऊनी वस्त्र हो तो बिना पहले पहने सर्वथा नये व बिना धुले वस्त्र को; और सूती हो तो धोबी से नहीं, अपितु घर में धुले वस्त्र को 'अहत-वस्त्र' कहते हैं।

अधौते कारुधौते वा परिदध्यान्न वाससी।
अहतं तु परिदध्यात् सर्वकर्मणि संयतः ॥
ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्।
अहतं तद् विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥

इसके किनारे पर क्षीर (बिना बुनी हुई छोटी-सी धारी) होनी चाहिए।

ग्रन्थि-बन्धन—

वर के दुपट्टे तथा वधू की ओढ़नी या साड़ी आदि में कुछ दक्षिणा व कुछ माङ्गल्य वस्तुएं रख कर गांठ लगा दी जाती है। इसे ग्रन्थि-बन्धन कहते हैं। सभी यज्ञादि कर्म पत्नी को अपने साथ बैठाकर ही किए जाते हैं, उस समय भी पति-पत्नी का ग्रन्थि-बन्धन किया जाता है।

वामाङ्ग दक्षिणाङ्ग—

सामान्य अवस्था में पत्नी सदा पति के वामाङ्ग में रहती है, किन्तु पूजा यज्ञादि देव-कार्यों में उसे पति के दायें बैठाया जाता है, क्योंकि दायां हाथ पवित्र माना जाता है। स्मृति-सङ्ग्रह में कहा गया है कि—

व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने।
व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे ॥
आशीर्वादेऽभिषेके च पादप्रक्षालने तथा।
शयने भोजने चैव पत्नी तूत्तरतो भवेत् ॥

□□□

गोत्र और प्रवर

यूं तो गोत्रों की संख्या अत्यधिक है, किन्तु उनमें से ४९ गोत्र प्रमुख हैं। अपने गोत्रप्रवर्तक ऋषि की नई पुरानी अन्य पीढ़ियों में दूसरे भी कई मन्त्रद्रष्टा गोत्रप्रवर्तक ऋषि हो गए हैं, इन्हें ही 'प्रवर' या अपने लिए माननीय ऋषि कहा जाता है। किसी गोत्र का एक, किसी के तीन और किसी के पांच प्रवर होते हैं। इसकी स्थायी पहचान के लिए यज्ञोपवीत में एक, तीन या पांच तदनुसार गांठें लगाई जाती हैं। इन प्रवरों के आधार पर ही विभिन्न ऋषि-गोत्रों की ठीक-ठीक पहचान की जा सकती है।

यजुर्वेदी और सामवेदी :—

कश्यपः काश्यपो वत्सः शाण्डिल्यश्च धनञ्जयः।
पञ्चैते साम गायन्ति यजुरध्यायिनोऽपरे॥

के अनुसार उक्त पांच गोत्रवाले 'सामवेदी कौथुमीय शाखा' तथा शेष सब 'माध्यन्दिन वाजसनेय शाखीय यजुर्वेदी' हैं। ऋग्वेदी तथा अथर्ववेदी अधिकतर दक्षिणभारत में मिलते हैं, कुछ उत्तर भारत में भी हैं। इन सभी शाखाओं के संस्कारादि में जहां-तहां छोटे-मोटे अन्तर पाए जाते हैं, किन्तु प्रधान कर्म एक से ही हैं।

सपिण्ड और सगोत्र—

जो यह कहा गया है कि वर और वधू एक दूसरे के सपिण्ड और सगोत्र नहीं होने चाहिएं, उसमें 'मुद्‌गल' 'भरद्वाज' आदि आर्ष गोत्रों का विचार नहीं किया जाता, अपितु अपने कुल-गोत्र, 'अवटंक' या 'अल्ल' को ही देखा जाता है। सपिण्ड का अर्थ सात पीढ़ियां हैं। विवाह आदि में वर के गोत्र के रूप में उसके कुलगोत्र या 'अवटंक' को ही लिया जाता है और ये 'कुलगोत्र' अनगिनत हैं। बोधायन ने लिखा है—

'गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।'

विवाह में ऋषिगोत्र नहीं अपितु कुलगोत्र ही देखना चाहिए, इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए महामहोपाध्याय पण्डित नित्यानन्दजी ने अपने 'संस्कारदीपक' में लिखा है कि—

'गोत्रशब्दो न अगस्त्याष्टमसप्तर्ष्यपत्यत्वरूपगोत्रत्वावच्छिन्नमात्रस्य वाचकः किन्तु ज्ञायमानैककुलोदभवत्वविशिष्टत्ववाचकः।'

भाषा में सामान्य रूप से जिसे उपगोत्र, 'अल्ल' या 'अवटंक' कहा जाता है, शास्त्रों में उसे हीं 'गण' कहा गया है। प्रवरदर्पण में लिखा है—

'अत एव नामैकत्वेऽपि गणभेदे प्रवरभेदें च ऋषीणां भेदाद् भवत्येव विवाहः।'

और

'त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः।

इस बृहस्पति-वाक्य में भी 'गोत्र' शब्द से कुलगोत्र ही अभिप्रेत है।

निष्कर्ष यह कि विवाह में वर के वर्ज्य गोत्र के लिए सम्पूर्ण कुलगोत्र (अवटंक या अल्ल) तथा सूतक आदि में गोत्र शब्द से सपिण्ड (सात पीढ़ी) ही अभिप्रेत है।[1]

□

१. गोत्रों की विशेष चर्चा 'नित्यकर्म-प्रकाश' पृष्ठ २९ से ३३ तक देखें।

संस्कारों तथा शुभ कार्यों के लिए

सर्वोपयोगी आवश्यक सामग्री

१, नवग्रह एवं मातृका आदि के लिए लकड़ी के तीन पाटे (पटड़े) या चौकी। २. मातृकाओं के लिए लाल, नवग्रहों के लिए सफेद एवं नारियल पर लपेटने के लिए पीला वस्त्र। ३. घर के मुख्य द्वार तथा मण्डप आदि के लिए आम या अशोक के पत्तों की बनी हुई बन्दनवार। ४. माचिस ५. रुई ६. दीपक ७. धूप ८. अगरबत्ती ९. रोली-कुंकुम १० मौली-लच्छा ११. केशर १२. कपूर १३. नैवेद्य १४. पान १५. सुपारियां १६. अक्षत १७. पुष्प १८. पुष्पमाला १९. ऋतुफल २०. गङ्गाजल २१. यज्ञोपवीत २२. पिसी हल्दी २३. आटा २४. पञ्चगव्य २५. पञ्चामृत २६. पीली सरसों २७. पत्तल २८. दोने २९. सकोरे ३९. नारियल (शुष्क तथा पानी वाला) ३१. कुशा ३२. दूर्वा ३३. समिधा ३४. सप्तधान्य ३५. पञ्चपल्लव ३६. तुलसी ३७. छायापात्र हेतु कांसे की कटोरी ३८. चन्दोवे के लिए वस्त्र ३९. सर्वौषधी ४०. घृत ४१ चार वरण-द्रव्य ४२. सप्तमृत्तिका ४३. कलश ४४. आज्यस्थाली ४५. चरु और शाकल्य ४६. पूर्णपात्र ४७. प्रणीतापात्र ४८. प्रोक्षणीपात्र ४९. स्रुवा ५०. अर्घ्यपात्र (अर्घा) ५१. मधुपर्क ५२. पाद्यपात्र ५३. आचमनी ५४. अग्निस्थापन के लिए पात्र ५५. नैवेद्य के लिए मिष्टान्न ५६. क्षेत्रपाल के लिए आटे का चौमुख दीपक ५७. उबले हुए माष (साबुत उड़द) ५८. दही ५९. सिन्दूर ६०. सङ्कल्प आदि के लिए जलपूरित पात्र ६१. लौंग ६२. इलायची ६३. पंचमेवा ६४. मिश्री, बतासे ६५. मण्डप के लिए केले के खम्भे ६६. वेदी के लिए मिट्टी ६७. गोमय ६९. जौ ७०. गेहूं ७१. चावल ७२. आसन। ७३. गुड़ ७४. शक्कर (चीनी) ७५. पद ७६ खाली थालियां।

उक्त सब वस्तुएं सभी संस्कारों के लिए आवश्यक हैं। इनके अतिरिक्त विवाह में निम्न वस्तुएं विशेष आवश्यक हैं—

१. लाजा (चांवल की खीले या धानी) २. शमीपत्र ३. शूर्प (छाज) ४. विष्टर ५. मधुपर्क ६. शिला ७. सिन्दूर ८. वर-वधू के ग्रन्थि-बन्धन का वस्त्र ९. दृढपुरुष के लिए जलपूरित घड़ा, दण्ड १०. मेंहदी ११. अङ्गदक्षिणा १२. प्रधानदक्षिणा और १३. भूयसीदक्षिणा १४. कङ्कण १५. स्तम्भ (कन्या पक्ष के लिए) १६. पंचमुखी आरती (द्वार पर वर की आरती के लिए)

यज्ञोपवीत संस्कार के लिए ये वस्तुएं और चाहिएं—१. बटुक के लिए यज्ञोपवीत २. मूंज की रस्सी ३. ब्राह्मणों को देने के लिए आठ चावल से भरे दक्षिणायुक्त पात्र या पद ४. बटुक के लिए दण्ड ५. कौपीन ६. पीली धोती व उत्तरीय ७. नए वस्त्र (बटुक के) ८. खड़ाऊं ९. मृगचर्म १० भिक्षापात्र ११. मन्त्रदीक्षा के लिए वस्त्र।

समावर्तन-संस्कार के लिए-अंजन, मंजन और दर्पण आदि। नान्दी-श्राद्ध के लिए-आंवला, अदरक।

द्वितीय मयूख

[संस्कारों के पूर्वाङ्ग]

स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ, गणपत्यादिपूजन पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध एवं नवग्रहादि पूजन आदि ।

विपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः
समीहितार्थार्पणकामधेनवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः
पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥

द्वितीय मयूख

स्वस्तिवाचन आदि संस्कार से पूर्व कर्तव्य

गणेशं शङ्करं साम्बं शारदां सिद्धिदायिनीम् ।
हरिञ्च गुरुपादाब्जं सादरं प्रणमाम्यहम् ॥

प्रत्येक संस्कार अथवा किसी भी शुभ-कर्म के आरम्भ में **स्वस्तिवाचन- शान्तिपाठ श्रीगणपति** एवं कर्माङ्ग-देवताओं के स्मरण, आवाहन, अर्चन एवं हवन आदि के द्वारा सम्पूर्ण वातावरण को दिव्य (देवतामय एवं दैविकगुणों से सम्पन्न) बनाया जाता है। देवताओं की उपस्थिति से दिव्य, पवित्र, सात्त्विक, एवं श्रद्धामय स्थिति बन जाने से न केवल संस्कार्य व्यक्ति के ही, अपितु उपस्थित सम्पूर्ण समाज के भी अन्तर्बाह्य भाव पवित्र एवं सात्त्विक बन जाते हैं। अतः प्रत्येक शुभ-कार्य का प्रारम्भ स्वस्तिवाचनादि से किया जाता है। स्वस्तिवाचन से पूर्व यजमान आदि को बद्धशिख तिलक आदि धारण किए हुए तथा यज्ञोपवीती, होना चाहिए। जैसा कि कहा गया है—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।
विशिखो व्युपनीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

(कात्यायनीय छन्दोगपरिशिष्ट)

विधिपूर्वक मण्डप के ठीक बीचों-बीच हवन-वेदी बनाकर उसके पश्चिम में स्नान, सन्ध्या आदि सम्पन्न कर यजमान, उसके दक्षिण में यजमान की पत्नी तथा उसके दक्षिण में संस्कार्य बालक-बालिका स्वच्छ-पवित्र आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ जाएं।

संस्कार्यः पुरुषो वापि स्त्री वा दक्षिणतः सदा ।
संस्कारकर्ता सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा ॥

वेदी के उत्तर में आचार्य एवं उनके सहयोगी अन्य ऋत्विक्‌गण दक्षिणाभिमुख, एवं वेदी दक्षिण में ब्रह्मा उत्तराभिमुख बैठ जाएं। वेदी के पूर्व में कर्णिकायुक्त अष्टदल कमल बनाकर उस पर सप्तधान्य या चावलों की ढेरी पर प्रधान (वरुण) कलश रख दिया जाए तथा ॐकार

सहित गणेश (卐) नवग्रह एवं षोडश मातृकाओं की यथास्थान स्थापना कर दी जाए। (बृहद् आयोजनों में यजमान के बायें पश्चिमोत्तर (वायव्य कोण) में ६४ योगिनियों व ४९ क्षेत्रपालों की स्थापना भी दिये गये चित्रानुसार की जाती है।) यजमान के सम्मुख बायें हाथ 'प्रणीता पात्र' तथा वेदी और प्रणीता के बीच 'प्रोक्षणीपात्र रख दिया जाए। यजमान के दाएं हाथ कुशा पर कर्मकलश, अर्घा, आचमनी, पञ्चपात्र, षोडशोपचार पूजन के लिए सामग्री एवं घृतपात्र आदि यथास्थान रख दिए जाएं। निम्न मन्त्र पढ़ते हुए कर्मसाक्षी घी का दीपक जला लिया जाए, यह दीपक कर्म समाप्ति तक जलता रहे। मन्त्र—

दीप त्वं देहि कल्याणं देहि सर्वान् मनोरथान्।
यावत् कर्म समाप्येत तावत्त्वं सुस्थिरो भव॥

'दीपदेवतायै नमः' कह कर दीपक पर गन्धाक्षत पुष्प चढ़ा दें। धूप, अगरबत्ती भी इसी समय जला ली जाए।

स्वास्तिवाचन—

आचार्य पूजा के लिए उपस्थित सपत्नीक यजमान एवं संस्कार्य सभी लोगों के हाथों में अक्षत दे दें और निम्नलिखित मन्त्रों से स्वस्तिवाचन एवं गणपतिजी आदि देवताओं का स्मरण एवं शान्तिपाठ आदि समवेत स्वर में आरम्भ करें—

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीता स उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥१॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना ᳪ रातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवाना ᳪ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥२॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगम्मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुण ᳪ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥३॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥४॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥५॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥६॥

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥७॥

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि ।
विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥८॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा-
देवतादित्या देवता ।
मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवता वरुणो देवता ॥९॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥१०॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥११॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥१२॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१३॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ꣳ शान्तिःपृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व ꣳ शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिःसामा शान्तिरेधि सुशान्तिर्भवतु ॥१४॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु,
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥१५॥

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥१६॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः ।
यथाशमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१७॥

एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं
तेन मामव ॥१८॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं,
दधातु विश्वेदेवा स इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ ॥१९॥

एष वै प्रतिष्ठा नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रतिष्ठितं भवति॥२०॥

ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे,
प्रियाणां त्वा प्रियपति ँ हवामहे ।
निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे वसो मम ।
आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥२१॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्चवो नमो नमो व्रातेभ्योव्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो, गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमः ॥२२॥

अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससत्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥२३॥

(हाथों में अक्षत लिए रहें) गणेशादि देवताओं को श्रद्धाभक्ति-पूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करें—

ॐ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः। ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नमः। ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। ॐ मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः। ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः। ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः। ॐ कुलदेवताभ्यो नमः। ॐ स्थान देवताभ्यो नमः। ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः। ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ पितृभ्यो नमः। ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः। ॐ श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।

निम्नलिखित मन्त्रों से श्री गणपति जी तथा अन्य देवताओं की स्तुति करें—

ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥१॥

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥२॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥३॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥४॥

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥५॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥६॥

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनं हरिः ॥७॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं देवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥८॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥९॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्रैव विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥१०॥

या कुन्देन्दु तुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना॥
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥११॥

सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥१२॥

विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
सरस्वतीं प्रणम्यादौ सर्वकामार्थसिद्धये ॥१३॥

ॐकार बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदञ्चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१४॥

नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो महर्षिवृन्दारकपादुकाभ्यः।
आचार्यसिद्धेश्वरपादुकाभ्यो नमोऽस्तु वै विप्रपदाम्बुजेभ्यः ॥१५॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१६॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१७॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥१८॥

वक्रतुण्ड महाकाय, कोटिसूर्यसमप्रभ।
अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकायषु सर्वदा ॥१९॥

सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ॥२०॥

अब सब लोग अपने-अपने हाथों में लिए हुए अक्षत गणेशजी पर श्रद्धाभक्तिपूर्वक चढ़ा दें।

(स्वस्तिवाचन का संक्षिप्त रूप भी प्रचलित है, किन्तु संस्कारादि के समय स्वस्तिवाचन भी उतना ही भव्य और परिपूर्ण होना चाहिए। क्योंकि 'न वित्तशाठ्यं कुर्याद्' की भांति 'न कालशाठ्यं समाचरेत्' का भी सिद्धान्त होना चाहिए।)

कर्म-कलश

इसके पश्चात् यजमान के दाईं ओर भूमि पर कुशा तथा अक्षत बिछाकर उस पर जलपूर्ण कलश रखें। तत्पश्चात्—

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

पढ़कर उस जल में गङ्गा आदि पवित्र नदियों का आवाहन करें तथा उस में चन्दन, पुष्प, अक्षत आदि से वरुण पूजा करें। (आगे के सभी कार्य इस कलश से जल लेकर सम्पन्न किए जायेंगे।) और तब—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

यह मन्त्र पढ़कर दायें हाथ से यजमान अपने ऊपर, पत्नी तथा संस्कार्य बालक व सब सामग्री पर जल के छींटे देकर सबका प्रोक्षण या पवित्रीकरण कर लें और तीन बार (स्मार्त) आचमन कर प्राणायाम कर लें[१]।

ब्रह्मा, आचार्य आदि का वरण

आचार्य आदि ऋत्विजों के द्वारा ही संस्कार एवं यज्ञयागादि सभी प्रकार के शुभ कर्म यजमान के हाथों सम्पन्न होते हैं, अतः प्रत्येक माङ्गलिक कार्य के आरम्भ में आचार्य आदि के वरण का विधान करते हुए वसिष्ठ-स्मृति में कहा गया है कि—

यजमानः शुचिः स्नातः श्रद्धायुक्तो जितेन्द्रियः।
पादशौचार्घवस्त्राद्यैराचार्यादीन्समर्चयेत्॥

---

१. 'स्नानेन शुद्धिर्नतु चन्दनेन' के अनुसार स्नान से शरीरकी भौतिक या स्थूल शुद्धि या स्वच्छता हो जाने के पश्चात् 'ॐ अपवित्रः' इत्यादि से शरीर के साथ पांचों कर्मेन्द्रियों तथा पांचों ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म शुद्धि और पवित्रता हो जाती है। आचमन तथा प्राणायाम के द्वारा शरीर की रक्त, मज्जा, मांस आदि आन्तरिक धातुओं, मन-वचन कर्म में सात्विकताएवं पवित्रता की भावना का संचार होता है और विशेषतः प्राणायाम से आरोग्य तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। इसीलिए प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में 'आचम्य, प्राणानायम्य' का आदेश दिया गया है।

तदनुसार स्नान, सन्ध्या आदि के पश्चात् पवित्रीकरण, आचमन और प्राणायाम कर कुङ्कुम-तिलकधारी यजमान आचार्य आदि के वरण के लिए इस प्रकार सङ्कल्प करे—

हरिः ॐ तत्सदद्य अमुकविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुक गोत्रोत्पन्नोऽमुक शर्माहं ममामुक सुतस्य सुताया वामुक संस्कारस्य (अमुक शुभकर्मणो वा) सम्पादनाय आचार्य ब्रह्महोताध्वर्यूणां कर्म कर्तुमाचार्यादित्वेन नानानामगोत्राणां ब्राह्मणानां वरणं करिष्ये ।

तब सपत्नीक यजमान आचार्य आदि से प्रार्थना करे—

आदित्याद्यैर्ग्रहैः सर्वैः सर्वभूतोपकारकैः ।
ग्रहदेवाधिदेवैश्च नक्षत्राणाञ्च देवतैः ॥

इन्द्रादिभिश्च दिक्पालैर्ब्रह्माविष्णुमहेश्वरैः ।
वास्तुदुर्गागणेशैश्च क्षेत्रपालेन संयुतैः ॥

भौमान्तरिक्षदेवैश्च कुलदेव्या च मातृभिः ।
चतुर्भिश्चैव वेदैश्च रुद्रेण सहितास्तथाः ॥

स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा मदनुग्रहकारकाः ।
अयमर्घ इदं पाद्यं भवद्भिः प्रतिगृह्यताम् ॥

आचार्य-वरण

यजमान अपने दायें हाथ में सङ्कल्प-जलाक्षतसहित सुपारी और दक्षिणा लेकर—

अमुकप्रवरान्वितोऽमुकगोत्रः शुक्लयजुर्वेदवाजिमाध्यन्दिनशाखाध्यायी (भिन्न शाखा वाले अपनी शाखा का उच्चारण करें।) **अमुक शर्मा यजमानोऽहं अमुक प्रवरान्वितममुकगोत्रं शुक्लयजुर्वेदवाजिमाध्यन्दिनशाखाध्यायिनम् अमुकशर्माणं भवन्तमहमस्मिन् कर्मणि आचार्यत्वेन वृणे ।** कहकर वह सुपारी और दक्षिणा आदि आचार्य को दे दे । और आचार्य उसे ग्रहण कर के कहे— वृतोऽस्मि—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

तब यजमान '**व्रताय एतत्ते पाद्यम्**' कहकर आचार्य को पाद्य प्रदान करते हुए— प्रार्थना करे—

आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः
समीहितार्थार्पणकामधेनवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः
पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥

इसके पश्चात् अर्घ प्रदान करे—

भूमिदेवाग्रजन्मासि त्वं विप्र पुरुषोत्तम ।
प्रत्यक्षो यज्ञपुरुषो ह्यर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

तब गन्धाक्षत पुष्पों से पूजन कर आचार्य के मस्तक पर कुङ्कुम (रोली)[1] का तिलक लगाए। अपने मस्तक पर तिलकाक्षत लगाते समय आचार्य यह मन्त्र पढ़े—

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

ॐ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषञ्चरन्तम्परि तस्थुषः रोचन्ते रोचना दिवि। युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे शोणा धृष्णू नृवाहसा।

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥

तिलक करने के बाद यजमान आचार्य के दायें हाथ में रक्षासूत्र (मौली या लच्छा) निम्न मन्त्र पढ़ते हुए बांधे—

ॐ यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्मआबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥

तब यज्ञोपवीत, वस्त्र, उपवस्त्र, सुवर्ण दक्षिणा आदि वरणद्रव्य आचार्य को समर्पित कर प्रार्थना करे—

आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ॥

कर्मणोऽस्य प्रतिष्ठाया आचार्यस्त्वं भवाधुना ।
गृहीत्वा तु कराङ्गुष्ठं यजमानः पठेदिदम् ॥

तब आचार्य कहे—'भवामि'। आगे ब्रह्मा आदि के वरण के समय सङ्कल्प तथा अन्य स्थानों में 'आचार्य' के स्थान पर 'ब्रह्मा' पढ़ा जाएगा और अन्त में—

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरः प्रभुः।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥

'अस्य कर्मणः कृताकृतावेक्षणाय भवान् ब्रह्मा भवतु।' 'ब्रह्मा भवामि।' पढ़ा जाएगा। इसी प्रकार होता व अध्वर्यु का भी पूजन तिलक कङ्कणबन्धनादिपूर्वक वरण किया जाए।[2]

---

१. तिलकं कुङ्कुमेनैव सर्वमङ्गलकर्मसु कुर्यात्सदैव मतिमान् न चैव चन्दनादिना ।

२. आचार्य को चाहिए कि संस्कारादि यज्ञानुष्ठानों में कुछ अन्य विद्वानों को भी अपने साथ ले जाए और उन्हें ब्रह्मादि के कार्य के लिए नियुक्त कर विधिवत् तत्तत् कार्यों के लिए उनका वरण करवाए ।

तब आचार्य यजमान, यजमान-पत्नी एवं परिवार के सब सदस्यों के मस्तक पर तिलक लगाकर रक्षाबन्धन करें। तिलक लगाने का मन्त्र—

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः।
तिलकं ते प्रयच्छन्तु धर्मकामार्थसिद्धये॥

तिलक करने के बाद 'यदाबध्नन्' और 'येन बद्धो' आदि उपर्युक्त मन्त्रों से रक्षाबन्धन करे।[1]

विघ्न-रक्षण एवं कङ्कणाभिमन्त्रण

शुभ-कार्यों में सदैव आसुरी शक्तियां विघ्न डाला करती हैं, उनसे रक्षा के लिए रक्षा-विधान किया जाता है। निम्नलिखित मन्त्रों से निर्दिष्ट दिशाओं में पीली सरसों के दाने बिखेरे जाते हैं, ताकि भूतप्रेत पिशाचादि सभी प्रकार के दुष्ट जीव यज्ञ-स्थान से दूर भाग जाएं और वे वहां किसी प्रकार का कोई विघ्न उपस्थित न कर सकें। प्रथम देवताओं और ऋषि-मुनियों को हाथ जोड़कर प्रणाम करें। (पोटलिका युक्त कङ्कण का अभिमन्त्रण भी इन्हीं मन्त्रों से किया जाता है।)

ॐ गणाधिपं नमस्कृत्य नमस्कृत्य पितामहम्।
विष्णुं शिवं श्रियं देवीं वन्दे भक्त्या सरस्वतीम्॥
वेदमन्त्रैश्च कर्तव्या रक्षा शुभ्रैश्च सर्षपैः।
कृत्वा पोटलिकां पूर्वं बध्नीयाद्दक्षिणे करे॥

गायत्री मन्त्र और—ॐ गणमान्त्वा······इत्यादि मन्त्र पढ़कर निम्न मन्त्र पढ़ें—

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥
ॐ सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्रजागृतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
ॐ न तद्रक्षा ꣳ सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज ꣳ ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायण ꣳ हिरण्य ꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥
यदाबध्नन्दाक्षयणा हिरण्य ꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्मऽआबध्नामि शतशारदायायुष्मान्जरदष्टिर्यथाऽसम्॥

---

१. रक्षा-बन्धन का अभिप्राय यह है कि यह रक्षा-सूत्र आचार्य एवं यजमान आदि की सर्वप्रकारेण रक्षा तो करता ही है, साथ ही यह भी कि रक्षाबन्धन के द्वारा आचार्य और यजमान दोनों यज्ञ आदि कर्म को भली-भांति सम्पादित करने के लिए आबद्ध हो जाते हैं। अतः कर्म के आरम्भ में ही रक्षा-बन्धन किया जाता है। कई पद्धतियों में पुण्याहवाचनादि के समय आचार्य आदि के वरण का विधान है। जहां जैसा प्रचलन हो, वैसा करें।

ॐ रक्षोहणं वलगहनँ वैष्णवीमिदमहं तँ वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यम-मात्यो निचखानेदमहं तँ वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहँ तँ वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहँ तँ वलगमुत्किरामि यं मे सजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि ॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा ।
जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो हो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वाँ वलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वाँ वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वष्णवमसि वैष्णवास्थ ॥

मा नः श ७ सोऽररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
रक्षाणो ब्रह्मणस्पते ॥

प्रत्युष्ट ७ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्त७रक्षो निष्टप्ताऽरातयः ।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभियोनिमयो हते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥

स्थानक्षेत्रं नमस्कृत्य दिननाथं निशाकरम् ।
धरणीगर्भसम्भूतं शशिपुत्रं बृहस्पतिम् ॥

दैत्याचार्यं नमस्कृत्य सूर्यपुत्रं महाग्रहम् ।
राहुं केतुं नमस्कृत्य यज्ञारम्भे विशेषतः ॥

शक्राद्या देवताः सर्वा नमस्कृत्य मुनींस्तथा ।
गर्गं मुनिं नमस्कृत्य नारदं मुनिसत्तमम् ॥

वसिष्ठं मुनिशार्दूलं विश्वामित्रं महामुनिम् ।
व्यासं कविं नमस्कृत्य सर्वशास्त्रविशारदम् ॥

विद्याधिका ये मुनय आचार्याश्च तपोधनाः ।
सर्वे ते मम यज्ञस्य रक्षां कुर्वन्तु विघ्नतः ॥

एतैर्मन्त्रैः निम्नमन्त्रैश्च सर्वदिक्षु सर्षपान् विकिरेत् । वामपादेन भूमिं त्रिवारं ताडयेत् तालत्रयं च वादयेत् (अत्रोदकस्पर्शः)[1] । (कङ्कणमप्येभिरेवाभिमन्त्र्यते)

इसके पश्चात् निम्नमन्त्रो को पढ़ते हुए श्वेतसरसोके दाने उछालकर निर्दिष्ट दिशाओं

---

१. रौद्रं राक्षसमासुरमाभिचारिकं मन्त्रमुक्त्वा पित्र्यमात्मानं चालभ्योपस्पृशेदपः ।

की रक्षा की भावना करे—

प्राचीं रक्षतु गोविन्द आग्नेयीं गरुडध्वजः।
यामीं रक्षतु वाराहो नारसिंहस्तु नैऋतीम् ॥
केशवो वारुणीं रक्षेद्वायवीं मधुसूदनः ।
उदीचीं श्रीधरो रक्षेदैशानीं तु गदाधरः॥
ऊर्ध्वं गोवर्धनधरो ह्यधस्ताद्धरणीधरः ।
एवं दश दिशो रक्षेद्वासुदेवो जनार्दनः ॥
यज्ञाग्रे रक्षताच्छङ्खः पृष्ठे पद्मं तथोत्तमम् ।
वामपार्श्वे गदा रक्षेद्दक्षिणे तु सुदर्शनः ॥
उपेन्द्रः पातु ब्रह्माणमाचार्यं पातु वामनः ।
अच्युतः पातु ऋग्वेदं यजुर्वेदमधोक्षजः ॥
कृष्णो रक्षतु सामानि ह्यथर्वं माधवस्तथा।
उपविष्टाश्च ये विप्रास्तेऽनिरुद्धेन रक्षिताः॥
यजमानं सपत्नीकं कमलाक्षश्च रक्षतु।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं तत्सर्वं रक्षताद्धरिः॥
अपसर्पन्तु ते सर्वे ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते गच्छन्तु शिवाज्ञया॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्।
सर्वेषामविरोधेन यज्ञकर्म समारभे ॥

तदनन्तर, तालिका वादन करके वामपाद की पार्ष्णि (एड़ी) से भूमिताडन करे तथा हस्तप्रक्षालन करे।

प्रधान-संङ्कल्प—

सङ्कल्पं च सदा कुर्यात् यज्ञदानव्रतादिके।
अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति वै॥ (वृहद्यम)
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसंभवाः।
व्रतं नियमधर्मौ च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥ (मार्कण्डेय पुराण)

के अनुसार सर्वविध शुभ कार्यों का सम्पादन सङ्कल्प करके ही किया जाता है।

यजमान अपने दायें हाथ में जल और अक्षत लेकर अपनी बायीं हथेली दायें हाथ पर सीधी रखकर निम्न सङ्कल्प करे—

हरिः ॐ स्वस्ति श्री विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः तत्सदद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टा-

विंशतितमे कलियुगे कलि-प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे कुमारिका क्षेत्रे[1] आर्यावर्तैकदेशे देशान्तरगते यमुनातटवर्तीन्द्रप्रस्थनगरे (अत्र स्थानान्तर-नाम ग्राह्यम्) चत्वारिंशत्यधिक द्विसहस्रतमे वैक्रमाब्दे पञ्चाधिक एकोनविंशतिशततमे श्रीशालिवाहन शकाब्दे (उभयत्र उपयुक्ता संख्या वाच्या) अमुकनाम संवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक नक्षत्रे अमुक योगे अमुक कर्णे अमुक राशिस्थे चन्द्रे अमुक राशिस्थे सूर्ये अमुकराशिस्थे देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथास्थानस्थितेषु सत्सु एवं गुणविशेषणविशिष्टायां शुभ पुण्य तिथौ (भार्ययासहाधिकृतस्य) अमुक गोत्रोत्पन्नस्य अमुक प्रवरस्य अमुक शाखाध्यायिनो मम आत्मनः (यजमानस्य वा) श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलावाप्तये सकलारिष्टनिवृत्तिपूर्वकायुरारोग्यैश्वर्यादिवृद्धयर्थं मम (अस्य यजमानस्य वा अस्य कुमारस्य कुमारिकायाश्च) दशाविदशान्तर्दशास्थितादित्यादिग्रहसूचितदुष्टफलोपशान्तिपूर्वकामुक संस्कारस्य निर्विघ्न सम्पादनाय सर्वेषां देवानां श्री परमेश्वरस्य च प्रीत्यर्थममुक संस्काराङ्गभूतं गौरीविनायकनवग्रहादिदेवतानां स्थापनं पूजनं कलशस्थापनादिकमन्यत्सर्वमपि शास्त्रोक्तं पूर्वाङ्गजातं यथालब्धोपचारैः करिष्ये[2]।

---

१. 'कुमारिका क्षेत्र' शब्द का प्रयोग सामान्यतया दक्षिणी पठार या प्रायद्वीप के लिए ही किया जाता है, किन्तु यहां इस शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के लिए किया गया है। यूं इसके साथ ही पुष्कर क्षेत्र, अवन्तिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, केदारक्षेत्र इत्यादि अपने-अपने क्षेत्रों का भी उल्लेख किया जा सकता है।

२. सङ्कल्प का आशय यह है कि व्यक्ति प्रभु को साक्षी मान कर आरम्भ किए हुए किसी शुभ-कर्म को साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करने की प्रतिज्ञा करता है और प्रभु से प्रार्थना करता है कि वह उसे परिपूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करें और उसी की कृपा से यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो। सङ्कल्प क्या है और यह कैसे करना चाहिए इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि—

सङ्कल्पश्चेन्मनसि मननं प्रोक्तरीत्याथ वाचा—
व्याहर्तव्यं तदनु च करेणाम्बुसेकस्त्रिधेति ॥

(ऋषिभट्टीय)

अमरकोश में मन के दृढ़ निश्चय अथवा मानसिक कर्म को ही सङ्कल्प कहा गया है—

सङ्कल्पः कर्म मानसम्।

(इदं कुर्याम् इति मनसः कर्मव्यापारः सङ्कल्पः' रामाश्रमी टीका)

—अमरकोष १-५-२

श्रीमहागणपतिपूजनम्

आदौविनायकः पूज्यो ह्यन्ते च कुलदेवता ।
तथा
आदौ विनायकं नत्वा ग्रहांश्चैव विधानतः ।
कर्मणां सिद्धिमाप्नोति श्रेयश्चाप्नोत्यनुत्तमम् ।।

के अनुसार सर्वप्रथम श्री गणिपति जी का पूजन करें। श्री गणेशजी की पूजा का प्रकार यह है—
ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः मन्त्र पढ़ कर सुपारी पर मौली लपेटकर उसी को स्वस्तिक 卐 एवं अक्षत पुञ्जों पर प्रतिष्ठित कर श्रद्धाभक्तिपूर्वक गणेशजी का षोडशोपचार पूजन करे। (कौतुकागार में स्थापित गणेशजी के चित्र या मूर्ति तथा अन्य प्रधान देवताओं आदि का भी यथावसर इसी विधि से पूजन किया जाय।)

प्रार्थना

सिद्धिबुद्धिसहित श्री गणेशजी की निम्न मन्त्रों से प्रार्थना करे—

ॐ स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम् ।।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ।।

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ।।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ।।

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ।।

अर्थात् उन गजवदन देवदेव की जय हो, जिनके चरणकमल का स्मरण सम्पूर्ण विघ्न-समूह को इस प्रकार नष्ट कर कर देता है, जैसे सूर्य अन्धकार-राशि को ।।१।। जो पुरुष विद्यारम्भ, विवाह, गृहप्रवेश, निर्गमन (घर से बाहर जाने), संग्राम अथवा संकट के समय सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशन, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष,

भालचन्द्र और गजानन— गणेश जी के इन बारह नामों का पाठ या श्रवण भी करता है, उसे कभी किसी प्रकार का कोई विघ्न नहीं होता ॥२-४॥ जो श्वेत वस्त्र धारण किये हैं, चन्द्रमा के समान जिनका वर्ण है तथा जो प्रसन्नवदन हैं, उन देवदेव चतुर्भुज भगवान् गणेशजी या विष्णु का सब विघ्नों की निवृत्ति के लिए ध्यान करना चाहिए ॥५॥

तब निम्न मन्त्र पढ़ कर गणेश जी का ध्यान करना चाहिए—

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः,
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम् ।
दोर्भिः पाशांकुशाब्जाभयवरमनसं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं,
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ॥

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं ध्याये सिद्धिविनायकम् ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहितं श्रीमन्महागणपतिं ध्यायामि । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । इति ध्यानम् ।

आवाहन—

निम्न मन्त्र से गणेशजी का आवाहन करे—

ॐ गणानान्त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपति ँ हवामहे । निधीनांत्वा निधिपति ँ हवामहे । वसो मम । आहमजानि गर्ब्भधमात्वमजासि गर्ब्भधम् ।

आवाहयाम्यहं देवं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
इमां मया कृतां पूजां गृहाण गणनायक ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । गणपतिमावाहयामि । भो गणपते इहागच्छ इहे तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव मम पूजां गृहाण ।

आसन

भगवान् गणिपति जी को निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पमय आसन समर्पित करे—

ॐ पुरुषऽएवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्,
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।

रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम् ।
आसनं च मया दत्तं गृहाण गणनायक ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । आसनं समर्पयामि ।

पाद्य

निम्न मन्त्र पढ़कर गणेश जी के चरणों में पाद्य (चरण धोने के लिए जल) समर्पित करे—

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः,
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ।

उष्णोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्धसंयुतम् ।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भुर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । पाद्यं समर्पयामि ।

अर्घ

निम्न मन्त्र पढ़कर गणेश जी के कर कमलों में अर्घ समर्पित करे—

ॐ त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः,
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशनेऽअभि ।

अर्घं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः सह ।
करुणाकर मे देव गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वःसिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। हस्तयोरर्घंसमर्पयामि ।

आचमन

तब गणपति जी को निम्न मन्त्र पढ़कर आचमन समर्पित करे—

ॐ ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः,
स जातोऽअत्यरिच्यत् पश्चाद् भूमिमथो पुरः ।।

सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धिं निर्मलं जलम् ।
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा गणनायक ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। आचमनं समर्पयामि ।

स्नान

फिर निम्न मन्त्र पढ़कर गणेश जी को शुद्ध जल से स्नान कराए—

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम्,
पशूस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।

ॐ गंगासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्तिं कुरुष्व मे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। स्नानं समर्पयामि ।

पञ्चामृत-स्नान

तब निम्न मन्त्र पढ़कर गणेश जी को पञ्चामृत-स्नान करवाए—

ॐ पञ्चनद्यः सरस्वतीमपियन्ति स स्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत्सरित् ॥

पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करया युतम् ।
पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।

(पञ्चामृतं के पांचों पदार्थों से स्नान कराते समय निम्न पृथक्-पृथक् मन्त्र पढ़े जाते हैं—

पयःस्नान

ॐ पयः पृथिव्याम्पयश्रोषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे
पयोधाः पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥

कामधेनुसमुत्पन्नं सर्वेषां जीवनं परम् ।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। पयःस्नानं समर्पयामि ।

दधि-स्नान

निम्न मन्त्र से गणपति जी को दधि-स्नान करवाएं—

ॐ दधिक्राव्णो श्रकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभिनो मुखाकरत्प्रण श्रायुंषि तारिषत् ॥

पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् ।
दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। दधिस्नानं समर्पयामि।

दधिस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानमाचमनीयं च समर्पयामि।

घृत-स्नान

निम्न मन्त्र पढ़कर भगवान् गणपति जी को घृतस्नान करवाएं—

ॐ घृतम्मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहा कृतं वृषभ वक्षि हव्यम्॥

नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसन्तोषकारकम् ।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। घृतस्नानं समर्पयामि। घृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानमाचमनीयं च समर्पयामि।

मधु-स्नान

तब निम्न मन्त्र पढ़कर गणेशजी को मधु (शहद) का स्नान करवाएं—

ॐ मधु वाता ऋताय ते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वौषधीः। मधुनक्तमुतषसो मधुवत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिताः। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमानस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।

तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।
तेजःपुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। मधुस्नानं समर्पयामि।

मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानम् आचमनीयं च समर्पयामि।

शर्करा-स्नान

गणपतिजी को निम्न मन्त्र से शर्करास्नान करवाएं—

अपा ꣳ रस मुद्वयस ꣳ सूर्ये सन्त ꣳ समाहितम्।
ॐ अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णम्युत्तममुपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।

इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिकारिका।
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।
शर्करास्नानं समर्पयामि।
शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानमाचमनीयं च समर्पयामि।)

गन्धोदक-स्नान

उक्त पञ्चामृत के साथ ही भगवान् गणपति को गन्धोदक-स्नान और उद्वर्तन-स्नान भी निम्न मन्त्रों से करवाएं—

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।

मलयाचलसम्भूतं चन्दनागुरुसम्भवम् ।
चन्दनं देवदेवेश स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणपतये नमः । गन्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

गन्धोदकस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानमाचमनीयं च समर्पयामि ।

उद्वर्तन-स्नान

ॐ अंशुना तेंऽशुः पृच्यतामपरुषापरुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ।।

नाना सुगन्ध द्रव्यं च चन्दनं रजनीयुतम् ।
उद्वर्तनं मया दत्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । उद्वर्तनस्नानं समर्पयामि ।

उद्वर्तनस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानमाचमनीयं च समर्पयामि ।

वस्त्रम्

तब श्रीगणेजी पर वस्त्र अथवा वस्त्र के स्थान पर कौसुम्ब सूत्र (लच्छा या मौलि) निम्न मन्त्र पढ़कर चढ़ाये —

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे,
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।

सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।
मया प्रपादिते तुभ्यं गृह्यतां वाससी शुभे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । वस्त्रं (वस्त्रस्थाने कौसुम्बसूत्रं वा) समर्पयामि ।

यज्ञोपवीत

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर भगवान् गणपति को यज्ञोपवीत या उसके स्थान पर

यज्ञोपवीत—

ॐ तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः,
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ।

नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं चोत्तरीयं गृहाण गणनायक ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

कुङ्कुम-चन्दन—

फिर निम्न मन्त्र पढ़कर गणेशजी पर कुंकुम चन्दन-रोली चढ़ाए—

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रोक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये ॥

श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । कुङ्कुमं केसर-चन्दनं च समर्पयामि ।

अक्षत—

यह मन्त्र पढ़कर श्री गणेशजी पर अक्षत चढ़ाएः—

ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रियाऽअधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा-
नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ।

अक्षताश्च गणाधीश कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण गणनायक ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । अक्षतान्समर्पयामि ।

पुष्प—

निम्न मन्त्र पढ़कर गणेश जी पर पुष्प चढ़ाए—

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्,
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादाऽउच्येते ।

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयाहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । पुष्पाणि समर्पयामि ।

दूर्वा—

तब गणेशजी पर निम्न मन्त्र पढ़कर दूर्वा चढ़ाएं[1]—

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥

विष्ण्वादि सर्वदेवानां दूर्वे त्वं प्रीतिदा सदा ।
क्षीरसागरसम्भूते वंशवृद्धिकरी भव ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । दूर्वाङ्कुराणि समर्पयामि ।

सौभाग्य—

निम्न मन्त्र पढ़कर गणेशजी पर सौभाग्य द्रव्य चढ़ाएं—

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुञ्ज्याया हेतिम्परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमा ँ् सम्परिपातु विश्वतः ॥

देव सौभाग्यदं द्रव्यं देवाङ्गसदृशप्रभम् ।
भवत्या दत्तं गृहाणेदं लम्बोदर हरप्रिय ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । सौभाग्यद्रव्याणि समर्पयामि ।

धूप—

भगवान् गणपति जी को अष्टगन्ध युक्त धूप देते समय निम्न मन्त्र पढ़ें—

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः,
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ् शूद्रोअजायत ।

---

१. शिवजी पर बिल्वपत्र चढ़ाने का मन्त्र—

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम् ।
त्रिजन्मपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥

शालिग्राम-विष्णु-पर तुलसी चढ़ाने का मन्त्र—

तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥

किस देवता पर क्या नहीं चढ़ाया जाता है, इसके लिए कहा गया है—

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ।
न दूर्वया यजेद्देवीं बिल्वपत्रैश्च भास्करम् ॥

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

दशाङ्गं गुग्गुलु धूपं सुगन्धि सुमनोहरम् ।
उमासुत नमस्तुभ्यं गृहाण वरदो भव ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । धूपमाघ्रापयामि ।

दीप—

फिर यह मन्त्र पढ़कर घी का दीपक भगवान् के आगे रखना चाहिए :—

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत,
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।

आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ।

गृहाण मङ्गलं दीपं घृतवर्तिसमन्वितम् ।
दीपं ज्ञानप्रदं देव रुद्रप्रिय नमोऽस्तु ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । दीपं दर्शयामि ।

नैवेद्य—

गणेशजी के आगे २१ मोदक तथा मिश्री मिठाई फल आदि का भरा हुआ थाल रखकर निम्न मन्त्र पढ़कर नैवेद्य समर्पित करें —

ॐ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ꣹ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत,
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकांन् अकल्पयन् ।

शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम् ।
उपाहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

सगुणान्सघृतांश्चैव मोदकान्घृतपाचितान् ।
नैवेद्यं सफलं दद्यां गृह्यतां विघ्ननाशन ॥

ॐ प्राणाय स्वाहा । ॐ अपानाय स्वाहा । ॐ व्यानाय स्वाहा ।
ॐ उदानाय स्वाहा । ॐ समानाय स्वाहा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । नैवेद्य निवेदयामि ।

नैवेद्यमध्ये पानीयम्—

एलोशीरलवङ्गादिकर्पूरपरिवासितम् ।
प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण गणनायक ॥

नैवेद्यान्ते हस्तप्रक्षालनं मुखप्रक्षालनमाचमनीयं करोद्वर्तनार्थं चन्दनं च समर्पयामि ।

फल—

तब निम्न मन्त्र को पढ़कर गणेश जी को फल (ऋतुफल तथा नारियल आदि) चढ़ाए—

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । फलं निवेदयामि ।

ताम्बूल

गणेशजी को लौंग, इलायची और कर्पूर आदि सहित ताम्बूल निम्न मन्त्र पढ़कर समर्पित करे—

पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलान्वितम् ।
एलालवङ्गसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । ताम्बूलं समर्पयामि ।

दक्षिणा

गणेशजी पर निम्न मन्त्र पढ़कर दक्षिणा चढ़ाए...

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत,
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ।

ॐ यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । दक्षिणां समर्पयामि ।

विशेषार्घ्य

तब पुष्पाञ्जलिपूर्वक निम्न मन्त्रों से गणेशजी को विशेष अर्घ्य समर्पित करे । (यह विशेषार्घ्य रक्तचन्दन पुष्पाक्षत सहित अर्घपात्र को अपनी अंजलि में लेकर समर्पित किया जाय ।)

रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक ।
भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥

द्वैमातुरकृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो।
वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ॥
अनेन सफलार्घ्येण फलदोऽस्तु सदा मम ।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। विशेषार्घ्यं समर्पयामि।

प्रार्थना

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमोनमस्ते ॥

नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ॥

विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥

लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

त्वं विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति
भक्तप्रियेति सुखदेति वरप्रदेति ।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति
तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ॥

नीराजन

निम्न मन्त्र पढ़कर गणेश जी की आरती करे—

ॐ अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्यामितप्रभम्।
आरार्तिकमिदं देव गृहाण मदनुग्रहात् ॥

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।
सूर्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।
अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। नीराजनं समर्पयामि।

मन्त्र-पुष्पाञ्जलि

फिर निम्न मन्त्र पढ़कर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से अंजलि भरकर गणेशजी पर चढ़ाए

और साष्टांग प्रणाम करे :—

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने, नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे।
स मे कामान्कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु।
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥
ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं
राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्,
सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात्।
पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति ॥
तदप्येषः श्लोकोऽभिगीतो मरुतः
परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितश्च कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति।
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो,
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥
ॐ नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

ॐ विघ्नवल्लीकुठाराय गणाधिपतये नमः।
अविरलमदजलनिवहं भ्रमरकुलानीकसेवितकपोलम्।
अभिमतफलदातारं कामेशं गणपतिं वन्दे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। इस प्रकार गणेश जी पर पुष्पाञ्जलि चढ़ा दे और श्रद्धाभक्ति पूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करे।

प्रदक्षिणा—

फिर निम्न मन्त्र पढ़कर गणेश जी की मनसा प्रदक्षिणा करे—

ॐ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः,
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नन्पुरुषम्पशुम्।
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अनया पूजया सिद्धिबुद्धिसहितश्रीमन्महागणाधिपतिः साङ्गः सपरिवारः प्रीयतां न मम । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।

दक्षिणा—

इसके पश्चात् गणेश जी के २१ मोदकों में से १० मोदक तथा गणपति पूजन की दक्षिणा आचार्य को साञ्जलि समर्पित करें ।

सङ्कल्प—

ॐ (अद्येत्यादि देशकालसङ्कीर्तनान्ते) अमुकोऽहं अमुक कर्मणि निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं भगवतो गणेशस्य पूजाकर्मणः साद्‌गुण्यार्थम् इमां दक्षिणां यथानामगोत्राय आचार्यायान्येभ्यः ऋत्विग्भ्यश्च सम्प्रददे ।

ॐ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।।

इस प्रकार आचार्य के मस्तक पर गन्धाक्षत पुष्प लगाकर उनके हाथों में मोदक सहित दक्षिणा समर्पित करें और आचार्य तब गणेश जी के प्रसाद-स्वरूप शेष मोदक और फल आदि यजमान, यजमानपत्नी, तथा संस्कार्य बालक-बालिका को आशीर्वाद सहित प्रदान करें ।

इति महागणपति पूजनम्

□

गौरी-पूजन

गणेश जी की पूजा के साथ ही गौरी की भी पूजा की जाती है। वासिष्ठी आदि में इसका विधान है। गणेश जी के पास ही एक वेदी अथवा पाटे पर गोबर की या पुष्प, सुपारी या अक्षत रख कर उसमें गौरी का आवाहन हाथ में अक्षत लेकर इस प्रकार करे—

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणिरूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणमुम्मइषाण सर्वलोकम्म इषाण ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः गौरीमावाहयामि। पढ़कर अक्षत चढ़ा दे फिर ॐ मनोजूति इत्यादि मन्त्र पढ़कर उसके अन्त में भूर्भुवः स्वः गौर्यैनमः गौरि इहागच्छ सुप्रतिष्ठिता वरदा भव कहकर पुष्पाक्षत चढ़ा कर उनकी प्रतिष्ठा करे। फिर ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यैनमः इस नाम-मन्त्र से गणेश जी की पूजा की भांति षोडशोपचार या पञ्चोपचार पूजन कर के गौरी पर निम्न विशेष सौभाग्य[1] द्रव्य चढ़ाएं—

केसर या कुङ्कुम

ॐ कुङ्कुमं कामदं दिव्यं कामनाकामसम्भवम्।
कुङ्कुमेनार्चिते देवि गृहाण परमेश्वरि ।।

हल्दी

ॐ हरिद्रानिर्मितं देवि सौभाग्यं सुखहेतुकम्।
तया त्वां पूजयिष्यामि गृहाण परमेश्वरि ।।

रक्त चन्दन

ॐ अबीरं च गुलालं च चोवाचन्दनमेव च।
अबीरेणार्चिता देवि ततः शान्ति प्रयच्छ मे ।।

सिन्दूर

ॐ सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं प्रियवर्द्धनम्।
सुखदं मोक्षदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ।।

अन्य पूजा पूर्ववत् करें।

---

१. हरिद्रा कुङ्कुमञ्चैव सिन्दूरादिसमन्वितम्।
कज्जलं कण्ठसूत्रादि सौभाग्यद्रव्यमुच्यते ।।

ओंकार-पूजन

गणेश जी के पास ही ॐकार का निम्न मन्त्रों से पूजन करें—

आवाहयाम्यहं देवमोङ्कारं परमेश्वरम् ।
त्रिमात्रं त्र्यक्षरं दिव्यं त्रिपदं च त्रिदैवकम् ॥

त्र्यक्षरं त्रिगुणाकारं सर्वाक्षरमयं शुभम् ।
त्र्यर्णवं प्रणवं हंसं स्रष्टारं परमेश्वरम् ॥

अनादिनिधनं देवमप्रमेयं सनातनम् ।
परं परतरं बीजं निर्मलं निष्कलं क्षमम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐकारमावाहयामि स्थापयामि पूजयामि ॐकाराय नमो नमः ।

कहकर ॐकार की पञ्चोपचार या षोडशोपचार सामग्री से पूजा की जाए । तत्पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर नमस्कार करें—

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥[1]

---

१. ब्रजमण्डल आदि क्षेत्रों में पञ्च ॐकार के पूजन की विधि प्रचलित है—

ब्रह्मदेवी च गायत्री तथा गोवर्धनेश्वरः ।
पृथ्वी यज्ञपतिश्चैतान् पञ्चौंकारान्नमाम्यहम् ॥

कलश-स्थापन

तीर्थे देवालये गेहे प्रशस्ते सुपरिष्कृते ।
कलशं सुदृढं तत्र सुनिर्णिक्तं सुभूषितम् ॥
पुष्पपल्लवमालाभिश्चन्दनैः कुङ्कुमादिभिः ।
मृत्तिकायवसम्मिश्रे वेदिमध्ये न्यसेत्ततः ॥

चरणव्यूह परिशिष्ट भाष्यमहार्णव के इस कथनानुसार यज्ञवेदी के ईशानकोण और नवग्रहमण्डल के उत्तर में कर्णिकायुक्त अष्टदल या २४ दलों वाले कमल अथवा स्वस्तिक पर सप्तधान्य की ढेरी लगाकर उस पर ताम्र या पीतल आदि धातु अथवा मिट्टी का सुन्दर कलश स्थापित कर उसमें जलभर कर उसके मुख को पंच-पल्लवों से सुशोभित कर दे और उसके ऊपर चावलों से भरा पूर्णपात्र तथा उसपर मौलिक लपेटा हुआ नारियल रखकर कलश की प्रतिष्ठा की जाती है और उसमें ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणों व नवग्रहों का आवाहन किया जाता है । इसे ही 'रुद्रकलश" 'प्रधानकलश' या 'वरुणकलश' कहते हैं ।

भूमि-स्पर्श

सर्व प्रथम निम्न मन्त्र पढ़ते हुए भूमि का स्पर्श करना चाहिए, क्योंकि जिस भूमि पर कलश की स्थापना की जा रही है, उसके भार को वहन करने में वही समर्थ है ।

ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीन्दृꣳह पृथिवी मा हिꣳसीः ॥

ॐ मही द्यौः पृथिवीचनऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतान्नो भरीमभिः ॥

इसके पश्चात् सप्तधान्य या केवल जौ को ढेरी निम्न मन्त्र पढ़ते हुए लगाए—

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु-प्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृम्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनाम्पयोऽसिः ॥

केवल जौ की ढेरी लगाते समय निम्न मन्त्र पढ़े जाएं—

ॐ ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणाति ब्रह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥

तब निम्न मन्त्र पढ़ते हुए गङ्गा आदि पवित्र नदियों का जल कलश में भरे—

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ।

इसके बाद—

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।

मन्त्र से कुशा कलश में डाले और उस समय यह मन्त्र पढ़े—

ॐ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः । सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

तब कुङ्कुम चन्दन डाले और मन्त्र पढ़े—

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।

तब निम्न मन्त्र पढ़कर दूब डाले—

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।।

इसके बाद सर्वौषधि अथवा उसके न उपलब्ध होने पर केवल हल्दी डाले—

ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामह ॅ शतं धामानि सप्त च ।

सुपारी इस मन्त्र से डाले—

ॐ या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व ॅ हसः ।[1]

इसके उपरान्त कलश के मुख पर पञ्चपल्लव रखे, मन्त्र—

ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।

तब सप्तमृत्तिका डाले । मन्त्र—

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः ।।

---

१. देवता को फल समर्पित करते समय भी यह वैदिक मन्त्र पढ़ा जाता है ।

फिर निम्न मन्त्र से पञ्चरत्न डाले—

ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥

फिर सोना या दूसरा द्रव्य यह मन्त्र पढ़कर डाले—

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

तब नवीन वस्त्र या दोहरा लाल लच्छा (मौली) कलश पर लपेटते हुए यह मन्त्र पढ़े—

ॐ यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं षड्वीशं प्रिया देवेष्वायाम यन्ति ॥

इसके बाद—

ॐ पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्ज ँ शतक्रतो ॥

मन्त्र को पढ़कर पूर्णपात्र कलश के ऊपर रखे।

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते' इत्यादि मन्त्र से पूर्णपात्र पर श्रीफल या नारियल चढ़ा दे। इसके बाद वरुण का आवाहन हाथ में पुष्पाक्षत लेकर इन मन्त्रों से करे—

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ँ समा न आयुः प्रमोषीः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः अस्मिन्कलशे साङ्गं सपरिवारं सशक्तिकं वरुणमावाहयामि।

इसके पश्चात् कलश को अनामिका अङ्गुलि से स्पर्श करते हुए कलशाधिष्ठातृ देवताओं का आवाहन इन मन्त्रों से करे—

ॐ सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥

कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ।
गायत्री चैव सावित्री शान्तिपुष्टिकरी तथा
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारिकाः ॥

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धो कावेरि कलशे सन्निधिं कुरु ॥

ॐ कलशाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः भूर्भुवः स्वः कलशाधिष्ठातृदेवता आवाहयामि ।

तब हाथ में लिए हुए उन अक्षतों को कलश में डाल दें फिर कलश की प्रार्थना करें—

ॐ देवदानवसंबाधे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥

त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥

त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ।
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणसहिताः कलशाधिष्टातृदेवता इहसुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु । ॐभूर्भुवः स्वः कलशाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः ।

इति प्रधानकलशस्थापनम् ।

पुण्याहवाचन

विवाह व यज्ञोपवीत आदि प्रमुख संस्कारों एवं सभी प्रकार के यज्ञ-यागों और शुभ कर्मों में पुण्याहवाचन किया जाता है। उसका विधि-विधान यह है—

ऋत्विज-वरण

यूं तो सभी शुभ-कर्मों में किन्तु विशेषतः पुण्याहवाचन में चार विद्वानों—ऋत्विजों की आवश्यकता होती है। अतः विधिपूर्वक ऋत्विज-वरण किया जाए। (विधि पहले दी गई है।)

पुण्याह-कलश

तत्पश्चात् पुण्याहवाचन के लिए एक द्विमुख (टोंटी वाले) कलश[1] की स्थापना इस प्रकार की जाए—

पत्नी एवं संस्कार्य-बालक-बालिका के साथ यजमान स्थण्डिल (यज्ञवेदी) के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ जाए। यजमान दोनों घुटनों के बल (अवनिकृतजानुमण्डलः) बैठकर दोनों हाथों को कमल पुष्प के समान मस्तष्क पर रख ले। उसके बाद पुण्याह-वाचन के लिए विशेष रूप से लाए गए स्वर्णयुक्त जलपूर्ण कलश को आचार्य यजमान के हाथों में रख दे, और ये मन्त्र तीन बार पढ़े—

ॐ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्॥
दीर्घा नगा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च।

तब यजमान कहे—

तेनायुष्प्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु।
इति भवन्तो ब्रुवन्तु।

---

१. द्विमुख या टोंटी वाला कलश इसलिए लिया जाता है कि आगे उससे मन्त्र बोलते हुए दूसरे पात्र में जल टपकाया जायगा। टोंटी से थोड़ा-थोड़ा जल सुविधा से डाला जायेगा।

तब उपस्थित ब्राह्मणगण भी—

"तेनायुष्प्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु।"

यह वाक्य तीन बार बोलें।

तत्पश्चात् यजमान अपने हाथों में लिए हुए उस कलश को अपनी पत्नी तथा संस्कार्य बालक-बालिका के सिर पर स्पर्श कराकर धान्यराशि पर यथास्थान रख दे।

तब यजमान— ॐ सुप्रोक्षितमस्तु बोलकर ब्राह्मणों को हाथ धोने के लिए जल दे। तत्पश्चात्—

ॐ शिवा आपः सन्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु। कहकर यजमान ब्राह्मणों के हाथों में जल डाले और ब्राह्मण—

ॐ सन्तु शिवा आपः बोलकर उस जल को यजमान, यजमान-पत्नी तथा संस्कार्य बालक के सिर पर छिड़क दें।

यजमान—सौमनस्यमस्तु। ब्राह्मण—अस्तु सौमनस्यम्।

इसी प्रकार यजमान आगे भी ब्राह्मणों को गन्धाक्षतादि जो वस्तुएं दे, उन्हें भी (दक्षिणा को छोड़कर) यजमान को ही (आशीर्वाद स्वरूप) प्रदान करते रहें।

यहां यजमान और ब्राह्मणों के वाक्य आमने सामने दिए जा रहे हैं—

यजमान	ब्राह्मण
ॐ अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु	अस्त्वक्षतमरिष्टं च।
ॐ गन्धाः पान्तु सौमङ्गल्यञ्चास्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु।	ॐ गन्धाः पान्तु सौमङ्गल्यञ्चास्तु (गन्धचन्दनादि)
ॐ अक्षताः पान्तु आयुष्यमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु।	ॐ अक्षताः पान्तु आयुष्यमस्तु (अक्षत)
ॐ पुष्पाणि पान्तु सौश्रियमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु।	ॐ पुष्पाणि पान्तु सौश्रियमस्तु (पुष्प)
ॐ ताम्बूलानि पान्तु ऐश्वर्यमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु।	ॐ ताम्बूलानि पान्तु ऐश्वर्यमस्तु (ताम्बूल)
ॐ पूगीफलानि पान्तु बहुफलमस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु।	ॐ पूगीफलानि पान्तु बहुफलमस्तु (सुपारी)
ॐ दक्षिणाः पान्तु बहुदेयं चास्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु।	ॐ दक्षिणाः पान्तु बहुदेयं चास्तु (दक्षिणा)

ॐ दीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः— श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रञ्चास्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु ।	ॐ दीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रञ्चास्तु ।
ॐ यं कृत्वा सर्ववेदयज्ञक्रियाकरणकर्मारम्भाः शुभाःशोभनाः प्रवर्तन्ते, तमहमोंकारमादिं कृत्वा ऋग्यजुःसामाथर्वाशीर्वचनं बहु ऋषिसम्मतं समनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये ।	ॐ वाच्यताम् ।

अथाशीर्वादः—

तब यजमान ब्राह्मणों के हाथों में अक्षत दे दे और ब्रह्मणगण निम्न मन्त्रों को पढ़ते हुए प्रत्येक मन्त्र के अन्त में यजमान, यजमान पत्नी तथा संस्कार्य-बालक पर अक्षत डालते जाएं ।

मन्त्र—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरङ्गैस्तुष्टुवा ᳪ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥१॥

ॐ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना ᳪ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवाना ᳪ सख्यमुपसेदिमा वयं न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२॥

ॐ न तद्रक्षा ᳪ सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज ᳪ ह्येतत् । यो बिभर्ति दाक्षयण ᳪ हिरण्य ᳪ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥३॥

ॐ दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् ॥४॥

ॐ द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्रय ᳪ सत् । द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥५॥

ॐ सविता पश्चात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्सविताऽधरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥६॥

ॐ सविता त्वा सवाना ᳪ सुवतामग्निर्गृहपतीना ᳪ सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्र ᳪ सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥७॥

ॐ नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् । भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥८॥

ॐ उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण। हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः साम प्र तिरन्त आयुः ॥९॥

ॐ उच्चा ते जातमन्धसो दिविषद् भूम्याददे। उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१०॥

इत्याशीर्वादः।

तत्पश्चात् पहले की भाँति पुनः यजमान ब्राह्मणों से आशीर्वादात्मक निम्न वाक्य बोलने की प्रार्थना करें और ब्राह्मण उन वाक्यों से आशीर्वाद दें—

यजमान	ब्राह्मण
ॐ व्रतनियमतपःस्वाध्यायक्रतुदयादम-दानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम्।	ॐ समाहितमनसः स्मः।
ॐ प्रसीदन्तु भवन्तः।	ॐ प्रसन्नाः स्मः।

तत्पश्चात् यजमान कलश को अपने हाथ में ले ले और अपने सामने एक या दो खाली पात्र रख ले। आगे के मन्त्रों में शुभ की प्राप्ति और अनिष्ट की निवृत्ति की कामना की गई है। अपने हाथ में लिए हुए कलश से शुभसूचक मन्त्रों के उच्चारण पर पहले पात्र में जल टपकाए और अशुभ-निवृत्तिपरक मन्त्रों के उच्चारण पर पात्र के बाहर या दूसरे पात्र में जल गिराता जाए। (अन्त में पहले पात्र के जल से यजमान आदि का अभिषेक होगा।)

यजमान	ब्राह्मण
ॐ शान्तिरस्तु।	अस्तु शान्तिः।
ॐ पुष्टिरस्तु।	अस्तु पुष्टिः।
ॐ तुष्टिरस्तु।	अस्तु तुष्टिः।
ॐ वृद्धिरस्तु।	अस्तु वृद्धिः।
ॐ अविघ्नमस्तु।	अस्तु अविघ्नम्।
ॐ आयुष्यमस्तु।	अस्तु आयुष्यम्।
ॐ आरोग्यमस्तु।	अस्तु आरोग्यम्।
ॐ शिवं कर्मास्तु।	अस्तु शिवं कर्म।
ॐ कर्मसमृद्धिरस्तु।	अस्तु कर्मसमृद्धिः।
ॐ वेदसमृद्धिरस्तु।	अस्तु वेदसमृद्धिः।
ॐ शास्त्रसमृद्धिरस्तु।	अस्तु शास्त्रसमृद्धिः।
ॐ धनधान्यसमृद्धिरस्तु।	अस्तु धनधान्यसमृद्धिः।
ॐ पुत्रपौत्रसमृद्धिरस्तु।	अस्तु पुत्रपौत्रसमृद्धिः।
ॐ इष्टसम्पदस्तु।	अस्तु इष्टसम्पद्।

यहां तक पहले पात्र में जल टपकाएं और निम्न दो वाक्य बोल कर पात्र के बाहर या दूसरे पात्र में जल डालें—

यजमान	ब्राह्मण
ॐ अरिष्टनिरसनमस्तु ।	अस्तु अरिष्टनिरसनम् ।
ॐ यत्पापं रोगमशुभमकल्याणं-तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ।	अस्तु प्रतिहतम् ।

निम्न मन्त्रों से पुनः पहले पात्र में जल डाले—

ॐ यच्छ्रेयस्तदस्तु । अस्तु ।

ॐ उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सम्पद्यन्ताम् । सम्पद्यन्तां शोभनाः क्रियाः ।

ॐ तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रग्रहलग्नसम्पदस्तु । अस्तु ।

ॐ तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रग्रहलग्नाधिदेवताः प्रीयन्ताम् ।

ॐ तिथिकरणे समुहूर्ते सनक्षत्रे सग्रहे साधिदेवते प्रीयेताम् ।

ॐ दुर्गापाञ्चाल्यौ प्रीयेताम् ।

ॐ अग्निपुरोगा विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम् ।

ॐ इन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयन्ताम् ।

ॐ माहेश्वरीपुरोगा उमामातरः प्रीयन्ताम् ।

ॐ अरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम् ।

ॐ विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम् । ॐ ब्रह्मपुरोगाः सर्वे वेदाः प्रीयन्ताम् । ॐ ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्ताम् । ॐ श्रीसरस्वत्यौ प्रीयेताम् । ॐ श्रद्धामेधे प्रीयेताम् । ॐ भगवती कात्यायनी प्रीयताम् । ॐ भगवती माहेश्वरी प्रीयताम् । ॐ भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती सिद्धिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम् । ॐ भगवन्तौ 'विघ्नविनायकौ'[1] प्रीयेताम् । ॐ सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्ताम् । ॐ सर्वा ग्रामदेवताः प्रीयन्ताम् ।

फिर बाहर या दूसरे पात्र में—

ॐ हताश्च ब्रह्मद्विषः । ॐ हताश्च परिपन्थिनः । ॐ हता अस्य विघ्नकर्त्तारः । ॐ शत्रवः पराभवं यान्तु । ॐ शाम्यन्तु घोराणि । ॐ शाम्यन्तु पापानि । ॐ शाम्यन्त्वीतयः ।

फिर पहले पात्र में—

ॐ शुभानि वर्द्धन्ताम् । ॐ शिवा आपः सन्तु । ॐ शिवा ऋतवः सन्तु । ॐ शिवा

१. सभी पुस्तकों में उपलब्ध यह पाठ ठीक नहीं लगता, 'स्कन्दविनायकौ', 'वाणीविनायकौ' या 'गौरीविनायकौ' जैसा कोई प्राचीन पाठ रहा होगा । (देखें भूमिका)

अग्नयः सन्तु । ॐ शिवा आहुतयः सन्तु । ॐ शिवा ओषधयः सन्तु । ॐ शिवा वनस्पतयः सन्तु । ॐ शिवा अतिथयः सन्तु । ॐ अहोरात्रे शिवे स्याताम् ।

ॐ निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥१॥

ॐ शुक्राङ्गारकबुधबृहस्पतिशनैश्चरराहुकेतुसोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः प्रीयन्ताम् । ॐ भगवान्नारायणः प्रीयताम् । ॐ भगवान्पर्जन्यः प्रीयताम् । ॐ भगवान् स्वामी महासेनः प्रीयताम् । ॐ पुरोनुवाक्यया यत्पुण्यं तदस्तु । ॐ याज्यया यत्पुण्यं तदस्तु । ॐ वषट्कारेण यत्पुण्यं तदस्तु । ॐ प्रातः सूर्योदये यत्पुण्यं तदस्तु ॥

इसके बाद यजमान कलश को भूमि पर रखकर उस पात्र के जल में से जरा-सा अपने सिर पर डालकर कुछ पत्नी पुत्र आदि पर भी छिड़क देवे, शेष जल पात्र ही में रहने दे। यदि दूसरा जलपात्र हो तो उस पात्र में गिराये जल को कहीं एकान्त में गिरवा देवे। इसके बाद यजमान ब्राह्मणों से कहे—

ॐ पुण्याहकालान् वाचयिष्ये ।

ब्राह्मण उत्तर दें—ॐ वाच्यताम् ।

तब यजमान फिर कहे—

ॐ ब्राह्मं पुण्यमहर्यच्च सृष्ट्युत्पादनकारकम् ।
वेदवृक्षोद्भवं पुण्यं तत्पुण्याहं ब्रुवन्तु नः ॥

भो ब्राह्मणाः मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणायाशीर्वचनमपेक्षमाणायास्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु ।

तब ब्राह्मण तीन बार कहें—

ॐ पुण्याहम् । पुण्याहम् । पुण्याहम् ।

**ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥२॥**

पुण्याहसमृद्धिरस्तु ॥

(तीन बार कहें) आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार तीन बार चारों कहें। पहली बार मन्द स्वर से, दूसरी बार मध्यम स्वर से और तीसरी बार ऊँचे स्वर से ब्राह्मण सर्वत्र बोलें।

फिर यजमान—

ॐ पृथिव्यामुद्धृतायान्तु यत्कल्याणं पुरा कृतम् ।
ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः ॥

भो ब्राह्मणाः मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणायाशीर्वचनमपेक्षमाणायास्य कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु ।

ब्राह्मण—ॐ कल्याणम् । कल्याणम् । कल्याणम् ।

ॐ यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय-चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यताम् ॥३॥

कल्याणसमृद्धिरस्तु।

इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी पढ़ें।

पुनः यजमान कहे—

ॐ सागरस्य तु या ऋद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता।
सम्पूर्णा सुप्रभावा च तां च ऋद्धिं ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणा मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणायाशीर्वचनमपेक्षमाणायास्य कर्मणः ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु॥

ब्राह्मण—ॐ ऋद्ध्यताम्। ऋद्ध्यताम्। ऋद्ध्यताम्।

ॐ सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम। दिवं पृथिव्या अध्यारुहा-माविदाम देवान् स्वर्ज्योतिः॥४॥

ऋद्धिसमृद्धिरस्तु॥ (तीन बार कहें।)

फिर यजमान—

ॐ स्वस्तिस्तु याऽविनाशाख्या पुण्यकल्याणवृद्धिदा।
विनायकप्रिया नित्यं तां च स्वस्तिं ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणा मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणायाशीर्वचनमपेक्षमाणायास्य कर्मणः स्वस्तिं भवन्तो ब्रुवन्तु।

ब्राह्मण—ॐ आयुष्मते स्वस्ति।

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो-अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥५॥

स्वस्त्यस्तु। (तीन बार कहें)

तब यजमान—

ॐ समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका।
हरिप्रिया च मांगल्या तां श्रियं च ब्रुवन्तु नः॥

भो ब्राह्मणा मह्यं सकुटुम्बिने महाजनान्नमस्कुर्वाणायाशीर्वचनमपेक्षमाणायास्य कर्मणः श्रियं भवन्तो ब्रुवन्तु॥

ब्राह्मण—ॐ अस्तु श्रीः।

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ

व्यात्तम् । इष्णन्निषाणमुम्म इषाण सर्वलोकं म इषाण ।।६।।

श्रीसमृद्धिरस्तु । (इसी प्रकार तीन बार पढ़ें)

फिर आगे के मन्त्रों से यजमान को आशीर्वाद देवें—

ॐ मंगलानि भवन्तु । वर्षशतं पूर्णमस्तु । गोत्राभिवृद्धिरस्तु ।

यजमान—प्रजापतिर्लोकपालो धाता ब्रह्मा च देवराट् ।

भगवान् शाश्वतो नित्यं स नो रक्षतु सर्वतः ।।

ब्राह्मण—भगवान् प्रजापतिः प्रीयताम् ।

ॐ प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वारूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय ꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ।।७।।

फिर यजमान प्रार्थना करे—ॐ अनेन पुण्याहवाचनेन प्रजापतिः प्रीयताम् । ॐ अस्मिन् पुण्याहवाचने न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनान्महागणपतिप्रसादाच्च परिपूर्णोऽस्तु ।

ब्राह्मण उत्तर देवें—ॐ अस्तु परिपूर्णः ।

अभिषेक—

इसके उपरान्त ब्राह्मण गण खड़े होकर यजमान के बायें उसकी पत्नी को तथा संस्कार्य बालक को बैठाकर उसी पात्र में गिराये जल से दूब और आम्र-पल्लव से सपत्नीक यजमान व बालक का इन मन्त्रों से अभिषेक करें (मन्त्र पढ़कर उन पर जल के छींटे देते जाए)—

ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः । पयस्वती प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।।१।।

ॐ पञ्च नद्यः सरस्बतीमपि यन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत् सरित् ।।२।।

'ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि' इत्यादि । ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनंतु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहि मा ।।३।।

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पते ष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ।।४।।

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ।।५।।

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चाम्यसौ । सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चाम्यसौ ।। इन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चाम्यसौ ।।६।।

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।।७।।

ॐ धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वेदेवा यक्षं प्रावन्तु नः शुभे ।।८।।

ॐ यविष्ठदाशुषो नृँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ।।९।।
ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारन्तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे शं चतुष्पदे ।।१०।।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ।।११।।

ॐ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ।

अमृताभिषेकोऽस्तु । शान्तिः शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु ।

इसके बाद ब्राह्मण यजमान को तिलक करें—

ॐ भद्रमस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु ।
रक्षन्तु त्वा सदा देवाः सम्पदः सन्तु सर्वदा ।।
सपत्ना दुर्ग्रहाः पापाः दुष्टसत्त्वाद्युपद्रवाः ।
तमालपत्रमालोक्य निष्प्रभावा भवन्तु ते ।।

फिर—**ॐ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं०** इत्यादि मन्त्र से तिलक अक्षत लगावे ।

इसके पश्चात् पुण्याह-वाचक ब्राह्मणों को यजमान यथाशक्ति दक्षिणा देवे। दक्षिणा का संकल्प—

ॐ अद्य यथोक्तविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ नानानामगोत्रेभ्यः पुण्याहवाचकेभ्यो-ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति हिरण्यादिरूपां दक्षिणां विभज्य संप्रददे ।।

फिर उनसे प्रार्थना करे—

ॐ पुण्याहवाचनफलसमृद्धिरस्तु इति भवन्तो ब्रुवन्तु ।

इस पर ब्राह्मण बोलें—

ॐ पुण्याहवाचनफलसमृद्धिरस्तु ।

अनेन पुण्याहवाचनेन कर्माङ्गदेवताः श्रीआदित्याद्या नवग्रहाः प्रीयन्ताम् ।

इति पुण्याहवाचनप्रयोगः ।

□

षोडशमातृका-पूजन

कर्मादिषु च सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः ।
पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ।।

(छन्दोगपरिशिष्ट)

अर्थात्—

सभी शुभकार्यों के आरम्भ में गणेश जी के साथ 'षोडश मातृकाओं' का श्रद्धा-भक्ति के साथ पूजन करना चाहिए । क्योंकि इनकी पूजा करने से ये पुत्र धन समृद्धि आदि से मनुष्य को समृद्ध बनाती हैं और अभ्युदय के द्वारा उसे सब प्रकार से प्रसन्न एवं सन्तुष्ट करती हैं । तदनुसार गणेश और गौरी के पूजन के साथ ही गौर्यादि षोडश मातृकाओं के पूजन का विधान करते हुए कात्यायन ने लिखा है कि—

प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु ।
अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ।।

अर्थात् इन षोडश मातृकाओं की पूजा का प्रकार यह है कि रजत स्फाटिकादिमयी शुद्ध शुभ्र प्रतिमाओं में अथवा किसी पाटे या चौकी पर सुन्दर नवीन लाल वस्त्र विछाकर उस पर गोधूम-पुञ्जों (गेहूं की छोटी-छोटी ढेरियों) अथवा कुंकुम से लाल किए गए अक्षत-पुञ्जों पर इन मातृकाओं का विधिवत् पूजन कर नैवेद्य आदि समर्पित करे ।

सर्वप्रथम देशकाल का संकीर्तन कर सङ्कल्प करे—

अमुक गोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्माहं अमुक कर्मणः पूर्वाङ्गत्वेन सर्वाभ्युदयप्राप्तये पाटे लिखितासु निर्मितासु वा प्रतिमासु गणपतिसहितषोडशमातॄणां पूजनं करिष्ये ।

तत्पश्चात् हाथ में अक्षत लेकर सबकी एक साथ प्रतिष्ठा निम्न मन्त्रों से करे—

ॐ एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव । ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टम् । यज्ञꣳ समिमन्दधातु विश्वे देवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ ।

यह मन्त्र पढ़ कर—'ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतिसहितगौर्यादिमातर इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु' कह कर हाथ में लिए अक्षत उन पर चढ़ा दे । इसके वाद

ध्यान करें—

ॐ गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
हृष्टिः (धृतिः) पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता॥
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः।
गणेशेनाधिका ह्येता वरदाभयपाणयः॥

फिर अक्षत लेकर प्रत्येक का क्रमानुसार आवाहन पूजनादि नाममन्त्र से करे। व्याहृतिसहित नाममन्त्र ये हैं—१. ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः २. ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः ३. ॐ भूर्भुवः स्वः पद्मायै नमः ४. ॐ भूर्भुवः स्वः शच्यै नमः ५. ॐ भूर्भुवः स्वः मेधायै नमः ६. ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्र्यै नमः। ७. ॐ भूर्भुवः स्वः विजयायै नमः ८ ॐ भूर्भुवः स्वः जयायै नमः ९. ॐ भूर्भुवः स्वः देवसेनायै नमः १०. ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधायै नमः ११. ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहायै नमः १२. ॐ भूर्भुवः स्वः मातृभ्यो नमः १३. ॐ भूर्भुवः स्वः लोकमातृभ्यो नमः १४. ॐ भूर्भुवः स्वः हृष्ट्यै (धृत्यै) नमः १५. ॐ भूर्भुवः स्वः पुष्ट्यै नमः १६. ॐ भूर्भुवः स्वः तुष्ट्यै नमः १७. ॐ भूर्भुवः स्वः आत्मकुलदेवतायै नमः।

इस प्रकार नाममन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहन एवं पाद्यार्घाचमन स्नान वस्त्र गन्धाक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्यादिके द्वारा मातृकाओं का पूजन करे। इसके पश्चात् इसी प्रकार—

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः॥

इन सप्तमातृगणों का ॐ ब्राह्म्यै नमः। इत्यादि नाम मन्त्रों से पूजन करे।

वसोर्धारा—

कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तवारान् घृतेन तु।
कारयेत्पञ्च वारान्वा नातिनीचां नचोच्छ्रताम्॥

कात्यायन के इस निर्देशानुसार मातृकाओं के पास ही दीवार पर अथवा यदि दीवार निकट न हो तो पाटा खड़ा करके उस पर अपनी मध्यमा अङ्गुलि में घृत भर कर सात घृत-बिन्दु इस प्रकार लगाए गए कि घृत की कुछ धाराएं नीचे तक टपकती रहें। इन्हें ही 'वसोर्धारा' या 'घृतधारा' कहते हैं। घृतधारा के मन्त्र ये हैं:—

ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।

आज्यं यतोऽस्ति देवानामशनं मङ्गलात्मकम्।
अतो मातृः समुद्दिश्य घृतधारा ददाम्यहम्॥

श्रीश्च लक्ष्मी धृतिर्मेधा स्वाहा प्रज्ञा (पुष्टिःश्रद्धा) सरस्वती।
माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः[1]॥

इसके पश्चात् उन घृतबिन्दुओं पर सिन्दूर कुङ्कुम आदि लगाकर प्रत्येक मातृका का श्रियै नमः इत्यादि नाम मन्त्रों से पूजन करे और अवशिष्ट घृत को यजमान अपने मस्तक पर लगा ले।

पुष्पाञ्जलि—

निम्न मन्त्र पढ़कर गणपति गौर्यादि षोडश मातृगणों के साथ ब्राह्मी आदि सप्तमातृ गण तथा श्री आदि सातों घृतमातृकाओं को एक साथ पुष्पाञ्जलि समर्पित करें :—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥

हृष्टिः (धृतिः) पुष्टिस्तथातुष्टिरात्मनः कुलदेवताः।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडशः॥

हरात्मज चतुर्बाहो वारणास्य महोदर।
प्रसन्नो भव मह्यं त्वं गौरीपुत्र नमोऽस्तु ते॥

ब्रह्माणी कमलेन्दुसौम्यवदना माहेश्वरी लालया,
कौमारी रिपुदर्पनाशनकरी चक्रायुधा वैष्णवी।
वाराही घनघोरघर्घरमुखी चैन्द्री च वज्रायुधा,
चामुण्डा गणनाथरुद्रसहिता रक्षन्तु नो मातरः॥

ॐ ग गणपतये नमः गौर्यादिशोडशमातृभ्यो घृतमातृकाभ्यश्च नमः।
कहकर पुष्पाञ्जलि चढ़ा दें।

दक्षिणा-प्रदान—

ॐ समख्ये देव्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा।
मा म आयुः प्रमोषीर्म्मोअहं तव वीरं विदेय तव दवि संदृशि॥

---

१. वसोर्धारा शब्द में 'वसु' शब्द आठ वसुओं या वसुओं की आठ संख्या का द्योतक नहीं है, अतः कोई आठ धाराओं की मिथ्या कल्पना न करे। जैसा कि उपर्युक्त प्रमाणों से ही स्पष्ट है, ये सात घृतधाराएं होती हैं। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र से भी सात घृत-धाराओं की पुष्टि होती है :—

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसे हविः।
ये प्रणन्ति प्रचचक्षन्ति स्रगमेते दक्षिणात दुहते सप्तमातरम्॥

ओ३म् अम्बेऽअम्बिकेऽअम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ॥

ये मन्त्र पढ़कर आचार्य को दक्षिणा देवें—

ओ३म् अनया पूजया गौर्यादयो मातरः प्रीयन्तां न मम।

आयुष्यमन्त्रजप—

मातृका पूजन के पश्चात् निम्न आयुष्यमन्त्रों का पाठ किया जाए—

ओ३म् आयुष्यं वर्चस्य ँ रायस्पोषमौद्भिदम्। इद ँ हिरण्यंवर्चसे-ज्जैत्रायाविशतादुमाम् ॥

ओ३म् न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज ँ ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायाण ँ हिरण्य ँ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥

ओ३म् यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्य ँ शतानीकाय सुमनस्यमानास्तन्म आबध्नामि शतशारदायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥

इति

नान्दी-श्राद्ध

कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः।
नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ॥

सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादि-मुखदर्शने।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही[1] ॥

विष्णुपुराण के इस निर्देशानुसार सभी प्रमुख संस्कारों तथा गृह-प्रवेश आदि के शुभ अवसरों पर 'नान्दीमुख-श्राद्ध' आवश्यक है। यह नान्दीमुख-श्राद्ध मातका-पूजन के पश्चात् किया जाए, जैसा कि मत्स्यपुराण में लिखा है—

उत्सवानन्दसन्ताने यज्ञोद्वाहादिमङ्गले।
मातरः प्रथमं पूज्याःपितरस्तदनन्तरम् ॥

और यह भी कहा गया है कि—

आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः।
षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥

आदौ प्रधानसङ्कल्पस्ततः पुण्याहवाचनम्।
मातृपूजा ततः कार्या वृद्धिश्राद्धं ततः स्मृतम् ॥

अर्थात् स्वस्तिवाचन आदि आयुष्य मन्त्रों का जप, पाठ आदि करके सावधान हो छह पितरों का नान्दीश्राद्ध आरम्भ करे। यह छह पितर सपत्नीक पिता, पितामह और प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह हैं। कुछ आचार्यों के मत में

---

१. यद्यपि शास्त्रों में नान्दीश्राद्ध को परम आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण बताया गया है, तथापि वर्तमान में इसका प्रचलन कुछ कम है। हां, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि के महिला-समाज ने विवाह, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के अवसर पर किए जाने वाले रात्रि-जागरणों में पितरों के साथ 'पितरेश्वरों' अर्थात् दिव्यपितरों के स्मरण आवाहन आदि की परम्परा को आज भी सुरक्षित रखा हआ है। आचार्य या पुरोहित वर्ग का कर्तव्य है कि वे मातृकापूजन के पश्चात् नान्दीश्राद्ध भी अवश्य करवाया करें।

पिता आदि के साथ माता, पितामही तथा प्रपितामही को अलग से मानकर नौ नान्दीमुख पितरों का परिगणन करते हैं, किन्तु नान्दीश्राद्ध में उक्त छहों पितर सपत्नीक गृहीत हैं, अतः नौ पितृगणों के परिगणन की कोई आवश्यकता नहीं। इस नान्दी-श्राद्ध में पितृगण के साथ 'नान्दीमुख' शब्द का प्रयोग किया जाता है और अन्त में 'वृद्धि' शब्द का उच्चारण होता है, इसीलिये इसे 'नान्दी' या 'नान्दीमुख' श्राद्ध और 'वृद्धि-श्राद्ध' भी कहते हैं। क्योंकि यह अभ्युदय (लौकिक कल्याण या सर्वविध सुख ऐश्वर्य) की प्राप्ति की कामना से किया जाता है और यह आभ्युदयिक या माङ्गलिक कार्यों के अवसरों पर सम्पन्न किया जाता है, इसलिये इसे **'आभ्युदयिक श्राद्ध'** भी कहते हैं।

'आभ्युदयिके प्रदक्षिणमुपचारः। पूर्वाह्णे। पित्र्यमन्त्रवर्जं जपः। ऋजवो दर्भाः। यवैस्तिलार्थाः। सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नः।······नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहा मातामहाः प्रमातामहा वृद्धप्रमातामहाश्च प्रीयन्तामिति न स्वधां प्रयुञ्जीत। युग्मानाशयेदत्र'[1]।

(पारस्करगृह्यसूत्र-परिशिष्ट-कण्डिका-६)

पारस्कर का नान्दीमुख श्राद्धविषयक यह निर्देश इतना स्पष्ट है कि किसी के लिए कहीं किसी प्रकार की शंका का कोई अवसर ही नहीं रह जाता। यहां स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि इस नान्दीमुख श्राद्ध में सभी विधि-विधान देवकार्यवत् सम्पन्न होते हैं, पितृकर्म या श्राद्धादिवत् नहीं। जैसेकि—

१. नान्दीमुख में यज्ञोपवीत को अपसव्य नहीं करना होता वह सव्य ही रहता है।

२. नान्दीमुख अन्य श्राद्ध कर्म की भांति मध्याह्न में नहीं, अपितु देवपूजन की भांति पूर्वाह्ण या प्रातःकाल ही सम्पादित होता है और पितरों के आवाहन आदि से सम्बद्ध **"उदीरिताम्"** इत्यादि त्रयोदशर्च पितृमन्त्र यहां नहीं पढ़े जाते।

३. नान्दीमुख में देवकार्य की भांति कुशाएं भी सीधी ही रखी जाती हैं, उन्हें पितृकर्म की भांति दोहरा मोड़कर मोटक आदि नहीं बनाये जाते।

४. नान्दीमुख में तिलों का उपयोग भी नहीं होता उनके स्थान पर जौ का ही उपयोग किया जाता है।

५. नन्दीमुख में पितरों के लिए प्रयुक्त ('स्वधा' शब्द भी प्रयुक्त नहीं होता उसके स्थान पर (स्वाहा या नमः) इत्यादि शब्द प्रयुक्त होते हैं।

६. सबसे बड़ी बात यह है कि श्राद्ध में विषम संख्या के ब्राह्मणो को एक दिन पूर्व निमन्त्रित किया जाता है, किन्तु इसमें दक्षिणा ही अर्पित होती है।

---

१. नान्दीश्राद्ध के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन पारस्कर गृह्यसूत्र के उक्त प्रसङ्ग के कर्काचार्य व गदाधराचार्य के एवं श्राद्धकाशिका नामक व्याख्यानों में देखें।

७. नन्दीश्राद्ध पूर्वाभिमुख किया जाता है ।

इस प्रकार नान्दीमुख श्राद्ध में देवगणों की ही पितृगणों के रूप में पूजा की जाती है। शातातप ने स्पष्ट लिखा है कि—

पितृणां रूपमास्थाय देवा ह्यन्नं समश्नुते ।
यथैवोपचरेद्देवांस्तथा वृद्धौ पितृनपि ॥

और कौन-कौन से देव नान्दीश्रद्ध में पितृ-रूप में पूजे जाते हैं, इसका भी स्पष्ट निर्देश करते हुए शानातप कहते हैं कि—

वसवः पितरो ज्ञेया रुद्राश्चैव पितामहाः ।
प्रपितामहादित्या इत्येषा नैगमी श्रुतिः ॥

और इनसे पूर्व सत्य वसु-संज्ञक दिव्य पितरों का पूजन किया जाता है ।

यह नान्दीश्राद्ध कौन करे, विशेषतः जीवित-पितृक व्यक्ति करे या नही, इसके सम्बन्ध में मतभेद होते हुए भी बहुमत यही है कि संस्कार्य बालक-बालिका का पिता और यदि पिता न हो तो पितृव्य आदि ही नान्दीश्राद्ध करे, भले ही उसके पिता जीवित ही क्यों न हों। क्योंकि इस नान्दीमुखश्राद्ध में दिव्य पितरों का ही या ऊपर की तीन पीढ़ियों का पूजन आदि होगा ।

नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः ।

(प्रयोग रत्न)

दद्यात्त्रिभ्यःपरेभ्यस्तु जीवेच्चेत्त्रितयं यदा ॥

(इति निगमोक्तिः)

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्मणि ।

(छन्दोगपरिशिष्ट)

पुराणसमुच्चय में यह भी आदेश दिया गया है कि—

न स्वधाशर्मवर्मेति पितृनाम न चोच्चरेत् ।
अस्मच्छब्दं न कुर्वीत श्राद्धे नान्दीमुखे क्वचित् ॥
शुभाय प्रथमान्तेन वृद्धौ सङ्कल्पमाचरेत् ।
न षष्ठ्या न चतुर्थ्या वा सम्बुद्ध्या वा कदाचन ॥
अनस्मद्वृद्धिशब्दानामरूपाणामगोतृणाम् ।
अनाम्नाऽतिलैश्चैव नान्दीश्राद्धं च सव्यतः ॥

यह नान्दीश्राद्ध 'सपिण्डक' और 'अपिण्डक' दोनों प्रकार का होता है। सपिण्डक नान्दीश्राद्ध में ये पिण्ड जौ या बेर आदि फलों के ही होते हैं—

संयोज्ययवकर्कन्धून्दधिभिःप्राङ्मुखस्तथा ।

किन्तु माध्यन्दिन वाजसनेयी परम्परा में अपिण्डक साङ्कल्पिक नान्दीश्राद्ध ही विहित है।

साङ्कल्पिक विधि से नान्दीश्राद्ध का विधि-विधान[1]

नान्दीश्राद्ध में सत्यवसु-संज्ञक नान्दीमुख विश्वेदेवों का पूजन किया जाता है। उनका तथा सपत्नीक पिता, पितामह, प्रपितामह एवं मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन तीनों कोटियों का पाद्य आसन तथा गन्धाक्षत पुष्पादि एवं भोजनान्ननिष्क्रयीभूत द्रव्यदान तथा दुग्ध और यवों सहित जलदान इन सब उपचारों से पूजन कर नान्दीमुख पितृ-स्थानीय ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण किया जाता है और दक्षिणा दी जाती है।

सङ्कल्प—

नीवीबन्धन कर के (अर्थात् धोती के किनारे में तीन कुशा या दूब लेकर अपनी कमर की दाहिनी ओर लपेट कर) 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा' इत्यादि मन्त्र से यजमान अपने पर तथा सब सामाग्री पर जल के छीटे दे देवे तथा आचमन व प्राणायाम कर ले।

तब नान्दीश्राद्ध का इस प्रकार सङ्कल्प करे—

हरिः ॐ अद्य पूर्वोच्चारितशुभपुण्यतिथौ मम सुतस्य सुताया वा अमुक संस्काराङ्गत्वेन साङ्कल्पिकेन विधिना ब्राह्मणयुग्मभोजनपर्याप्तान्ननिष्क्रयीभूतयथाशक्तिहिरण्येन द्रव्येण वा नान्दीश्राद्धमहं करिष्ये।

तब सत्यवसु-संज्ञक विश्वेदेव नान्दीमुख पितरों को और स्वगोत्र के पिता, पितामह और प्रपितामह एवं द्वितीयगोत्र के मातामह आदि का पाद्यासनगन्धार्चन आदि से इस प्रकार पूजन किया जाए—

पाद्य—

सत्यवसु-संज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐभूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः।

स्वगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः। द्वितीयगोत्राः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षलनं वृद्धिः।

---

१. नान्दीश्राद्ध की विधि में वैविध्य है। श्री दुर्गाशङ्कर शास्त्री-विरचित '**शुक्लयजुर्वेदीय-माध्यन्दिनवाजसनेयीब्रह्मनित्यकर्मसमुच्चय**' तथा पं० भीमसेन शर्मा कृत '**षोडश-संस्कारविधि**' में दी गई विधि कुछ ऐसी ही है, किन्तु उन दोनों में भी पारस्कर तथा पुराण समुच्चय में दिए गए निर्देशों की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया।

आसन-दान—

इसके पश्चात् नान्दीमुख पितरों को निम्न वाक्य बोल कर कुशा के आसन प्रदान किए जाएं—

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः आसनं सुखासनं वृद्धिः नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम् ।

(अर्थात् आप दत्तावधान होकर हमारी इस पूजा को ग्रहण कीजिए ।)

ब्राह्मण	—	ॐ तथा ।
यजमान	—	प्राप्नुतां भवन्तौ ।
ब्राह्मण	—	प्राप्नवावः ।

यजमान—

स्वगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः सपत्नीकः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः आसनं सुखासनं वृद्धिः । द्वितीयगोत्राः मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखा ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः आसनं सुखासनं वृद्धिः ।

गन्धपुष्पाक्षताद्यर्चन

इसके पश्चात् गन्ध पुष्पाक्षत आदि से इस प्रकार अर्चन करें—

सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखा ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः गन्धाद्यर्चनं यथाविभागं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

स्वगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखा ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः गन्धाद्यर्चनं यथाविभागं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

द्वितीयगोत्रा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीका नान्दीमुखा ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः गन्धाद्यर्चनं यथाविभागं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

भोजननिष्क्रय द्रव्य-दान

इसके पश्चात् नान्दीमुख पितरों के भोजन के लिए पर्याप्त (निष्क्रय) द्रव्य इस प्रकार समर्पित किया जाए—

सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं ब्राह्मणयुग्मभोजनपर्याप्तमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तममृतरूपेण वः स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

स्वगोत्राः पितृपितामहप्रपितामहाः सपत्नीका नान्दीमुखा ॐ भूर्भुवः स्वः इदं ब्राह्मणयुग्मभोजनपर्याप्तमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तममृतरूपेण वः स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

द्वितीयगोत्रा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीका नान्दीमुखा ॐ भूर्भुवः स्वः इदं ब्राह्मणयुग्मभोजनपर्याप्तमन्नं तन्निष्क्रयीभूतं किञ्चिद्धिरण्यं दत्तममृतरूपेण वः स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

दुग्धयवसहितजलदान—

इसके पश्चात् जौ एव दुग्ध-युक्त जल से कुशाओं के द्वारा निम्न मन्त्र पढ़ते हुए देव-तीर्थ से नान्दीमुख पितरों का तर्पण करें—

ॐ नान्दीमुखाः सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम् ।

ॐ स्वगोत्राः सपत्नीका नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहाः प्रीयन्ताम् । ॐ द्वितीय-गोत्राः सपत्नीका नान्दीमुखा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः प्रीयन्ताम् ।

आशीर्वादग्रहण—

फिर ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करे । यजमान इस प्रकार प्रार्थना करता जाए और ब्राह्मण उत्तर देते जाएं—

यजामन	ब्राह्मण
ॐ गोत्रं नो वर्धताम् ।	वर्धन्तां वो गोत्रम् ।
ॐ दातारो नोऽभिवर्धन्ताम् ।	वर्धन्तां वो दातारः ।
वेदाश्च नोऽभिवर्धन्ताम् ।	वर्धन्तां वो वेदाः ।
सन्ततिर्नोऽभिवर्धताम् ।	वर्धन्तां वः सन्ततिः ।
श्रद्धा च नो मा व्यपगमेत् ।	मा व्यपगमेद्वः श्रद्धा ।
बहु देयं च नोऽस्तु ।	अस्तु वो बहुदेयम् ।
अन्नं च नो बहु भवेत् ।	बहु भवेद्वोऽन्नम् ।
अतिथींश्च लभामहे ।	लभन्तां वोऽतिथयः ।
याचितारश्च नः सन्तु ।	सन्तु वो याचितारः ।
एता आशिषः सत्याः सन्तु ।	सन्त्वेताः सत्या आशिषः ।

दक्षिणा-दान—

इसके पश्चात् दक्षिणा दान के लिए दक्षिणा का द्रव्य हाथ में लेकर तथा उसे धोकर इस प्रकार सङ्कल्प करे—

ॐ अद्य यथोक्तविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुककर्माङ्गनान्दीश्राद्धे स्वगोत्राणां द्वितीयगोत्राणाञ्च नान्दीमुखानां सपत्नीकानां पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामह-वृद्धप्रमातामहानां तत्सम्बन्धिनां सत्यवसुसंज्ञकानां विश्वेदेवानां च प्रीतये कर्मसाद्-गुण्यार्थं तत्फलाप्तये च इमां द्राक्षाऽमलकार्द्रकनिष्क्रयिणीं दक्षिणां यथाविभागं दातुमह-

मुत्सृजे ।

इसे पढ़कर सबके हाथों में द्राक्षा, आंवला और अदरक सहित दक्षिणा दे देवे । विप्र कहें—ॐ स्वस्ति ।

यजमान—नान्दीश्राद्धं सम्पन्नम् ।

ब्राह्मण—ॐ सुसम्पन्नम् ।

फिर पूर्व बांधी हुई नीवी को खोल दे और निम्न मन्त्र पढ़कर कुशबटुओं को उठाकर कर्मकलश को उनके चारों ओर घुमा कर विर्सजन करे या कुशबटु की ग्रन्थि खोले ।

तत्पश्चात् आचमन करके कहे—

अस्मिन्नान्दीश्राद्धे न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनान्नान्दीमुखपितृप्रसादाच्च सर्वःपरिपूर्णोऽस्तु ।

ब्राह्मण—अस्तु परिपूर्णः ।

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः ।

इति नान्दीश्राद्धम्

नवग्रहादि-पूजन

आदौ नवग्रहानर्च्य ततः कर्म समाचरेत् ।
नवग्रहाऽनर्चने तु न सिद्धिर्विधिचोदिता ॥
मध्ये स्थाप्यो रवीरक्तः सोमः श्वेतोऽग्निकोणके ।
दक्षिणेऽङ्गारको रक्तः पीत ईशानके बुधः ॥
बृहस्पतिरुदक्पीतः शुक्रः श्वेतस्तु पूर्वके ।
पश्चिमे तु शनिः कृष्णो राहुः कालश्च नैर्ऋते ॥
वायव्ये केतवो धूम्रा एतद्वै ग्रहवर्णकम् ।
एवमक्षतपुञ्जेषु प्रतिष्ठाप्या नवग्रहाः[1] ॥

वेदी अथवा पाटे पर बिछाए गए नवीन श्वेत वस्त्र पर निर्मित कर्णिकायुक्त अष्टदल कमल या वर्गाकार खानों में चित्रानुसार एवं वर्णों के अनुसार नवग्रहों तथा उनके दायें अधिदेवता और बायें प्रत्यधिदेवताओं की पूजा-प्रतिष्ठा की जाती है ।

सङ्कल्प—

आचमन प्राणायाम आदि के पश्चात् इस प्रकार सङ्कल्प करें—

'ॐ तत्सदद्य' इत्यादि के साथ तिथ्यादि का स्मरण कर—अमुकगोत्रः अमुक शर्माहं मम तथास्य कुमारस्य अस्याः कुमारिकाया वा दशाविदशान्तर्दशास्थितादित्यादिग्रह-

---

१. विवाहादि में गणेश एवं नवग्रहादि के पूजन का प्रसङ्ग बार-बार आता है । अतः एक बार महागणपत्यादि की साङ्गोपाङ्ग पूजा-प्रतिष्ठा कर लेने के पश्चात् या तो नवग्रह के प्रतीक कर्णिकायुक्त अष्टदल या चतुर्विंशतिदल-कमल के ऊपर धान्य की ढेरी पर स्थापित कलशअथवा केसर कुङ्कुम से बनाए गए स्वस्तिक 卐 पर स्थापित मौलि लिपटी हुई सुपारी में ही गणेशादि का संक्षिप्त पूजन किया जाता है । राजस्थानादि में जो कलश रख कर 'ॐ गणानान्त्वा' तथा 'ब्रह्मामुरारि' आदि से समय-समय पर गणपत्यादि का पूजन किया जाता है, वही संक्षिप्त शास्त्रीय पूजन-विधि सर्वत्र अपनायी जा सकती है ।

सूचितदुष्टफलोपशान्तिपूर्वकशुभफलप्राप्तये करिष्यमाण अमुकसंस्कारकर्मणि सर्वोपद्रवशान्तिपूर्वकदीर्घायुरारोग्यहर्षविजयसुखसौभाग्यादिप्राप्तये श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थञ्च अमुकसंस्कारकर्माङ्गनिमित्तकं नवग्रहादीनां यथालब्धोपचारैः पूजनं करिष्ये ।

१. सूर्यः—

सर्वप्रथम ग्रहमण्डल के मध्य में रक्त पुष्पाक्षतों से सूर्य का आवाहन पूजनादि करे—

ॐ सप्तम्यां विशाखान्वितायां कलिङ्गे जातं कश्यपगोत्रं लोहितवर्णं वर्त्तुलाकृतिं मण्डलमध्यस्थं प्राङ्मुखं द्विभुजं पद्महस्तं सप्ताश्वरथवाहनं क्षत्रियाधिपतिं सूर्यमावाहयामि ।

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ।

जपाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो सूर्य इहागच्छ इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव मम पूजां गृहाण । ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्याय नमः ।

मन्त्र पढ़कर पाद्यार्घ, स्नान, वस्त्र (कौसुम्ब सूत्र), नैवेद्य, आचमनादि एक साथ चढ़ाकर सूर्य की पूजा करे । इसी प्रकार अन्य ग्रहों, अधिदेवता व प्रत्यधिदेवता का निम्न मन्त्रों से पूजन करे—

२. चन्द्रमा—

श्वेत पुष्पाक्षत लेकर चन्द्रमा का निम्न मन्त्र से आवाहन पूजनादि करे—

चतुर्दश्यां कृत्तिकान्वितायां समुद्रे जातमत्रिगोत्रं श्वेतवर्णं चतुरस्राकृतिमर्द्धचन्द्राकृतिं वा मण्डलात्पूर्वदक्षिणदिक्स्थं पश्चिमाभिमुखं दशाश्वरथवाहनं विशाम्पतिं चन्द्रमावाहयामि ।

ॐ इमं देवाअ सपत्न ꣳ सुहवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एषवोऽमी राजा सोमोऽस्माकम्ब्राह्मणाना ꣳ राजा ।

दधिशङ्खतुषाराभं दुरितक्षयकारकम् ।
सोमं क्षीराब्धिजं वन्दे शम्भोर्मुकुटभूषणम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो चन्द्र इहागच्छ···चन्द्राय नमः ।

३. मङ्गल—

मङ्गल का रक्त पुष्पों से पूजन इन मन्त्रों से करे—

ॐ दशम्यां पूर्वाषाढान्वितायाम् अवन्त्यां जातं भारद्वाजगोत्रं रक्तवर्णं त्रिकोणं मण्डलाद्दक्षिणदिग्विभागस्थं उत्तराभिमुखं मेषवाहनं क्षत्रियाधिपतिं भौममावाहयामि ।

ॐ अग्निः मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाᳪरेताᳪसि जिन्वति ।

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम् ।
त्रिकोणं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भौम इहागच्छ·········भौमाय नमः ।

४. बुधः—

बुध का पीले पुष्पों से निम्न मन्त्रों से आवाहन पूजन आदि करे—

ॐ द्वादश्यां धनिष्ठान्वितायां मगधदेशे जातमत्रिगोत्रं हरिद्वर्णं बाणाकृति मण्डलात्पूर्वोत्तरस्थं सूर्याभिमुखं शूद्राधिपतिं बुधमावाहयामि ।

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्तेसᳪसृजेथामयञ्च । अस्मिन्त्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

प्रियङ्गुकलिकाश्यामं बाणाकारं शुभङ्करम् ।
सोम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बुध इहागच्छ·········बुधाय नमः ।

५. बृहस्पतिः —

पीले पुष्पों से बृहस्पति का आवाहन पूजन इन मन्त्रों से करें—

ॐ एकादश्यामुत्तराफाल्गुनीयुतायां सिन्धुदेशजातमाङ्गीरसगोत्रं गोरोचनाभं दीर्घचतुष्कोणाकृतिं मण्डलादुत्तरे स्थितं सूर्याभिमुखं सिंहवाहनं गुरुमावाहयामि ।

ॐ बृहस्पतेऽअतियदर्योऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणन्धेहि चित्रम् ॥

देवानाञ्च ऋषीणाञ्च गुरुं काञ्चनसन्निभम् ।
आयाताकारदेवेशं तं नमामि बृहस्पतिम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पते इहागच्छ·········बृहस्पतये नमः ।

६. शुक्र—

शुक्र का आवाहन पूजन श्वेत पुष्पों से इन मन्त्रों से करे—

ॐ नवम्यां पुष्ययुतायां भोजकटे जातं भार्गवगोत्रं शुक्लवर्णं पञ्चकोणं मण्डलात्पूर्वदिक्स्थं सूर्याभिमुखं श्वेताश्ववाहनं शुक्रमावाहयामि ।

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसम्ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ७ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियम्दिम्पयोऽमृतम्मधु ।

हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानाम्परमं गुरुम् ।
शास्त्रज्ञं पञ्चकोणं तं शुक्रं वन्दे महाद्युतिम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो शुक्र इहागच्छ ……शुक्राय नमः ।

७. शनि—

शनि का काले पुष्प से आवाहन पूजन आदि निम्न मन्त्रों से करें—

ॐ अष्टम्यां रेवतीयुतायां सौराष्ट्रे जातं काश्यपगोत्रं लौहवर्णं धनुराकृतिं मण्डलात्पश्चिमस्थं सूर्याभिमुखं गृद्धवाहनं संकरजातिं शनिमावाहयामि ।

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ।

नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
छायासूनुं धनुर्देहं तं नमामि शनैश्चरम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शनैश्चर इहागच्छ……शनैश्चराय नमः ।

८. राहु—

राहु का आवाहन पूजन काले पुष्पों से निम्न मन्त्र से करे—

ॐ पूर्णमास्यां भरणीयुतायां बर्बरे जातं पैठीनसिगोत्रं कृष्णवर्णं शूर्पाकृतिं मण्डलात्पश्चिमदक्षिणदिक्स्थितं शूद्राधिपतिं राहुमावाहयामि ।

ॐ कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ।

अर्द्धकायं महावीर्यं शूर्पाकारं तमप्रियम् ।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः राहो इहागच्छ ……राहवे नमः ।

९. केतु—

नीले या काले पुष्प से केतु का आवाहन पूजन करे—

ॐ अमावस्यायामाश्लेषायामन्तर्वेद्यां जातं जैमिनिगोत्रं धूम्रवर्णं ध्वजाकृतिं कपोतवाहनमन्त्यजाधिपतिं मण्डलात्पश्चिमोत्तरस्थं सूर्याभिमुखं केतुमावाहयामि ।

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथा ।

पलाशकुड्मलश्यामं तारकाग्रहमस्तकम् ।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः केतो इहागच्छ…केतवे नमः । □

अधिदेवताओं का पूजन

नवग्रहों के पश्चात् उनके अधिदेवताओं के पूजन का क्रम बताते हुए स्कन्दपुराण में कहा गया है—

ईश्वरं त्र्यम्बकं चेति श्रीश्च त इति पार्वतीम् ।
यदक्रन्देति च स्कन्दं विष्णुं विष्णोरराडिति ॥

आब्रह्मन्निति ब्रह्माणं सजोषा इति वासवम् ।
यमाय त्वेति च यमं कालं कार्षिरसीति च ॥
चित्रावस्विति मन्त्रेण चित्रगुप्तं निधापयेत् ।

सभी अधिदेवता ओर प्रत्यधिदेवताओं का पूजन श्वेत पुष्प और अक्षत से किया जाता है ।

१. ईश्वर—

सूर्य के दायें उसके अधिदेवता ईश्वर का आवाहन पूजन आदि निम्न मन्त्र से करें—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

सर्वविद्याप्रदातारं चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
सर्वेशमाशुतोषं तं शङ्करं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ईश्वर इहागच्छ इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव मम पूजां गृहाण । आवाहनं ध्यानं पाद्यमर्घं स्नानं कौसुम्बसूत्रं धूपदीपगन्धाक्षताद्याचमनीयानि सर्वोपचाराणि समर्पयामि । ईश्वराय नमः ।

२. उमा—

चन्द्रमा के दाहिने उमा का पूजन निम्न मन्त्र से किया जाए—

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं म इषाण ॥

दुःखदारिद्र्यशमनीं क्षीरसागरसम्भवाम् ।
सर्वसौख्यकरीं लक्ष्मीं विष्णुपत्नीं नमाम्यहम् ॥

गणेशस्कन्दजननीं शङ्करप्राणवल्लभाम् ।
शैलाधिराजतनयां तामुमां मातरं नुमः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः उमे इहागच्छ···उमायै नमः ।

३. स्कन्द (कार्तिकेय)—

मङ्गल की दायीं ओर निम्न मन्त्र से कार्तिकेय का आवाहन पूजन करे—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमानउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ।

देवसेनापतिं स्कन्दं षण्मुखं शिखिवाहनम् ।
कुमारं शक्तिहस्तं तं कार्तिकेयं नमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः स्कन्द इहागच्छ. . .स्कन्दाय नमः ।

४. विष्णु—

बुध के दाये निम्न मन्त्र से भगवान् विष्णु का आवाहन पूजन आदि करे—

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णो श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥

लक्ष्मीशं सृष्टित्रातारं क्षीरसागरशायिनम् ।
वैकुण्ठवासिनं विष्णुं वन्दे सर्वफलप्रदम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णो इहागच्छ विष्णवे नमः ।

५. ब्रह्मा—

गुरु के दायें निम्न मन्त्र से ब्रह्माजी का आवाहन पूजन आदि करे—

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेनऽआवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विव ॥

चतुर्मुखं चतुर्बाहुं सृष्टेरुत्पत्तिकारकम् ।
चतुर्वेदप्रवक्तारं ब्रह्माणं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भुर्भुवः स्वः भो ब्रह्मन् इहागच्छ···ब्रह्मणे नमः ।

६. इन्द्र—

शुक्र के दाहिने निम्न मन्त्र से इन्द्र का आवाहन पूजन करे—

ॐ सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् जहि शत्रून् ।

वृत्रघ्नं स्वर्गलोकेशं वज्रहस्तं पुरन्दरम् ।
शचीपतिं सुरश्रेष्ठं देवेन्द्रं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्र इहागच्छ···इन्द्राय नमः '

७. यम—

शनि के दायें यम का निम्न मन्त्र से आवाहन पूजन आदि करे—

ॐ यमाय त्वा अङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्म पित्रे ।।

अथवा-ॐ असि यमोऽअस्यादित्योऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन असि सोमेन समया विपृक्तऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः यम इहागच्छ···यमाय नमः ।

(अत्रोदकस्पर्शः—यहां जल का स्पर्श करें)

८. काल—

राहु के दायें काल (कालाभिमानी देवता) का आवाहन पूजन निम्न मन्त्र से करे—

ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वाऽक्षित्वाऽउन्नयामि।
समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधी ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो काल इहागच्छ···कालाय नमः।

(अत्रोदकस्पर्शः)

९. चित्रगुप्त—

फिर केतु के दाएं निम्न मन्त्र में चित्रगुप्त का पूजन करे—

ॐ भूर्भुवः स्वः भो चित्रगुप्त इहागच्छ...चित्रगुप्ताय नमः।

इत्यधिदेवतापूजनम्

प्रत्यधिदेवताओं का पूजन

ग्रहों के प्रत्यधिदेवताओं का नामोल्लेख मत्स्यपुराण के ९३वें अध्याय में इस प्रकार किया गया है—

अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता।
प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः ॥

तदनुसार ग्रहों के वाम भाग में श्वेत पुष्पाक्षतों से उनके प्रत्यधिदेवताओं का आवाहन पूजन आदि करे।

१. **अग्नि**—सूर्य के बायें—

ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ आसादयादिह।

लोकानामुपकर्तारं जातवेदं हुताशनम्।
पुरोहितं तु यज्ञस्य तमग्निं प्रणमाम्यहम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्ने इहागच्छ···अग्नये नमः।

२. **आप**—चन्द्रमा के बायें निम्न मन्त्र से आवाहन पूजन करे—

ॐ अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः।
देवीरापो योवऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायँवाज् ँ सेत् ॥

अथवा—'आपो हिष्टा मयोभुव' इत्यादि।

पावनानि प्रशस्तानि रसानां कारणानि च।
अन्नादीनां निधानानि तेभ्यो ह्यद्भ्यो नमो नमः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो आपः इहागच्छत अद्भ्यो नमः।

३. **भूमि**—मङ्गल के बायें निम्न मन्त्र से भूमि का आवाहन पूजन करे—

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशिनी यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यमिमां पूजां गृहाण मे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भूमे इहागच्छ···भूम्यै नमः।

४. **विष्णु**—बुध के बायें भगवान् विष्णु का निम्न मन्त्र से आवाहन पूजन करे—

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाᳬसुरे ॥

भगवान् विष्णु का पूर्वोक्त श्लोक ।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगवन् विष्णो इहागच्छ···विष्णवे नमः ।

५. **इन्द्र**—गुरु के बायें इन्द्र का निम्न मन्त्र से आवाहन पूजन करे—

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रᳬहवे हवे सुहव ᳬ शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रᳬ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो इन्द्र इहागच्छ···इन्द्राय नमः ।

६. **इन्द्राणी**—शुक्र के वाम भाग में इन्द्राणी का निम्न मन्त्र से आवाहन पूजन करे—

ॐ आदित्यैरास्नाऽसीन्द्राण्याऽउष्णीषः पूषाऽसि धर्माय दीष्व ।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राणि इहागच्छ···इन्द्राण्यै नमः ।

७. **प्रजापति**—शनि के वाम भाग में निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर प्रजापति देव का आवाहन पूजन करे—

ॐ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयᳬस्याम पतयो रयीणाम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापते इहागच्छ प्रजापतये नमः ।

८. **सर्पाः**—राहु के वाम भाग में निम्न मन्त्रों से सर्पों का आवाहन पूजन करे—

ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिविमनु ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो सर्पा इहागच्छन्तु सर्पेभ्यो नमः ।

९. **ब्रह्मा**—केतु के वाम भाग में निम्न मन्त्रों से ब्रह्मा का आवाहन पूजन करे—

ॐ ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः । सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विव ॥

ब्रह्मा का उपर्युक्त श्लोक पढ़ें ।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो ब्रह्मन् इहागच्छ···ब्रह्मणे नमः ।

पञ्चलोकपाल-पूजन

विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च ।
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ।।

इस कथन के अनुसार नवग्रहों तथा उनके अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताओं के पूजन के बाद गणेशादि पञ्चलोकपालों का पूजन निम्न क्रम से करे—

१. गणेश (राहु के उत्तर में)—

'ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे' इत्यादि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो विनायक इहागच्छ, इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठिता वरदो भव मम पूजां गृहाण । श्री गणेशाय नमः ।

२. (क) दुर्गा (शनि के उत्तर में)—

ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दुर्गे इहागच्छ. . . । दुर्गायै नमः ।

३. (ख) वायु (सूर्य के उत्तर में)—

ॐ वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविँशतिः ।
ते अग्रेऽश्वमयुञ्जस्ते अस्मिञ्जवमादधुः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायो इहागच्छ··· । वायवे नमः ।

४. आकाश (राहु के दक्षिण में)—

ॐ ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्वूर्धा शुक्रा शोचीँष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः आकाश इहागच्छ··· । आकाशाय नमः ।

५. अश्विनीकुमार (केतु के दक्षिण में)—

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सुनृतावती यज्ञं मिमिक्षितम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो अश्विनौ इहागच्छताम्···अश्विनीकुमाराभ्यां नमः ।

५. (क) वास्तोष्पति (गुरु के उत्तर में)—

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्त्स्वावेशोऽअनमीवो नः यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वास्तोष्पते इहागच्छ... वास्तोस्पतये नमः ।

(ख) क्षेत्रपाल—

इस प्रकार गुरु के उत्तर में क्षेत्रपाल का भी नाम मन्त्र से पूजन करे ।

—०—

दशदिक्पाल-पूजन

दशदिक्पालों का पूजन निम्न क्रम से करें।

१. **इन्द्र (पूर्व में)**—त्रातारमिन्द्र...इत्यादि उपर्युक्त मन्त्र से ।

२. **अग्नि (आग्नेय कोण में)**— अग्नि दूतं...इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्र से ।

३. **यम (दक्षिण में)**—असि यमो...इत्यादि मन्त्र से ।

४. **निर्ऋति (नैर्ऋत्य कोण में)**—

ॐ एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्वः ।

ॐ भूर्भुवः स्व. निर्ऋते इहागच्छ निर्ऋतये नमः ।

५. **वरुण (पश्चिम में)**—

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वरुण इहागच्छ.. वरुणाय नमः ।

६. **वायु (वायव्य कोण में)**—ॐ वातो व...इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्र से ।

७. **कुबेर (उत्तरमें)**—

ॐ वयꣳसोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो कुबेर इहागच्छ...कुबेराय नमः ।

८. **ईश, ईशान (ईशान कोण में)**—

ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो ईश इहागच्छ इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव मम पूजां गृहाण । भगवते ईशाय, ईशानाय वा नमः ।

९. **ब्रह्मा (ऊर्ध्व, पूर्व और ईशान के मध्य में)**—ॐ ब्रह्म जज्ञानं...इत्यादि मन्त्र से ।

१०. **अनन्त (अधः पश्चिम और नैर्ऋत्य के मध्य में)**— ॐ नमोस्तु सर्पेभ्यो...इत्यादि मन्त्र से ।

पुष्पाञ्जलि और प्रार्थना

इस प्रकार नवग्रहों उनके अधिदेवताओं और प्रत्यधिदेवताओं के साथ पञ्च लोक पालों और दस दिक्पालों व रुद्रकलश का पूजन कर इन सब को एक साथ निम्न मन्त्रों से दोनों हाथों में पुष्प लेकर सभी लोग खड़े होकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करें। यथासम्भव मन्त्र भी सब लोग समवेत मधुर स्वर में बोलें —

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ।
सूर्यः शौर्यमथेन्दुरुच्चपदवीं सन्मङ्गलं मङ्गलः,
सद्बुद्धिं च बुधो गुरुश्च गुरुतां शुक्रः शुभं शं शनिः ।।
राहुर्बाहुबलं करोतु सततं केतुः कुलस्योन्नतिं,
नित्यं प्रीतिकरा भवन्तु मम ते सर्वेऽनुकूला ग्रहाः ।।

इन मन्त्रों से सभी देवताओं पर पुष्पाञ्जलि चढ़ा दें और तब निम्न मन्त्र से प्रार्थना करें—

आयुश्च वित्तञ्च तथा सुखञ्च
धर्मार्थलाभो बहुपुत्रताञ्च ।
शत्रुक्षयं राजसु पूज्यतां च
तुष्टा ग्रहाः क्षेमकरा भवन्तु ।।

दक्षिणा—इसके पश्चात् यजमान आचार्य आदि के मस्तक पर तिलकाक्षत लगाकर दक्षिणा एवं भूयसि दक्षिणा आदि प्रदान करे।

सङ्कल्प—ॐ तत्सदद्य अमुक तिथौ शर्माहं अमुक कर्मणि अत्रावाहितानां नवग्रहाणामधिदेवताप्रत्यधिदेवतालोकपालदिक्पाल(योगिनीक्षेत्रपाल) सहितानां पूजायाः साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्यार्थञ्चेमां दक्षिणां यथानामगोत्रेभ्यः ब्राह्मणेभ्यः दातुमहमुत्सृजे ।

अनन्तर आचार्य यजमान तथा संस्कार्य बालकः आदि के मस्तक पर तिलकाक्षत लगाए। मन्त्र—

ॐ भद्रमस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु।
रक्षन्तु त्वां सदा देवाः सम्पदः सन्तु सर्वदा ।।

आशीर्वाद—आचार्य यजमान को आशीर्वाद स्वरूप ऋतुफल आदि प्रदान करे।

मन्त्र—

ॐ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुन र्ब्राह्मणो वसूनीथ यज्ञैः ।। घृतेन त्वं तन्वर्द्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ।।

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तथा ।।
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणःसन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु सन्तु सर्वार्थसाधकाः ।।
विप्रहस्ताच्च गृह्णीयाद्यज्ञपुष्पफलाक्षतान् ।
चत्वारस्तस्य वर्धन्तामायुः कीर्तिर्यशोबलम् ।।

चिरंजीविनः शतायुषश्च भवन्तु ।

इति नवग्रहादि पूजनम् ।

अथ सर्वकर्मोपयोगि कुशकण्डिका

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकण्डिका

अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म (१) परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणी संस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य निरूप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्नि कुर्यात् (२) स्त्रुवं प्रतप्य सम्मृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यात् (३) आज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनान्कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयात् (४) एष एव विधिर्यत्रक्वचिद्धोमः (५)

॥ इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे प्रथमकण्डिका ॥

विधिविधानम्

आचार्यः त्रिभिर्दर्भैः पांसूनपसार्य, गोमयेनोपलिप्य, स्त्रुवेणोल्लिख्य, रेखातः पांसूनुधृत्य, वारिणाभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय, दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य, प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् । ततः परिस्तरण-बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैऋत्याद्वायव्यान्तम् । अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् । ततोऽग्नेरुत्तरतः । पश्चिमदिशि पवित्रछेदानार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रं-सान्तगर्भं कुशत्रयं प्रोक्षणीपात्रम्, आज्यस्थली, सम्मार्जनार्थं कुशत्रयमुपयमनार्थं वेणीरूपं-कुशत्रयम् । समिधस्तिस्रः, स्त्रुवः, आज्यं, षट्पंचाशदुत्तरमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नं-तंडुलपूर्णपात्रं पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम् ।

अथ तस्यामेव दिशि असाधारणवस्तून्युपकल्पनीयानि । यथा विवाहेः—

शमीपलाशमिश्रा लाजाः, दृषत्, कुमारीभ्राता, शूर्पम्, दृढ़पुरुषः, उदकुम्भः, आचार्यदक्षिणा अन्यदपि तदुपयुक्तमालेपनादिद्रव्यम् ।

ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे च्छित्वा ततः सपवित्रकरणे प्रणीतोदकं त्रिःप्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकांगुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनं ततः प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्ते करणम् । अनामिकागुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनं प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीजलेन यथासादितवस्तुसेचनम् । ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानम् । आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः। आज्यविश्रापणं ततो ज्वलत्तृणादिना प्रदक्षिणक्रमेण पर्यग्निकरणं वह्नौ तत्प्रक्षेपः । ततः स्त्रुव-

प्रतपनं कृत्वा सम्मार्जनकुशानामग्रैरंतरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संपूज्य प्रणीतोदकेन अभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्याग्नेर्दक्षिणतो निदध्यात् । ततः आज्यस्याग्नेरवतारणं ततआज्ये प्रोक्षुणीवदुत्पवनम्। आज्यमवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं, पुनः प्रोक्ष्युत्पवनं च कुर्यात् । ततस्तिस्रः समिध आदध्यात् । ततः आधारादयश्चतुर्दश आहुतयो जुहुयात् ।

(इति कुशकण्डिकापूर्वको होमः ।)

अथ पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे द्वितीयकण्डिका
आवसथ्याधानम्

आवसथ्याधानं दारकाले (१) दायाद्यकाल एकेषाम् (२) वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य (३) चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वम् (४) अरणिप्रदानमेके (४) पञ्चमहायज्ञा इति श्रुतेः (६) अग्न्याधेयदेवताभ्यः स्थलीपाकं श्रपयित्वाज्याहुतीर्जुहोति (७) त्वन्नो अग्ने सत्वन्नो अग्न इमम्मवरुण तत्त्वा यामि ये ते शतमयाश्चाग्न उदुत्तमं भवत इत्यष्टौ पुरस्तात् (८) एव मुपरिष्टात्स्थालीपाकस्याग्न्याधेयदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति (९) स्विष्टकृते च (१०) अयास्यग्नेर्वषड् कृतं यत्कर्मणोत्यरीरिचं देवागातु विद' इति (११) बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति (१२) ततो ब्राह्मणभोजनम् (१३)

।। इति पारस्करगृह्यसूत्र प्रथमकाण्डे द्वितीयकण्डिका ।।

इति द्वितीय मयूखः

---

१. आवसथ्य या गृह्याग्नि में प्रतिदिन प्रातः सायं विधि पूर्वक होम तभी किया जाता है, जब विवाह हो जाये । इसीलिए आचार्य पारस्कर ने अगली तृतीय कण्डिका से विवाह संस्कार का विधिविधान आरम्भ किया है। तदनुसार यहां भी तृतीय मयूख में विवाह-संस्कार का विवेचन एवं विधिविधान प्रमुखत. पारस्कारानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है। साथ ही इस द्वितीय कण्डिका में वही होम-विधि दी गई है, जो प्रमुख तथा सर्वकर्मयोगी है। प्रथम कण्डिका के चतुर्थ सूत्र में मात्र 'पर्युक्ष जुहुयात्' ही कहा गया है । द्वितीय कण्डिका में आघाराज्य व्याहृति पञ्च वारुणी तथा 'स्विष्टकृत' आदि आहुतियों की समन्त्रक विधि भी सूत्र रूप में दे दी गई है। ग्रह-पूजन के साथ ही ग्रह-याग भी किया जाता है, और ग्रह-विशेष की शान्ति आदि के लिए भी यज्ञ किया जाता हैं, एसे सभी यज्ञों में उक्त कुशकण्डिका की विधि के बाद समिधान के पश्चात् आघाराज्याहुति आदि चतुर्दश आहुतियाँ देने के पश्चात् अन्य आहुतियां देने का विधान आगे यथास्थान दिया गया है।

तृतीय मयूख

विवाह-संस्कार

कालोह्ययं संक्रमितुं द्वितीयम्
सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ।

—रघुवंश

तद्दर्शनादभूच्छम्भोर्भूयान्दारार्थमादरः ।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् ॥

—कुमारसम्भव

संस्कारों के विधि-विधान की इस ग्रंथ में दी गई पद्धति

हमारे सभी संस्कार प्रमुखतः पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार सम्पन्न होते हैं। किन्तु अब तक प्रकाशित सभी पद्धतियों में पारस्कर को मूल आधार मानते हुए भी उसकी भाषा, कण्डिका या सूत्रों के मूल रूप में यथेच्छ परिवर्तन कर दिये गए हैं। यह ठीक है कि न तो पारस्कर के सभी विधि-विधान वर्तमान समय के लिए उपयुक्त व ग्राह्य ही हैं और न ऐसा ही है कि पारस्कर द्वारा प्रत्यक्षतया अनुक्त विधि-विधान या संस्कार अग्राह्य हों। तथापि जहां तक हो सके पारस्कर का मूल पाठ ही अपनाया जाना चाहिए।

इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत ग्रंथ में ऊपर संस्कारों का विधि-विधान पारस्कर के अपने शब्दों में ही दिया गया है और प्रथम काण्ड की पहली कण्डिका से लेकर द्वितीय काण्ड की समावर्तन संस्कार-परक छठी कण्डिका तक प्रत्येक कण्डिका का मूलपाठ यथाक्रम दिया गया है। लम्बे कोष्ठकों [ ] में सूत्रांक दिये गये हैं। अनेकत्र ऐसा भी है कि कहीं तो पूरे के पूरे संस्कार जैसे 'कर्ण-वेध' और कहीं संस्कारों के कुछ विधि-विधान प्रत्यक्षतया पारस्करोक्त प्रतीत नहीं होते, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वे पारस्करानुमोदित सिद्ध होते हैं। निश्चित ही ऐसे विधि-विधान आश्वलायन आदि अन्य शाखान्तरीय ग्रंथों से लिये गये हैं। पारस्कर के द्वारा अपठित ऐसे पाठों को आद्यन्त में तारकांकित * कर दिया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि * तारकाङ्कित ये पाठ अथवा विधि-विधान पारस्करोक्त न होने पर भी पारस्करानुमोदित अवश्य हैं, इसलिए उनका यहां समा-वेश किया गया है। भाष्यकारों ने उनके समर्थन में अनेक प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं, जिनकी चर्चा यथास्थान संक्षेप में की गई है। निश्चित ही जिन कण्डिकाओं अथवा सूत्र-पाठों का विवेच्य संस्कारों से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं, अथवा जो वर्तमान में अनुपयोगी या अवाञ्छनीय भी हो गये हैं, ऐसे अंश छोड़ भी दिये गये हैं, ऊपर पारस्कर का मूल पाठ तथा संस्कृत में प्रयोग-पद्धति दे देने के बाद नीचे राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी विधि-विधान तथा मन्त्रों के भावार्थ भी दे दिये गये हैं।

आशा है यह प्रक्रिया सबके लिए सुविधाजनक रहेगी। साथ ही प्रत्येक संस्कार के प्रारम्भ में उसके उद्देश्य एवं महत्त्व आदि का भी विवेचन किया गया है।

विवाह-संस्कार

विवेचन

'असर्वो तावद् हि भवति यावज्जायान्न विन्दते ।'

इति श्रुतिः ।

एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ।
गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
चतुर्णामाश्रमाणाञ्च गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥

—वसिष्ठस्मृतिः ।

गृहस्थाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ।

—व्याससंहिता ।

उद्देश्य और महत्त्व

उक्त तथा ऐसे ही अन्य अनेक श्रुति-स्मृति-प्रमाण पौनः पुन्येन यह घोषित करते हैं कि भारतीय परम्परा में विवाह-संस्कार सब संस्कारों में प्रमुख और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह गृहस्थाश्रम-प्रवेश का संस्कार है-और गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों का आधार है । साथ ही मनुष्य पर जो ३ बड़े ऋण (देव-ऋषि-पितृ ऋण) समाज राष्ट्र ज्ञान विज्ञान और परिवार की सेवा के रूप में बताये गये हैं, उनमें से पितृ-ऋण सन्तानोत्पत्ति के द्वारा वंश-परम्परा को बनाये रखने और बढ़ाते रहने से उतरता है।

आवसथ्य या गृह्य (स्मार्त) अग्नि का आधान विवाह के समय में या उसके पश्चात् ही होता है और उसी के द्वारा पञ्च महायज्ञ सम्पन्न होते हैं। विवाह के पश्चात् ही सन्तति-परम्परा चलती है और उन्हीं सन्तानो की सर्वविध उन्नति और कल्याण की कामना के लिए अनेक संस्कार किए जाते हैं। 'श्रौत-स्मार्त' आदि सभी प्रकार के कर्म, यज्ञ, दान, पूजा आदि सभी धार्मिक कर्म पत्नी के साथ ही किये जाते हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर ही आचार्य पारस्कर ने अपने गृह्यसूत्र में सर्व प्रथम विवाह संस्कार का ही विधान किया है। माध्यन्दिन वाजसनेयी शाखा वालों के सभी संस्कार पारस्कर-कात्यायन के अनुसार ही सम्पन्न होते हैं, अतएव पारस्कर के ही अनुसार यहां विवाह संस्कार को ही सर्वप्रथम दिया जा रहा है।

विवाह-संस्कार की प्रक्रिया बहुत लम्बी है। विवाह के द्वारा दो व्यक्तियों और दो परिवारों का ही क्यों दो आत्माओं का न केवल इस जन्म के लिये ही अपितु जन्म-जन्मान्तरों के

लिए मिलन जो होता है। माता-पिता अपने पुत्र या पुत्री का विवाह करके ही पितृ-ऋण से मुक्त हो पाते हैं। अपनी पुत्री का विवाह करके ही उसके पिता को छुट्टी नहीं मिल जाती, उसे अपनी पुत्री की सन्तानों के विकास में भी हाथ बँटाना पड़ता है। विवाह में ननिहाल की ओर से जो भात भरा जाता है, वह भी इसी तथ्य का प्रतीक है कि हिन्दू विवाह मात्र लड़के-लड़की का कौन्ट्रैक्ट या अनुबन्ध नहीं है, यह तो पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाला स्थायी सम्बन्ध है। यहां तक कि माता की सात पीढ़ियों तक के सुदूरवर्ती कुल की भी लड़की से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना निषिद्ध है।

विवाह के लिए कुछ आवश्यक नियम

लड़के और लड़की के विवाह-योग्य हो जाने पर अर्थात् लड़की के १६ वर्ष हो जाने के बाद और लड़के के पढ़ लिखकर योग्य होने तथा ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर (२५ वर्ष की नहीं तो कम से कम २०-२२ वर्ष की आयु हो जाने पर) लड़के और लड़कियों का विवाह-संस्कार सम्पन्न किया जाता है। सर्वप्रथम लड़के और लड़की के कुलाचार एवं शील आदि की समानता देखी जाती है। कहा गया है कि—

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः॥

गोत्र-मिलान

तब लड़के और लड़की के गोत्र आदि का मिलान किया जाता है। गोत्र-मिलान में ध्यान देने योग्य प्रमुख बात यह है कि लड़के और लड़की के पिता का गोत्र एक नहीं होना चाहिए। बिवाह में 'ऋषिगोत्र' नहीं अपितु 'कुलगोत्र' जिसे 'अवटंक' या 'अल्ल' आदि भी कहा जाता है, वर्जित है। क्योंकि अवटंक वास्तव में किसी एक मूल कुल का ही सूचक है। इसके विपरीत 'ऋषिगोत्र' किसी एक कुल के सूचक नहीं। पञ्चगौड़ और पञ्चद्राविड़ ब्राह्मणों के दसों वर्गों और गौड़, आद्यगौड़, गुर्जरगौड़ अथवा दाधीच (दाहिमा), पारीक, सारस्वत, सखवाल, सनाढ्य आदि छन्याती विप्र-समाज ही क्यों, गोत्रप्रवर्तक ऋषियों के शिष्यगण अर्थात् क्षत्रियों और वैश्यों के भी ऋषिगोत्र समान ही हैं। इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर ही विवाह में अवटंक या कुलगोत्र को ही वर्जित किया गया है, न कि ऋषिगोत्र को।

गोत्र या सापिण्ड्य के निर्णय के पश्चात् जब यह देख लिया जाता है कि लड़के-लड़की की कुण्डली के अनुसार कम से कम २२ गुण मिलते हैं और दोनो में किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक दोष नहीं है, तो हमारे यहां प्रथम कन्या-पक्ष की ओर से विवाह का प्रस्ताव रखने का विधान है। जब लड़के तथा उसके पिता और परिवार वालों को यह प्रस्ताव स्वीकार हो जाता है, तो वाग्दान या सगाई के रूप में इस प्रस्ताव को वैधानिक रूप दिया जाता है। वास्तव में किसी भी प्रस्ताव को तब स्वीकृत समझा जाता है जबकि सर्वप्रथ उसका कोई प्रस्तावक उसे प्रस्तुत करे तथा उसके बाद दूसरे किसी प्रामाणिक व्यक्ति को उसका

अनुमोदन[1] करना चाहिए। इसी को अंग्रेजी में Second कहते हैं। अनुमोदन के पश्चात् प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर उसे पारित समझा जाता है। विवाह का यह प्रस्ताव प्रायः लड़की का भाई रखता है। यह इसलिए कि आगे चलकर उसी को अपनी बहन का भात भरना या मायरा पहनाना आदि सम्पन्न करने होते हैं। इस प्रकार उसके मन में अपनी बहन के भावी जीवन के प्रति अपना उत्तरदायित्व वहन करने की भावना रहती है।

विवाह संस्कार जितना महत्त्वपूर्ण है, उसका आयोजन व सम्पादन उतने ही समारोह उल्लास व धूमधाम के साथ किया जाता है। मुख्य विवाह संस्कार में यद्यपि कुछ अधिक समय नहीं लगता, तथापि वाग्दान से लेकर वर-यात्रा तक के पूर्वाङ्ग और चतुर्थी कर्म या द्विरागमन जैसे उत्तरांगों को मिलाकर सम्पूर्ण विवाह संस्कार में काफी लम्बा समय लग सकता है। इस प्रकार 'विवाहसंस्कार' दूसरे समाजों के 'विवाह' से सर्वथा भिन्न है और यह ऐसी अनेक वैज्ञानिक तथा सामाजिक मान्यताओं पर आधारित है, जिनका नैतिक मूल्य बहुत अधिक है।[1]

वाग्दान

विवाह संस्कार का आरम्भ वाग्दान से होता है। कन्या के विवाह योग्य हो जाने पर उसके लिए तदनुकूल वर का निर्णय कर कन्या का भ्राता और पुरोहित आदि अथवा अपनी परम्परानुसार अन्य व्यक्ति वर के घर जाते हैं और शुभ लग्न में गणपत्यादिपूजन के पश्चात् संकल्प कर वर का पूजन कर उसे वस्त्र, श्रीफल, दक्षिणा व यज्ञोपवीत देकर गुड़, पतासा या मोदक छुआरा आदि खिलाते हुए कहते हैं—

"तस्मिन्कालेऽग्निसान्निध्ये स्नाते स्नाता ह्यरोगिणी।
अव्यङ्ग्येऽपतितेऽक्लीबे पिता (दाता) तुभ्यं प्रदास्यति ॥

अर्थात् विवाह के निश्चित समय पर निर्दोष सदाचरणशील स्वस्थ और सुशील कन्या को उसके पिता आपको अग्नि की साक्षी में पत्नी रूप में प्रदान करेंगे।

विवाह की तिथि तथा लग्न समय ज्योतिष शास्त्रानुसार निश्चित हो जाने पर कन्या का पिता विवाह से कुछ दिन पूर्व वर के पिता को सूचनात्मक लग्न-पत्रिका भेजता है। यह एक प्रकार से सपरिवार वर को विवाह में निश्चित समय पर पहुंचने का लिखित निमंत्रण है।

---

१ वर-वधू के लिए विज्ञान, आयुर्वेद और धर्मशास्त्र का कथन है कि दोनों के रक्त में जितनी अधिक दूरी होगी, उतना ही उत्तम है, इस दृष्टि से भी पिता की सगोत्र और माता की सपिण्ड कन्या के साथ विवाह का निषेध सर्वथा उचित है।

लग्न-पत्रिका

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः
श्री सरस्वत्यै नमः। श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः। कुलदेवोभ्यो नमः।

वंशो विस्तरतां यातु कीर्तिर्यातु दिगन्तरम्।
आयुर्विपुलतां यातु यस्यैषा लग्नपत्रिका ॥

स्वस्ति श्री शुभ संवत्·········मासे······पक्षे······तिथौ वासरे······नक्षत्रे······ लग्नं······रे··· समय··· घण्टा··· मिनट··· तारीख··· महीना··· सन्···

वरनाम राशि सूर्य चन्द्र
कन्यानाम राशि गुरु चन्द्र

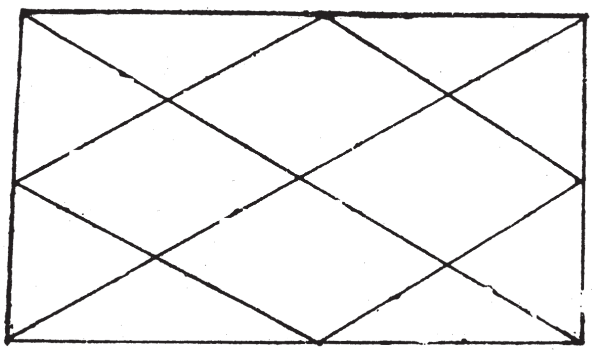

श्रीमान् माननीय·········

निवेदन है कि उपरोक्त दिन तथा समय पर आपके उक्त सुपुत्र·········के साथ मेरी पुत्री······का विवाह निश्चित हुआ है।

अतः वरराज के साथ सपरिवार आप बरात-सहित पधारने की कृपा कर कृतार्थ करें। हम पलक पावड़े बिछाये आप के स्वागत के लिए उत्सुक हैं[1]।

स्थान············· दिनांक··············· भवदीय

---

१. इस कुकुंमपत्रिका पर केशर के छींटे लगाकर इसके साथ पुष्प-अक्षत सौभाग्य-द्रव्य सवा रुपया, दूर्वा, मूंग, सुपारी रख कर मोली लिपेट कर उसे पैकेट में सुरक्षित रख वर के पिता को भिजवा दें।

वर के पिता का कर्तव्य है कि लग्नपत्रिका प्राप्त होने पर अपने समाज को एकत्रित कर उनके साथ शुभ वेला में लग्नपत्र पढ़कर सुनाये और उसकी सूचना कन्यापति को तत्काल दे दे। इन्हीं दिनों दोनों पक्ष अपने बन्धु-बान्धवों एवं इष्ट मित्रों को विवाह में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण-पत्र भी भेज दें।

हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों ने विभिन्न संस्कारों में कई प्रकार की जिन विधियों को सम्पादित करने के लिए कहा है, उस प्रत्येक विधि में कुछ न कुछ वैज्ञानिक रहस्य निहित है। जैसा कि विवाह मण्डप में वर के आगमन के साथ ही उसका पूजन किया जाता है। इस समय जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, वे बड़े प्रेरक हैं 'विष्टर' ग्रहण करते समय "वर्ष्मोऽस्मि समानानाम्" आदि मन्त्र पढ़ा जाता है। इसके कई आशय हैं। पहला तो यह कि हमारे यहां वर को सर्वश्रेष्ठ 'वरराज' कहा जाता है। इस समय वर अपने माता-पिता तथा अन्य गुरुजनों के लिए भी आदरणीय समझा जाता है। इसीलिये मन्त्र में कहा गया है कि अपने समान अन्य तेजधारियों में मैं सूर्य के समान हूं। इस प्रकार यह वर की श्रेष्ठता का प्रतिपादक वाक्य है। इस मन्त्र के उत्तरार्ध में कहा गया है कि 'जो कोई मुझे दबाना चाहेगा मैं उसे कुचल दूंगा।' स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति पत्नी का भार उठाने में तभी समर्थ हो सकता है अथवा पत्नी की रक्षा तभी कर सकता है जब कि उसकी ओर कुदृष्टि से देखने वालों को उसमें कुचल देने की शक्ति हो, सामर्थ्य हो।

इसी प्रसंग में 'मधुपर्क' प्राशन की विधि विशेष ध्यान देने योग्य है। व्यक्ति को वह शक्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जबकि वह निरंतर बलवर्धक पौष्टिक पदार्थों का सेवन करता रहे। दही घृत मधु आदि गव्य पदार्थों से बढ़कर पौष्टिक और क्या पदार्थ हो सकते हैं। निरामिष भोजन का महत्त्व भी इससे स्पष्ट प्रकट होता है।

कन्यादान संकल्प की विशेषता

इस संकल्प में विशेष द्रष्टव्य बात यह है कि वर और वधू दोनों पक्ष के तीन-तीन पीढ़ी के पुरुखों के नाम तीन-तीन बार बुलाये जाते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वर वधू के परिवार अज्ञात कुल-शील नहीं हैं। उनकी कुलीनता अनेक पीढ़ियों से जानी मानी जाती है। सपिण्डीकरण भी तीन पीढ़ियों के साथ ही होता है और यह भी कि वर और वधू दोनों तथा उनके पक्ष के अन्य जन भी एक दूसरे के पूर्वजों तक से भली भांति परिचित हो जायें। पाश्चात्य पद्धति में तो किसी बात की प्रामाणिकता के लिए केवल पिता का नाम ही पर्याप्त समझा जाता है। वे 'सन आफ' या 'डाटर आफ' से आगे नहीं बढ़ते, किन्तु हमारी संस्कृति में विवाह-बन्धन की दृढ़ता के लिए तीन पीढ़ियों का परिचय दिया जाता है।

प्रारम्भिक तैयारी

विवाह से पूर्व यदि बालक का समावर्तन संस्कार न हुआ हो तो समावर्तन भी इसी समय सम्पन्न कर दिया जाय। लग्नपत्रिका भेज देने के पश्चात् वर-कन्या दोनों के यहां विवाह की तैयारी विधिवत् आरम्भ हो जाती है। यद्यपि गणेश-स्थापन, कंकण-बन्धन, आदि अनेक विधि-विधान दोनों पक्षों में समान रूप से ही सम्पन्न होते हैं, तथापि बरात का प्रस्थान या निकासी अथवा घुड़चढ़ी जैसे कुछ कार्य केवल वर के यहां किये जाते हैं, जबकि स्तम्भारोपण, मण्डप-निर्माण आदि कार्य कन्या-गृह में ही सम्पन्न होते हैं, क्योंकि मुख्य विवाह संस्कार कन्यागृह में में किये जाते हैं।

कर्त्तव्य विधियां

१. (क) पूर्वाङ्ग—१. वर का निश्चय करने के लिए कन्या के भाई या पिता आदि किसी सम्बन्धी का आगमन। कुण्डली-मिलान आदि।

२. वाग्दान।

३. ज्योतिषी से विवाह-लग्न का मुहूर्त निकलवाना।

४. कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को लग्न-पत्र भेजना।

५. महागणपति-स्थापन, कङ्कण-बन्धन, उद्ववर्तन-स्नान, स्तम्भ-रोपण कुङ्कुमपत्रिका (निमन्त्रण पत्र) भेजना आदि।

(ख) मुख्य-कर्तव्य—१. वर-गृह से बरात का प्रस्थान।

२. कन्या-गृह में मण्डप-निर्माण, बरात की अगवानी व मिलनी आदि वर की आरती एवं जयमाला आदि।

३. आचार्य एवं ब्रह्मा आदि का वरण।

४. (१) वरार्चन (२) मधुपर्क (३) गोदान (४) वस्त्र प्रदान (५) समञ्जन (६) ग्रन्थि-बन्धन (७) कन्यादान-सङ्कल्प व हस्तालेपन (शाखोच्चार-मङ्गलाष्टक) (८) समीक्षण कुशकण्डिका पूर्वक (९) विवाह-होम, (१०) आघारादि चतुर्दश आहुतियां, (११) राष्ट्रभृत्, (१२) जय, (१३) अभ्यातान, (१४) अग्न्यादि पंचक होम। (१५) लाजा-होम, (१६) पाणि-ग्रहण (१७) अश्मारोहण, (१८) गाथागान, (१९) अग्नि-परिक्रमा, (२०) सप्तपदी, (२१) अभिषेक, (२२) सूर्य एवं ध्रुव-दर्शन, (२३) हृदयालम्भन, (२४) सुमङ्गलीकरण, (२५) स्विष्टकृत्-होम, (२६) बर्हिहोम, (२७) संस्रव-प्राशन, (२८) त्र्यायुषीकरण, (२९) दक्षिणादान, (३०) छायापात्र।

५. आशीर्वादात्मक पुष्पांजलि।

६. वर-वधू व माता पिता की आरती।

७. वर-वधू का कन्या गृह में कौतुकागार एवं जनवासे में गणपति जी एवं कुल देवता तथा अन्य देव गणेशादि को तथा गुरुजनों को प्रणाम करना तथा उनका आशीर्वाद देना।

८. बरात की बिदाई, पीला नारियल देना।

(ग) उत्तराङ्ग—१. वर-वधू की अगवानी (वरगृह में) तथा गृहप्रवेश तथा वर वधू का स्वागत आदि।

२. चतुर्थी-कर्म, रात्रि-जागरण।

३. कङ्कण-विमोचन तथा देवदर्शन आदि।

४. वधू के भाई के द्वारा उस (वधू) को वापस पितृगृह ले जाना।

५. द्विरागमन।

महागणपति-स्थापना

विवाह से ५-७ दिन पूर्व वर और कन्या पक्ष दोनों ही अपने-अपने स्थान पर गणपति पूजन (विनायक बैठने) के साथ वर-वधू के शरीर में तैलाभ्यंग आदि प्रारम्भ कर देवें। पहले दिन से हल्दी, जौ का आटा, बेसन, छेल-छबीला और नागरमोथा आदि सुगंधित पदार्थ व तैल और दूसरे द्रव्य मिलाकर अभ्यंग (उबटन) एवं शुद्ध जल से स्नान कर, शुद्ध वस्त्र पहन लें। गणपति-स्थापन के लिए पवित्र स्थान जहां (आवागमन न हो) या कौतुकागार में वर अथवा वधू के पिता पूर्व में मुखकर अपने से दायीं और वर-वधू की माता को बैठाएं और उनके दायीं और वैवाह्य पुत्र या पुत्री को बिठाकर आचार्य आचमन करावे। तत्पश्चात् "ॐ पवित्रः पवित्रो वा" आदि मन्त्र से जल से पवित्रीकरण कर शान्तिपाठ, संकल्प गणपति व मातृका पूजन वसोर्धारा, पुण्याहवाचन, तथा नवग्रह ॐकार त्रिगुणात्मकदेव आदि की पूजा कर कंकण-बन्धन यथाविधि करे। यह विधि वर-कन्या दोनों पक्ष के लिये समान है।

गणपति-स्थापना के पश्चात् ब्राह्मण-भोजन एवं परिवार सहित मांगलिक भोजन करें। और वर कन्या को प्रतिदिन प्रातः स्नान से पूर्व उक्त सुगन्धित द्रव्यों का उबटन किया करें एवं वे अपने ग्राम-नगर से बाहर न जायें।

वर-यात्रा-प्रस्थान

निश्चित समय पर वर निकासी के लिए सिर पर मुकुट (मौड़) बांध घर से मांगलिक भोजन कर माता-पिता गुरुजनों का आशीर्वाद ले देवमन्दिर में भगवान् का दर्शन कर मानसिक पूजा के साथ श्रीफल द्रव्य भेंट करे। वर के साथ परिवार के सभी सदस्य भी मन्दिर जाएं। नियम यह है कि घर से प्रस्थान करने के बाद यदि ग्रामान्तर में जाना हो तो वर वापस घर पर न आकर मन्दिर अथवा अन्य स्थान पर ठहरे और वधू प्रवेश के समय ही घर में प्रवेश करे। घुड़चढ़ी के समय घोडी को दाना खिलाया जाता है और दक्षिणा दी जाती है।

बरात के आ जाने की सूचना वर पक्ष से मिल जाने पर कन्या का पिता अपने समाज के साथ उनका स्वागत करे तथा सुन्दर सुसज्जित मण्डप में बैठाकर वरार्चन एवं अन्य प्रचलित विधियां सम्पादित करे।

यज्ञवेदी से पूर्व वर को कौतुकागार में बैठाने का विधान है। कन्या-गृह में वर के प्रवेश के समय आरती कन्या की माता करे अथवा अन्य सौभाग्यवती स्त्री भी कर सकती है। (देखें चित्र)

इसी समय 'वरमाला' का कार्यक्रम सम्पादित करने की प्रथा भी है। इस में वर-वधू दोनों एक दूसरे को (पहले वधू-वर को और बाद में वर-वधू को) पुष्पमाला पहनाते हैं।

लग्न-समय

विवाह के दिन निर्धारित लग्न में—१ तोरण या जयमाला अथवा वरमाला २ कन्यादान ३ अग्नि-परिक्रमा (फेरे) इन तीनों प्रमुख विधियों में से कोई एक विधि सम्पन्न कर दी जाय, यह मान्यता है।

स्तम्भरोपण

विवाह में कन्यापक्ष में महागणपति स्थापन के साथ ही उत्तर दिशा में (यज्ञ) स्तम्भ स्थापित किया जाता है। स्तम्भरोपण की विधि राजस्थान मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों में तो अब भी प्रचलित है। स्तम्भरोपण की विधि यह है कि दो हाथ लम्बा स्तम्भ जिसके ऊपर कलश स्थापित किया जा सके (खाती या बढ़ई इसके निर्माण की विधि जानते हैं।) लाया जाता है। लगभग एक हाथ गहरा गढ़ा खोद कर उत्तर दिशा में गणपत्यादि पूजन के पश्चात् उसे भूमि में गाड़ दिया जाता है। गढ़े में स्तम्भ को गाड़ने से पहले उसमें कुशा और अक्षत डाल दें। फिर एक पात्र में जल भरकर—

ॐ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः।

मन्त्र पढ़कर उस जल में जौ डाले। फिर उसी जल को स्तम्भ या थाम्बे के ऊपर मध्य में तथा मूल पर छिड़क दें और उसे निम्न मन्त्र पढ़कर गढ़े में खड़ा कर दें :—

ॐ उद्दिवं स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्याम्।
ॐ द्युतानस्त्वा मरुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा॥

स्तम्भ को इस प्रकार मजबूती से गाड़े कि वह हिले-डुले नहीं। फिर उस पर हल्दी पोत दें तथा ऊपर कुङ्कुमाक्षत लगाकर उस पर कलश स्थापित करें। उस कलश का पूजन कर उसमें गुग्गुल, गोरोचन, नीम के पत्ते तथा गन्धाक्षत सुपारी एवं दक्षिणा रख दे। तथा—

यदाबध्नन् दाक्षयणा इत्यादि मन्त्र पढ़कर कलश को स्तम्भ के ऊपर भली भांति बांध दें और **युवा सुवासा** इत्यादि मन्त्र पढ़कर उसे ऊपर से ढककर उस पर पीला वस्त्र लपेट दे और माला पहना दें। फिर निम्न मन्त्र पढ़कर स्तम्भ की प्रार्थना करें—

त्वां प्रार्थये ह्यहं यूप सर्वकर्मफलप्रद।
साफल्यायास्य यज्ञस्य जगदानन्दकारक॥
देहि मेऽनुग्रहं यूप प्रसादं कुरु सुप्रभो।
विवाहेऽस्मिन्स्थिरो भूत्वा यूपो विघ्नं व्यपोहतु[1]॥

---

१. स्तम्भरोपण या थाम्बा गड़ने के लिए गढ़ा खोदने की औपचारिकता जामाता (जवाईं भाई) के हाथों सम्पन्न कराने की प्रथा है। इसके लिये जवाईं जी को दक्षिणा दी जाती है।

अगले पृष्ठों में पारस्करगृह्यसूत्रानुसारी विवाहादि संस्कारों की विधि दी जा रही है। पारस्कर सूत्रों के अंक [ ] कोष्ठकों में दिए गए हैं। सूत्रानुक्त विधिविधान * तारकाङ्कित किया गया है।

卐 श्री गणेशाय नमः 卐

अथ विवाहसंस्कारविधानम्

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे तृतीयकण्डिका

विभूतिं माङ्गल्यामभिनवविधोर्दिव्यमुकुटम्
दधानो नागेन्द्राजिनममरवृन्दैरनुगतः ।
उमां पश्यंल्लज्जानमितनयनां स्मेरवदनो
जगद्वन्द्यो भूत्यै भवतु भवतां शङ्करवरः[1] ।।

अथार्हणा—

षडर्घ्या भवन्ति । आचार्यऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति [१]
प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुः [२] यक्षमाणास्त्वृत्विजः [३]

विवाह-संस्कार-विधि

विवाह में सर्वप्रथम कन्याप्रदाता श्वसुर आदि वर का विष्टर, पाद्यार्घ, मधुपर्क[2] आदि से पूजन करता है । यहां किसी को यह शंका न हो जाए कि श्वसुर तो पितृवत् पूज्य होता है, फिर वह जामाता का पूजन क्यों करे । इसी तत्त्व को समझाते हुए आचार्य पारस्कर ने कहा है कि आचार्य, ऋत्विक्, राजा, प्रिय, स्नातक और विवाह हेतु आया हुआ वर, ये छहों पूजनीय होते हैं । इन सबका प्रतिवर्ष, किन्तु ऋत्विक् का जब भी वे यज्ञ करा रहे हों, पूजन करना चाहिए ।

---

१. ग्रन्थस्यास्य लेखकस्यात्मजस्य आनन्दशर्मणः वेदाचार्यस्य श्रीमतः प्रभुलालशर्मणः सुपुत्र्या शान्त्या सह जयपुरे सम्पन्नोद्वाहावसरे परिणयविधौ प्रणीतं पद्यमिदम् । मंगलाष्टके "भवतु भवताम" इति स्थाने "भवतु युवयोः" यज्ञोपवीतादौ च "भवतः" इति पठ्येत् ।

२. सर्पिरेकगुणं प्रोक्तं शोधितं द्विगुणं मधु ।
मधुपर्कविधौ प्रोक्तं सर्पिषा तु समं दधि ।।
दध्यलाभे पयो ग्राह्यं मध्वलाभे तु शर्करा ।

यजमानः—आसनमाहार्याह-साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् । इति [४] आहरन्ति विष्टरं पाद्यं पादार्थमुदकमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कंदधिमधुघृतमपिहितं कांस्ये कांस्येन [५] अन्यस्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि [६]

वरः—विष्टरं प्रतिगृह्णाति [७]

वरार्चन

वर और वधू के बैठने के लिये यज्ञ वेदी के पश्चिम में सुन्दर-स्वच्छ आसन बिछा दिये जायें। तब कौतुकागार या सभा-मण्डप में पहले से बैठे हुए वर-वधू वहां आ जायें।

भगवान् गणपति एवं नवग्रहादि की पूजा के पश्चात् विवाह में सर्वप्रथम वरार्चन (वर का स्वागत-सत्कार) किया जाता है और यहीं से विवाह की वास्तविक विधि आरम्भ होती है। वरार्चन के कार्य में—

१. कन्यादाता (श्वसुर आदि।)

२. आचार्य एवं वर-राज।

इन तीनों की उपस्थिति आवश्यक है। विधि यह है कि पहले आचार्य या अन्य कोई उपाध्याय आदि पाद्य-अर्घ आदि अर्चनीय सामग्री के विषय में तीन बार बोलकर वर महोदय का ध्यान तत्तद वस्तु की ओर आकृष्ट करता है और कहता है कि "हे वरराज यह अर्घ है, यह मधुपर्क है" आदि। उसके पश्चात् कन्या-प्रदाता तत्तद पदार्थ वरराज को समर्पित करता है। विधि यह है—

कन्याप्रदाता (श्वसुर)—वरराज, आप इस आसन पर भली-भांति सुख-पूर्वक विराजें। हम आपका स्वागत-सत्कार पूजन अर्चन करेंगे।

वर—आपके स्वागत-सत्कार को ग्रहण करने के लिये मैं उद्यत हूं। (आसन पर बैठ जाए।)

आचार्य—वरराज, 'यह विष्टर है', ऐसा तीन बार कहे।

कन्याप्रदाता—वर महोदय, आप इस विष्टर को ग्रहण कीजिये।

वर—उस विष्टर को अपने हाथ में लेकर 'ओ३म् वर्ष्मोऽस्मि" आदि मन्त्र पढ़ते हुए उस विष्टर को अपने आसन पर उत्तराग्र रखकर उस पर बैठ जाये।

इसी प्रकार एक और विष्टर प्रदान किया जाये उसे वर महोदय अपने आसन के नीचे दबा लें। "ओ३म् वर्ष्मोऽस्मि" आदि मन्त्र का अर्थ यह है—

जैसे आकाश में उदित होने वाले प्रकाशमान ग्रह-नक्षत्रों में सूर्य सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार अपने समान वपु, वय, कुल एवं गुण आदि वालों में मैं श्रेष्ठ हूं, इसीलिए दूसरा जो भी कोई मुझे दबाना चाहेगा या नीचा दिखाने का प्रयत्न करेगा, मैं उसे इस विष्टर के समान ही अपने नीचे दबा दूंगा।

(वर्ष्मोऽस्मीत्यस्याथर्वण ऋषिरनुष्टुप्छन्दो विष्टरो देवता उपवेशने विनियोगः।)

(सर्वत्र ऋष्यादीनां स्मरणमात्रम्।) मन्त्रो यथा—

ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।

इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥

इत्येनमभ्युपविशति [८]

पादयोरन्यं विष्टरमासीनाय [९]

यजमानः—पाद्यमञ्जलिनादाय—

ॐ पाद्यं पाद्यं पाद्यम्।

यजमानः—ॐ "पाद्यं प्रतिगृह्यता" मिति वदेत्।

वरः—'ॐ पाद्यं प्रतिग्रह्णामि।'

इत्युक्त्वा सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयति [१०]

ब्राह्मणश्चेद्दक्षिणं प्रथमम् [११]

मन्त्रो यथा—

(विराजो दोहोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्द आपो देवताः पादप्रक्षालने विनियोगः।)

ॐ विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ॥१२॥

ततोऽर्घोऽर्घो अर्घ इति आचार्येणोवते—

पाद्यः —

कन्याप्रदाता—(पाद्य) पादप्रक्षालन के लिये जल से पूर्ण पात्र हाथ में ले लेवे।

आचार्य—'पाद्यं पाद्यं पाद्यम्' (यह पाद्य है) ऐसा तीन बार कहे।

कन्याप्रदाता—वरराज, अपने पाद-प्रक्षालन के लिये यह पाद्य ग्रहण कीजिये।

वर—अपने श्वसुर जी के हाथ से पाद्यपात्र अपने हाथ में लेकर "ॐ विराजो दोहो" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए अपने पाद प्रक्षालन कर ले। पहले अपना दायां पांव और बाद में बायां पैर धोये। (यदि वर ब्राह्मणेतर वर्ण का हो तो पहले अपना बांयां पैर धोये।) इस समय पठनीय "विराजो दोहो" इत्यादि मन्त्र का भाव यह है—

"हे जल, विविध रूपों में तथा अनेक प्रकार से शोभित होने वाले विराट् अर्थात् अन्न का तू दोह अर्थात् सारभूत रस है। ऐसे दिव्य गुणयुक्त जल को मैं सादर ग्रहण करता हूं और इस जल से मैं अपने पांव धोता हूं।"

अर्घः—

(कन्याप्रदाता दूर्वाक्षत, फल-पुष्प, चन्दन मिले हुए जल से परिपूर्ण अर्घपात्र अपने हाथ में ले ले।)

आचार्य—वरराज, यह अर्घ है, (इस प्रकार तीन बार कहे।)

यजमानः—अर्घः प्रतिगृह्यताम् इति वदेत् ।

वरः—अर्घं प्रतिगृह्णाति—

(आपस्थेति प्रजापतिर्ऋषिः यजुश्छन्द आपो देवताः अर्घग्रहणे विनियोगः)

ओ३म् आपस्थः युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि ।।

इति मन्त्रेण [१३]

शिरः पर्यन्तमानीय एषान्यां निनयन् अभिमन्त्रयते—

(समुद्रं व इत्यस्याथर्वणऋषिर्बृहतीछन्दो वरुणो देवताध्योदकनिनयने विनियोगः)

ओ३म् समुद्रं वः प्रहिणोमि । स्वां योनिमभिगच्छत अरिष्टा वीरा मा परासेचि मत्पयः ।।

इत्यनेन [१४]

आचमनम्—तत आचमनीयमादाय आचमनीयमाचमनीयमाचमनीय-मित्याचार्येणोक्ते—

यजमानः—आचमनीयं प्रतिगृह्यतामिति वरं वदेत् ।

वरः—"ओ३म् आचमनीयं प्रतिगृह्णामि"—

वर—मैं इस अर्घ को सादर ग्रहण करता हूं। (ऐसा कह कर अपने हाथ में ले ले और "ओ३म् आपस्थः" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उसे अपने सिर के साथ लगा कर "ईशान" कोण में गिरा दे।)

इस समय पठित "आपस्थः" आदि मन्त्र का अर्थ यह है—

"हे जल, तुम इस भूमण्डल पर सर्वत्र अनेक रूपों में व्याप्त हो रहे हो और जैसे दूसरे सब प्राणी तुम्हारे द्वारा ही सब कुछ प्राप्त कर रहे हैं, वैसे ही मुझे भी तुम्हारे द्वारा सदा सब पदार्थ सुलभ होते रहें। हे जल, मैं तुम्हें समुद्र की ओर अथवा आकाश की ओर भेजता हूं। तुम अपने उत्पत्ति-स्थान समुद्र की ओर सदा बहते रहो। हे जल, तुम अहिंसक और सुखदायक बने रहो, हमारे बन्धु-बान्धवों और सन्तति-परम्परा के लिये यह जल सदा कल्याणकारक बने रहें, और यह अर्घ-जल मुझे कभी दुर्लभ न हो, अर्थात् मैं ऐसे गुणों से विभूषित रहूं कि मुझे यह अर्घ जल सदा समय-समय पर मिलता रहे। तथा यह भी (कि अनावृष्टि आदि) के कारण हमें कभी जला-भाव का कष्ट न उठाना पड़े।"

आचमनः—

(कन्या-प्रदाता अपने हाथ में वरराज के आचमन के लिये पात्र ले ले।)

आचार्य—"यह आचमन के लिये जल है" ऐसा तीन बार कहे।

वर—(कन्याप्रदाता के हाथ से आचमनीय जल का पात्र लेकर) "ओ३म् आमागन्" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए आचमन कर ले।

इत्यभिधाय यजमानहस्तादाचमनीयमादाय—

(आ मा गन्निति परमेष्ठी ऋषिर्बृहतीछन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।)

ॐ आ मागन्यशसा सं सृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टं तनूनाम् ॥

इत्यनेनाचामति [१५] (द्विस्तूष्णीम् ।)

मधुपर्कः—ॐ मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः इत्याचार्येणोक्ते—

यजमानः—(कांस्यपात्रस्थदधिमधुघृतानि कांस्यपात्रपिहितान्यादाय) "मधुपर्कं प्रतिगृह्यताम्' इति वरं वदेत् ।

वरः—"मधुपर्कं प्रतिगृह्णामि" इति वदेत् । ततः—

ॐ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ।

इति मन्त्रेण यजमानकरस्थमेव मधुपर्कं प्रतीक्षते [१६]

(ॐ देवस्य त्वेति बृहस्पतिराङ्गीरसऋषिर्यजुश्छन्दः सविता देवता मधुपर्कग्रहणे विनियोगः ।)

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥

इति प्रतिगृह्णाति [१७]

(मधुपर्कपात्रं) सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया त्रिः प्रयौति—

(ॐ नमः श्यावेति प्रजापतिऋषिर्यजुश्छन्दः सविता देवता मिश्रणे विनियोगः ।)

"आमागन्" इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है—

"हे पवित्र जल आप मुझे यश और आत्मतेज से युक्त कीजिये ।

मुझे प्रजाओं—अपने प्रियजनों, भाई-बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियों और पुत्रपौत्रों व सम्पूर्ण जनता का प्रिय बनाइये । (मैं ऐसे कार्य करूं जिससे सब लोग मुझे प्यार करने लगें ।) साथ ही मैं इस योग्य बनूं कि गौ आदि पशु तथा लोगों का स्वामी बन सकूं । मेरे शरीर के किसी भी अंग का कभी कोई अनिष्ट न हो और मैं स्वयं भी किसी शरीरधारी जीव की हिंसा न करूं ।"

इसी प्रकार बिना मन्त्र पढ़े दो आचमन और करे ।

मधुपर्क—

(कन्याप्रदाता एक कांसे की कटोरी में 'मधुपर्क' अर्थात् दही और घी बराबर तथा इन दोनों के बराबर शहद लेकर उस कटोरी को ऊपर से किसी बड़े कांसे के कटोरे से ढक कर अपने हाथ में ले ले । यदि कांसे के कटोरे उपलब्ध न हों तो पलाश आदि के पत्तों से बने दोनों में भी मधुपर्क रख कर उसे ऊपर से दूसरे दोने से ढक दिया जाये ।)

आचार्य – 'वरराज, यह देखिए मधुपर्क है, ऐसा तीन बार कहे ।

कन्याप्रदाता—'वरराज, आप यह मधुपर्क ग्रहण कीजिये ।'

वर– मैं इस मधुपर्क को सादर ग्रहण करता हूं । (यह कह कर अपने श्वसुर के हाथ में

ॐ नमः श्यावास्यान्नशने आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥

इति [१८] अनेन मधुपर्कमनामिकाङ्गुष्टेन च त्रिर्निरुक्षयति [१९] तस्य त्रिःप्राश्नाति। मन्त्रो यथा—

(ॐ यन्मधुनो इति कुत्सऋषिर्जगतिछन्दो मधुपर्को देवता मधुपर्कप्राशने विनियोगः।)

ॐ यन्मधुनो मधव्यं परम७ँरूपमन्नाद्य तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥

इति [२०] मधुमतीभिर्वा प्रत्यृचम् [२१] तद्यथा—

ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वौषधीः ॥१॥ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव७ँ रजः मधुः द्यौरस्तु नः पिता ॥२॥ मधुमान्नो वनस्पतिः मधुमानस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥३॥

पुत्रायान्तेवासिने वोत्तरत आसीनायोच्छिष्टं दद्यात् [२२] सर्वं प्रश्नीयात् [२३] प्राग्वासञ्चरे निनयेत् [२४]

रखे हुए ही मधुपर्क को भली भांति देख ले कि उसमें कहीं कोई कचरा आदि तो नहीं है।) मधुपर्क को देखते समय "ॐ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे" अर्थात् हे मधुपर्क मैं तुम्हें अपने मित्र या हितकारक की दृष्टि से देखता हूं। यह मन्त्र पढ़े। इसके पश्चात् उस मधुपर्क-पात्र को लेकर अपने बायें हाथ में रख ले। मधुपर्क ग्रहण करते समय "देवस्य त्वा" इत्यादि मन्त्र पढ़े। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

"मैं सबके उत्पादक अथवा प्रकाशक उस सविता देव (सूर्य) की अनुमति से अश्विनीकुमारों जैसी अपनी शक्तिशाली भुजाओं तथा पूषा देव अर्थात् सबके पोषक उस प्रभु के द्वारा प्रदत्त सब प्रकार के कार्य करने की क्षमता में समर्थ अपने हाथों से तुम्हें सादर ग्रहण करता हूं।"

इसके पश्चात् दायें हाथ की अनामिका उंगली से मधुपर्क को भली-भांति मिलाकर अनामिका तथा अंगूठे से उसके धरती पर तीन छींटे लगा दे। इस प्रकार मधुपर्क को तीन बार धरती पर छिड़क देने के पश्चात् उस मधुपर्क को थोड़ा-थोड़ा करके तीन बार अनामिका और अंगुष्ठ से चख ले। मधुपर्क प्राशन करते समय "यन्मधुनो" इत्यादि तथा "मधुवाता" इत्यादि मन्त्र पढ़े। इन मन्त्रों का अर्थ यह है—

"इस मधु (शहद) का जैसा मधुर स्वाद है और जैसा अत्यन्त सुन्दर स्निग्ध इसका रूप है, जिस प्रकार यह अन्न आदि में अथवा सब प्रकार के भोज्य पदार्थों में अत्यन्त पोषक तत्त्वों से युक्त है, मधु के इस परम मधुर रस और रूप से मैं भी सबके लिये सुमधुर स्वभाव वाला बना रहूं और इसी प्रकार सदा मधुर अन्नादि पदार्थों का उपभोग करता रहूं।"

(ततो वरः) आचम्य प्राणानायम्य सम्मृषति—

ॐ वाङ्‌म आस्येऽस्तु । ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु । ॐ अक्ष्णोर्मे-चक्षुरस्तु । ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु । ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु । ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥२५॥

आचान्तोदकाय……गौरिति त्रिः प्राह [२६]

यजमानः—वरस्य समीपे भूमावुदग्रान्दर्भानास्तीर्य वरहस्ते गोनिष्क्रयद्रव्यं दत्वा पठेत्—

ॐ गौर्गौर्गौः इति ।

"ऋत अर्थात् सत्य अथवा प्रकृति के नियमों का यथावत् पालन करने वाले मेरे लिये यह पवन सदा शीतल मधुर और सुगन्धि से युक्त होकर बहती रहे, ये सब नदियां मधुर जल बहाती रहें और समुद्रों से सदा मधुर जल बरसता रहे। ये वृक्ष-लताएं और दूसरी वनस्पतियां सदा (प्राणवायु) प्रवाहित करती हुई मेरे लिये मधुर बनी रहें ॥१॥

ये रात्रियां सदा मधुर और सुखशान्तिदायिनी बनी रहें। यह उषा सदा मधुर स्निग्ध प्रकाश लिये हुए सारे विश्व को आलोकित करती रहे। यह पृथ्वीलोक और इस धरती का एक-एक कण सदा माधुर्य-भाव से ओत-प्रोत बना रहे और हमारा पिता या पालक यह द्युलोक भी सदा माधुर्य की वर्षा करता रहे ॥२॥

ये वनस्पतियां सदा मधुर रस से भरी रहें और यह सूर्य इस सृष्टि के लिए सदा अपना मधुर प्रकाश प्रदान करता रहे। हमारी यह गौवें सदा मधुर अमृतमय दूध प्रदान करती रहें ॥३॥

इस प्रकार मधुपर्क का तीन बार प्राशन कर लेने के पश्चात् बचे हुए मधुपर्क को अपने पास में उत्तर की ओर बैठे किसी शिष्य आदि छोटे बालक को दे देवे अथवा सारे मधुपर्क का प्राशन कर ले अथवा उस बचे हुए मधुपर्क को पूर्व की ओर किसी ऐसे स्थान पर रखवा दे, जहां उस पर लोगों के पांव न पड़ें।

अंग-स्पर्श—

इसके पश्चात् वर तीन आचमन कर ले।

फिर प्राणायाम कर "ॐ वाङ्म आस्येऽस्तु" इत्यादि मन्त्र बोलते हुए अपने दायें हाथ की अनामिका ऊंगली से अपने अंगों का स्पर्श करे। अंगों के स्पर्श की विधि यह है कि (क्योंकि हृदय बायीं ओर है इसलिए) बायें अंग का स्पर्श पहले करे और दायें का उसके बाद। इन मन्त्रों के अर्थ ये हैं—

'मेरे मुख में वाणी या वाक्शक्ति सदा बनी रहे, मेरी नासिकारन्ध्रों से प्राणवायु का संचार सदा होता रहे। मेरे नेत्रों में देखने की शक्ति सदा बनी रहे, मेरे कानों में सुनने की

वरः—द्रव्यं गृहीत्वा प्रत्याह (निम्नमन्त्रं पठेत्)—

(माता रुद्राणामिति ब्रह्मा ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो गौर्देवता गोरभिमन्त्रणे विनियोगः ।)

ओ३म् माता रुद्राणां दुहिता वसूना ँ्स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः । प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।।

इति [२७] 'मम चामुष्ययजमानस्य च पाप्मा हतः ओ३म् (इत्युपांशु[1] पठित्वा) 'उत्सृजत तृणान्यत्तु' इति (उच्चै) र्ब्रूयात् [२८]

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे चतुर्थीकण्डिका

चत्वारः पाकयज्ञा हुतोऽहुतः प्रहुतः प्राशितः इति (१) पञ्चसु बहिःशालायां विवाहे चूड़ाकरण उपनयने केशान्ते सोमन्तोन्नयन इति (२) उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय (३) निर्मन्थ्यमेके विवाहे (४) उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात् (५) त्रिषु त्रिषूत्तरादिषु (६) स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां वा (७) तिस्रो ब्राह्मणस्य वर्णानुपूर्व्येण (८) द्वे राजन्यस्य (९) एका वैश्यस्य (१०) सर्वेषा ँ्शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जनम् (११)

एवं चतुरङ्गुलमुच्छ्रितायां चतुर्विंशत्यंगुलायतायां तावदेव विस्तृतायां वेद्यां पञ्चभूतसंस्कारपूर्वकं योजकनामानमग्निं संस्थापयेत् । तद्रक्षार्थं च कञ्चिन्नियोजयेत् ।

क्षमता रहे, मेरी दोनों भुजाओं में सदा शक्ति और बल बना रहे, मेरी जंघाओं में ओज हो, मेरे शरीर के अंग-अंग में सदा कर्मशक्ति बनी रहे और मेरे अंगों का कभी कोई अनिष्ट न हो।" (यह कहकर पैर से लेकर सिर तक के सब अंगों का स्पर्श करे ।)

इसके पश्चात् वर दो बार आचमन कर ले ।

गौदान—

कन्यादाता वर के समीप भूमि पर उत्तर की ओर अग्रभाग वाली कुशाएं बिछाकर गौ के मूल्य का द्रव्य वर के दाहिने हाथ में समर्पित करते हुए "यह गऊ है" ऐसा तीन बार कहे।

वर—"माता रुद्राणां" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उस द्रव्य को सादर ग्रहण कर ले । इस मन्त्र का अर्थ यह है—

"यह गऊ एकादश रुद्रों की माता, आठों वसुओं की पुत्री और बारहों सूर्यों की श्वसा या बहिन है। यह अमृत के समान मधुर और शक्तिदायक दूध, दही, घी आदि गव्य पदार्थों को प्रदान करने वाली अक्षय भण्डार है। मैं ज्ञानवान् प्रत्येक व्यक्ति से निवेदन करता हूं कि यह जो अवध्य और निष्पाप देवताओं की माता गौ है, कभी इसकी हत्या मत होने देना ।"

---

१. शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयन् ।
किञ्चिच्छब्दं स्वयं विद्यादुपांशु सः बुधैः स्मृतः ।।

*अग्निस्थापनानन्तरं यजमानः(कन्यादाता) वराय वस्त्रचतुष्टयं ददाति। तत्र सङ्कल्पः —अद्य पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकोऽहं कन्यादान-कर्मणः पूर्वाङ्गत्वेन वराय सद्रव्यं वस्त्रचतुष्टयं सम्प्रदास्यामि।

इति दद्यात्।

वरश्च 'स्वस्ती'त्युक्त्वा प्रतिगृह्य तेषु वस्त्रयुग्मं कन्यायै प्रयच्छति। वस्त्रद्वयं च स्वयं परिधत्ते।

तत्र प्रथमं कन्याया वस्त्रपरिधानम्।

वरः ॐ जरां गच्छ इत्यादि मन्त्रं पठति।*

अथैनां वासः परिधापयति। मन्त्रो यथा—

(जरां गच्छेति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वासो देवता शाटिकापरिधाने विनियोगः।)

ॐ जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतञ्च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननु संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः॥

इति [१२]

इसके पश्चात् (इस गोदान रूपी पुण्य के फलस्वरूप) मेरा और इन यजमान अथवा मेरे श्वसुर जी का सब पाप धुल गया। यह उपांशु—(धीरे से) बोले। तदनन्तर कहे कि इस गौ को घास चरने के लिये छोड़ दिया जाये। इस समय वर महोदय को यदि हो सके तो गौ प्रत्यक्ष रूप में अथवा तदनुरूप कुछ द्रव्य भेंट किया जाये।

वस्त्र-प्रदान

(यहां पारस्कर ने तो केवल यही लिखा है कि वर "जरां गच्छ" इत्यादि मन्त्र से वधू को अधोवस्त्र तथा "या अकृन्तन्" इत्यादि मन्त्र से उत्तरीय प्रदान करे। किन्तु पद्धतियों में स्वयं वर के भी वस्त्र-धारण का विधान किया गया है। आजकल तो वर और वधू दोनों वस्त्र पहने हुए ही बैठते हैं और इस समय उनके किन्हीं नवीन वस्त्रों के पहनने-पहनाने का औचित्य या प्रसंग नहीं। अतएव इस समय वस्त्र पहनने के ये चारों मंत्र मात्र पढ़ लिये जायें।)

"जरां गच्छ" : इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है—

"हे वधू, मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि तुम मेरे साथ वृद्धावस्था पर्यन्त स्वस्थ एवं सुखी बनी रहो और इसी प्रकार मेरे दिये हुए वस्त्र सदा धारण करती रहना। काम-क्रोध आदि से आकृष्ट होने वाले इस मानव-समाज में तुम सब प्रकार के अभिशाप-प्रमाद आलस्य आदि दोषों से सदा बची रहना और ऐसे कार्य करना जिससे तुम सदा प्रशंसा की पात्र बनो। पातिव्रत्य तेज से युक्त होकर तुम सौ वर्ष तक जीयो तथा धन-धान्य और पुत्र पौत्रादि का अपनी इस पूर्णायु की प्राप्ति तक ढेर लगा देना। हे आयुष्मति, ये मेरे दिये हुए वस्त्र तुम धारण कर लो।

अथोत्तरीयम्—

मन्त्रो यथा—

ॐ याऽअकृन्तन्नवयन्याऽअतन्वत। याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः[१] ॥

इति [१३]

*अथ समाचारात् वरः स्वयमपि वस्त्रे परिधत्ते समावर्तनसूत्रोक्ताभ्यां मन्त्राभ्याम्—
(परिधास्यै इत्यथर्वण ऋषिः पंक्तिश्छन्दो वासो देवता वासःपरिधाने विनियोगः।)

ॐ परिधास्यै यशो धास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतञ्च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये[१]।

इत्यधोवस्त्रं परिधाय।

अथोत्तरीयम्—

(यशसामेत्यथर्वण ऋषिः पंक्तिश्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता उत्तरीयपरिधाने विनियोगः।)

ॐ यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

इति।*

(यह साड़ी पहनाने का मन्त्र है।)

"या अकृन्तन्" आदि मन्त्र का अर्थ यह है—

"वर वधू को उत्तरीय धारण कराते हुए कहता है कि हे आयुष्मति, तुम्हारे लिए जिन देवियों ने इस उत्तरीय का सूत काता और ताने-बाने से उसे वस्त्र के रूप में बुना, वे देवियां तुम्हें वृद्धावस्था पर्यन्त ऐसे ही सुन्दर वस्त्र बुनकर पहनाती रहें। तुम मेरा दिया हुआ यह सुन्दर वस्त्र धारण करो।"

"परिधास्यै" आदि मन्त्र का अर्थ—

"मैं दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए इन सुन्दर वस्त्रों को पहनता हूं जिससे कि मेरी इस सुन्दर वेष-भूषा के प्रभाव से मैं सर्वत्र यशस्वी बनूं। और वृद्धावस्था पर्यन्त मैं सदा इसी प्रकार सुन्दर सुसज्जित रूप में बना रहूं। मैं चाहता हूं कि मैं तुम्हारे साथ रहकर सौ वर्ष तक पुत्र-पौत्रादि एवं धन-धान्य आदि से निरन्तर समृद्ध होता हुआ सानन्द जीवित रहूं।"

---

१. पारस्कर ने "अथेनां वासः परिधापयति" के द्वारा वर को वधू को वस्त्र धारण कराने का आदेश दिया है। आजकल वर की ओर से बरी या पडले के रूप में वधू के लिए पहले से ही वस्त्राभूषण आदि भेज दिये जाते हैं। वास्तव में यह पडला आचार्य पारस्कर के उक्त

ततो वरस्य कन्यायाश्च द्विराचमनम्। अथैनौ समञ्जयति कन्यापिता परस्परं समञ्जेथामिति प्रेषणां दत्वा। [१४]

ॐ समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सम्मतरिश्वा सन्धाता समुद्रेष्ट्री दधातु नौ ॥

इति। [१५]

"ॐ यशसा"

आदि मन्त्र का अर्थ यह है—

"ये द्यु-लोक और पृथ्वी-लोक, ये इन्द्र, बृहस्पति और भग देवता (सूर्य) सभी यश-युक्त होते हुए मुझे भी यशस्वी बनायें।"

समञ्जन—

(इसके पश्चात् वधू और वर दोनों दो बार आचमन कर लें।)

तब कन्या-प्रदाता वर और वधू दोनों को कहे कि आप दोनों एक दूसरे के सम्मुख हो जायें। एक दूसरे के सम्मुख होने पर वर और वधू दोनों "समञ्जन्तु" इत्यादि मन्त्र पढ़ें। मन्त्र का अर्थ यह है—

हम दोनों के हृदयों को सभी देवगण और ये जल गुणातिशय से युक्त बना कर भली-भांति सुसंस्कृत कर दें और आपस में ऐसे मिला दें जैसे जल, जल में मिल जाता है। यह सदा हमारे अनुकूल बहने वाला पवन और प्रजापति देवता एवं धर्म आदि का उपदेश देने वाली वाग्देवी सरस्वती एवं उपदेशक विद्वद्गण सब आशीर्वाद प्रदान करें कि हमारे हृदयों का मिलन हो जाये।

(कुछ पद्धतियों में लिखा है कि उक्त मन्त्र केवल वर के लिए पठनीय है, किन्तु मन्त्रार्थ तो यही आदेश देता है कि वर वधू दोनों ही यह मन्त्र पढ़ें।)

आदेश के अनुसार ही भेजा जाता है, यह कोई लोकाचार नहीं है। उधर ब्राह्मविवाह में यह भी आदेश दिया गया है कि पिता अपनी पुत्री को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर योग्य वर के साथ विवाह करे। और आजकल ब्राह्मविधि से ही विवाह होते हैं। तदनुसार वधू पिता और कहीं-कहीं मामा की दी हुई चुनड़ी पहन कर विवाह वेदी पर बैठती है। वस्तुतः इन दोनों वाक्यों में कहीं कोई विरोध नहीं। विवाह विधि के सम्पन्न हो जाने के पश्चात् वर के दिये हुए वस्त्र वधू पहनती ही है। अतः विवाह के समय वधू को वर-प्रदत्त वस्त्र पहनाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

---

१. स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे।
आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च ॥
—विधानपारिजाते याज्ञवल्क्यः।

अथ कन्यादानसङ्कल्पः

*दाता दूर्वाक्षतफलपुष्पचन्दनकुशद्रव्यजलान्यादाय—

ॐ दाताऽहं वरुणो राजा द्रव्यमादित्य दैवतम् ।
वरोऽसौ विष्णुरूपेण प्रतिगृह्णात्वयं विधिः ॥

इति पठित्वा कन्यापिता स्वदक्षिणे पत्न्या सह वरस्य दक्षिणपार्श्वभागे शुभासन उदङ्मुख उपविश्याचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्यः—

एवं गुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथावस्मिन्पुण्याहे ममास्याः कन्याया अनेन वरेण धर्म्यप्रजया उभयोर्वंशयोर्वंशवृद्धचर्थं तथा च मम समस्तपितॄणां निरतिशयानन्दब्रह्मलोकावाप्त्यादिश्रुतिस्मृतिपुराणादिकन्यादानकल्पोक्तफलावाप्त-येऽनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसन्तत्या दशपूर्वान्दशपरान्मा ञ्चैकविंशतिपुरुषानुध्दतुं ब्राह्मविवाहविधिना श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये कन्यादान-महं करिष्ये[1] ।

कन्यादान

इसके पश्चात् कन्याप्रदाता (श्वसुर) आचमन एवं प्राणायाम आदि कर यथाविधि कन्यादान का संकल्प करता है । इस संकल्प की विशेषता यह है कि दोनों पक्षों की ओर से वर तथा वधू के पिता, पितामह तथा प्रपितामह इन तीनों पुरखाओं के नाम, गोत्र आदि का तीन-तीन बार उच्चारण किया जाता है, जैसे कि 'अमुक शर्मा के प्रपौत्र, पौत्र एवं पुत्र' तथा 'अमुक शर्मा की प्रपौत्री, पौत्री तथा पुत्री' कहने के बाद दोनों के नाम लिए जाते हैं और कहा जाता है कि मैं अपनी इस अमुक नाम्नी पुत्री को अमुक नामक वर को उसकी पत्नी रूप में समर्पित करता हूं । इस कन्यादान के पुण्य से मेरी सातों पीढ़ियों का उद्धार हो जायेगा और मुझे विष्णुलोक की प्राप्ति होगी ।

(स्मरण रहे कि यह कन्यादान दूसरे दानों के समान नहीं है । दूसरी किसी वस्तु का यदि किसी को दान कर दिया जाये तो दाता का उस पर फिर किसी प्रकार का कोई स्वत्व नहीं रहता । किन्तु विवाह में कन्यादान कर देने के पश्चात् भी पितृकुल का उस पर स्वत्व बना रहता है । यह भी कन्यादान की एक बड़ी विशेषता है ।)

---

१. अत्रैव वक्ष्यमाणस्य प्रत्येक श्लोकस्यान्ते वरपक्षिणो वरगोत्रोच्चारणं प्रतिश्लोकान्ते कन्या-पक्षस्थाश्च कन्यागोत्रोच्चारणं प्रतिश्लोकान्ते कुर्वन्तीति समाचारः । श्लोकाः

श्रीमत्पङ्कजविष्टरौ हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनल—
श्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणप्रेताधिपा वै ग्रहाः ।
प्रद्युम्नो नलकूबरः सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः
स्कन्दः शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥१॥

अमुक गोत्रस्यामुकप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकशर्मण: (वर्मण: गुप्तस्यान्यस्य वा) प्रपौत्राय अमुकशर्मण: पौत्राय, अमुकशर्मण: पुत्राय अमुक गोत्रस्याऽमुकप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकशर्मण: (वर्मण: गुप्तस्यान्यस्य वा) प्रपौत्रीं अमुकशर्मण: पौत्रीं अमुकशर्मण: पुत्रीम् ।

इति त्रिरावृत्य—

कन्यादान-संकल्प के समय कन्यापक्ष और वर पक्ष के विद्वानों के द्वारा आशीर्वादात्मक मंगलाष्टक के श्लोकों के द्वारा वर-वधू को आशीर्वाद देने की प्रथा है। इसे ही 'शाखोच्चार' भी कहते हैं।

गौरी श्रीरदितिश्च कद्रुसुभगाभूति: सुपर्णा शुभा,
सावित्री तु सरस्वती वसुमती सत्यव्रतारुन्धती ।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दु:स्वप्नविध्वसिनी,
वेला चाम्बुनिधे: समीनमकरा कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥२॥
नेत्राणां त्रितयं शिवं पशुपतेरग्नित्रयं पावनं,
यद्वद्विष्णुपदत्रयं त्रिभुवने ख्यात च रामत्रयम् ।
गङ्गावाहपथत्रयं सुविमलं वेदत्रयं त्रिस्वरे,
सन्ध्यानां त्रितयं द्विजैरभिहितं कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥३॥
अश्वत्थो वटवृक्षचन्दनतरुर्मन्दारकल्पद्रुमौ,
जम्बूनिम्बकदम्बचूतसरला वृक्षाश्च ये क्षीरिण: ।
सर्वे ते फलमिश्रिता: प्रतिदिनं विभ्राजिता: सर्वतो,
रम्यं चैत्ररथं सनन्दनवनं कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥४॥
वाल्मीकि: सनक: सनन्दनमुनिर्व्यासो वसिष्ठो भृगु—
र्जाबालिर्जमदग्निरत्रिजनकौ गर्गो गिरागौतम: ।
मान्धाता ऋतुपर्णवेनसगरा धन्यो दिलीपोऽनल:,
पुण्यो धर्मसुतो ययातिनहुषौ कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥५॥
ब्रह्मा वेदपति: शिव:पशुपति: सूर्यश्च चक्षुष्पति:,
शक्रो देवपतिर्यम: पितृपतिस्कन्दश्च सेनापति: ।
यक्षो वित्तपतिर्हरिश्च जगतां वायु: पति: प्राणिना-
मन्ये ये पतयो वसन्ति सततं कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥६॥
वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके,
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोऽयं भूतिविभूषण: सुरवर: सर्वाधिप: सर्वदा,
शर्व: सर्वगत: शिव: शशिनिभ: कुर्याद्द्वयोर्मङ्गलम् ॥७॥

अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदिने अमुक शाखिने अमुकशर्मणे, (वर्मणे गुप्ताय वान्याय वा) श्रीधररूपिणे अमुकनाम्ने चिरंजीविने वराय अमुक गोत्रोत्पन्नाम् अमुकप्रवराम् अमुकनाम्नीं श्रीरूपिणीं यथाशक्त्यलङ्कृतामुप कल्पितोपस्करसहितामिमां कन्यां प्रजापतिदैवत्यां स्वर्गकामः पत्नीत्वेन तुभ्यमहं सम्प्रददे ।

वेदान्तेषु यमाहुराद्यपुरुषं शक्त्या स्वयाराधितम्,
यो मुक्तोऽपि जनानुरागवशगो भक्त्या सदाबध्यते ।
यं वृन्दारकवृन्दवन्दितपदं ध्यायन्ति स्वान्ते बुधा,
देवोऽयं विधुभूषणः सुरवरः कुर्याद्द्वयोर्मङ्गलम् ॥८॥

इस अवसर पर अनेकत्र निम्न श्लोक भी कुछ लोग पढ़ते हैं—

कन्यां लक्षणसम्पन्नां कनकाभरणैर्युताम् ।
ददामि विष्णवे तुभ्यम्ब्रह्मलोकजिगीषया ॥
ऋषयः सर्वभूतनां साक्षिणः सर्वदेवताः ।
इमां कन्याम्प्रदास्यामि पितृणां तारणाय च ॥
कन्यादानं महादानं सर्वदानेषु दुर्लभम् ।
तदद्य दैवयोगेन त्वं गृहाण वरोत्तम ॥
मम कन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषिताम् ।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥
मम वंशसमुद्भूता पालिता पोषिता तथा ।
वर तुभ्यं मया दत्ता पुत्रपौत्रविवर्धिनी ॥
त्रैलोक्लनाथ देवेश सर्वभूतदयानिधे ।
दानेनानेन मे प्रीतो भव शान्तिम्प्रयच्छ मे ॥
श्रुत्वा कन्याप्रदानं च पितरः प्रपितामहाः ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥

इति सम्प्रार्थ्य प्रतिज्ञावचनं वरेण कुर्यात्—

धर्मे चार्थे च कामे च त्वयेमतिचारतः ।
न त्याज्याज्याहुतिरिव भूमौ संसारभूतिदा ॥
यस्त्वया धर्मश्चरितः कर्तव्यश्चानया सह ।
धर्मे चार्थे च कामे च नातिचार्या त्वया क्वचित् ॥

वरः—नातिचरामीति वदेच्च—

अहं नातिचरिष्यामि यदुक्तं भवता ततः ।
धर्मार्थकामकैः कार्यैर्देहाच्छायेव सर्वदा ॥

(अत्र अन्येऽपि कन्याबान्धवा यथासम्भवं द्रव्यं वरवध्वर्थं प्रयच्छन्ति । सेयं देशाचारतो व्यवस्था ज्ञातव्या ।)

इत्युक्त्वा कुशजलसहितं कन्यादक्षिणहस्तं वरदक्षिणहस्ते दद्यात्। (आचारादनयोर्हस्तयोर्मध्ये आर्द्रां हरिद्रां महेन्दिकां वा निधापयन्ति ।)

वरः 'ॐ स्वस्ति' इति प्रतिवदेत् । निम्न मन्त्रं च पठेत्—

ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु ।

यजमानः—ॐ अद्य कृतैतत्कन्याद नप्रतिष्ठार्थमिदं यथाशक्तिस्वर्णमग्निदैवतममुकगोत्राय अमुक प्रवराय अमुक शर्मणे वराय दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे, इत्युक्त्वा दक्षिणां वरहस्ते दद्यात् । गोमिथुनं वा दद्यात् ।

वरः—'ॐ स्वस्ति ।'

ॐ कोऽदात्कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात् कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ।।'*

(कन्यावरयोर्ग्रन्थिबन्धनमपि केचिदत्रैव कुर्वन्ति ।)

कन्यादान संकल्प ग्रहण कर लेने के पश्चात् वर कहे "स्वस्ति" और "द्यौस्त्वा" इत्यादि मन्त्र पढ़े । इस मन्त्र का अर्थ यह है—

"वास्तव में द्यौ अर्थात् आकाश के समान परम विशाल एवं परमोच्च तुम्हारे पिताजी ने मुझे तुम्हें दिया है और मैं भी पृथ्वी के समान विशालहृदय वाला बनकर तुम्हें ग्रहण कर रहा हूं ।"

ग्रन्थिबन्धन

(सामान्यतया वर-वधू का ग्रन्थि-बन्धन पहले ही कर दिया जाता है, यदि अभी तक न किया गया हो तो अक्षत, सुपारी तथा कुछ दक्षिण आदि रख कर वर के दुपट्टे के साथ वधू के वस्त्र का ग्रन्थिबन्धन कर दिया जाये और यह ग्रन्थिबन्धन चतुर्थी-कर्म—विवाह के चौथे दिन खोला जाये । तब तक उत्तरीय वधू के वस्त्र के साथ ही बंधा रहता है ।)

इस समय कन्या के पिता की ओर से वरराज को यथाशक्ति कुछ दक्षिणा दी जाये ।

वर उस दक्षिणा को ग्रहण कर "ॐ स्वस्ति" कहे तथा "कोऽदात्" इत्यादि मन्त्र पढ़ें ।

---

१. यद्यपि स्वकीये गृह्यसूत्रे पारस्करेण **'अथैनौ समञ्जयति समञ्जन्तु विश्वदेवा'** इत्यादिना चतुर्दश सूत्रानन्तरं पञ्चदशसंख्याके सूत्रे **'पित्रा प्रत्तामादाय'** इत्याद्युक्तम् । एवं कन्यादान-विधिस्तत्र प्रत्यक्षतो नैवोक्तस्तथापि **'पित्रा प्रत्तामादाय'** इति कथनेनैतत् सुस्पष्टं भवति यदुपर्युक्तः कन्यादानविधिः पारस्करसम्मत एवास्तीति ।

वरः ततस्तां पित्रा प्रत्तामादाय गृहीत्वा निष्क्रामति । मन्त्रो यथा—

(यदैषीत्याथर्वणऋषिरनुष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता निष्क्रमणे विनियोगः ।)

ओ३म् यदैषी मनसा दूरं दिशोऽनु पवमानो वा ।
हिरण्यवर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोत्वित्यसौ ॥ [१५]

(अत्र वधोर्नाम उच्चारणीयम् ।)

(ततो वेदीदक्षिणस्यां दिशि उत्तरस्यां वा परिपूर्णदृढकलशमूर्ध्वंतिष्ठतो मौनिनः पुरुषस्य स्कन्धे अभिषेकपर्यन्तं स्थापयेत् ।)

यजमान : अथेनौ समीक्षयति ।

वर : यजमानेन प्रेषितः सन् समीक्षमाणां कन्यामनुरागेण समीक्षमाणः एतान् चतुरो मन्त्रान् पठति—

इस मन्त्र का अर्थ यह है—

"वधू के रूप में मुझे इस कन्या को भला किसने दिया है और किस लिये दिया है। इसके साथ ही इसका उत्तर भी दे दिया गया है कि 'मुझे यह वधू 'काम' के द्वारा प्राप्त हुई है और काम के लिये ही। काम ही देने वाला है और काम ही ग्रहण करने वाला। काम के लिये ही यह सब कुछ हो रहा है।"

(यह काम-स्तुति मानव की दृढ़ इच्छा-शक्ति की प्रतीक है। मनुष्य काम या हार्दिक कामना अथवा दृढ़ अभिलाषा का संकल्प जब कर लेता है, तभी अपनी पुत्री को योग्य वर के हाथों समर्पित करता है कि इस जोड़े से इनकी सब कामनाएं परिपूर्ण हों।')

इसी समय कन्याप्रदाता वरराज से यह प्रतिज्ञा करवाता है कि हे वरराज, आज से लेकर आप जो भी धर्मार्थ या काम से सम्बद्ध कार्य करें, उन सब कामों में सदा अपनी इस वधू को अपने साथ रखना। इसके बिना कभी कोई कार्य न करना। वर तब "अहं नातिचरिष्यामि" आदि प्रतिज्ञा करे। इसका अर्थ यह है—

"आपने जो कुछ कहा है और जो आदेश दिया है, मैं उसका कभी उल्लंघन नहीं करूंगा-सदा उसका पालन करता रहूंगा। जैसे शरीर से छाया कभी अलग नहीं होती, वैसे ही धर्मार्थ, काम सम्बन्धी अपने सभी कार्यों में मैं अपनी इस वधू को सदा अपने साथ रखूंगा।

कन्या के परिवार के दूसरे सभी लोग भी वर-वधू के लिये इसी समय यथाशक्ति कुछ उपहार प्रदान करते हैं। कई स्थानों पर यह उपहार विवाह की समाप्ति के अवसर पर प्रदान किये जाते हैं, जहां जैसी रीति हो वैसा ही करें।

तब कन्या के पिता द्वारा इस प्रकार विधि-पूर्वक पत्नी के रूप में प्रदान की गई उस वधू का हाथ पकड़ कर वर वहां से यज्ञ-वेदी की ओर अथवा पहले ही से यदि यज्ञ-मण्डप में बैठे हों

(अघोरचक्षुरित्यादीनां चतुर्णां मन्त्राणां प्रजापतिः ऋषिराद्यन्तयोस्त्रिष्टुब् मध्यमयो-रनुष्टुप्छन्दः कुमारीदेवता परस्परसमीक्षणे विनियोगः ।)

ॐ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे ॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

सोमोऽदद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥

सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर ।
यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्टयै ॥
इति [१६]

॥ इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथम काण्डे चतुर्थी कण्डिका ॥
अथ पञ्चमी कण्डिका

प्रदक्षिणमग्निं पर्याणीयैके (१) पश्चादग्नेस्तेजनीं कटं वा दक्षिणपादेन प्रवृत्योपविशति (२) अन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्रजापत्यꣳ स्विष्टकृच्च (३) एतन्नित्यꣳ सर्वत्र (४) प्राङ्महाव्याहृतिभ्यः स्विष्ट-कृदन्यच्चेदाज्याद्धविः (५) सर्वप्रायश्चित्तप्रजापत्यन्तरमेतदावापस्थानं विवाहे (६)

तो वहां से कौतुकागार (माया) तक ले जाये और वहां प्रतिष्ठित श्री गणेशजी महाराज आदि देवताओं को प्रणाम कर वापिस लौट आए। इस समय वर "यदैषि मनसा" इत्यादि मन्त्र पढ़े। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

"हे वधू विवाह के पश्चात् अपने पितृकुल से दूर होते हुए तुम्हारा मन निश्चित ही चंचल पवन की भांति अपने इन माता पिता और बन्धु-बान्धवों के प्रति उत्सुक एवं लालायित रहेगा, किन्तु मैं उस हिरण्यपर्ण अत्यन्त तेजस्वी गरुड़ के समान सर्वत्र गमनशील पवन तथा प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वह तुम्हारे मन को मेरे मन के अनुकूल बनाये। (ताकि तुम्हें वहां अपने कुल की याद न सताया करे।)

दृढ़ पुरुष

इसके पश्चात् (वर पक्ष) का कोई दृढ़ पुरुष अपने कन्धे पर जलपूर्ण कलश लेकर वेदी के उत्तर में चुपचाप खड़ा रहे। विवाह-विधि के समाप्त हो जाने पर इसी कलश से जल लेकर वर वधू का अभिषेक करेगा।

वरः उपयमनकुशान् दक्षिणेनादाय वामकरे कृत्वा तूष्णीं वा मन्त्रैर्वा तिष्ठन् तिस्रो घृताक्ताः समिधः अभ्यादध्यात् ।

ॐ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आऽस्मिन्हव्या जुहोतन (१)

ॐसुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे स्वाहा (२)

ॐ तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ।

ॐ उपत्वाऽग्ने हविष्यतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत। जुषष्व समिधो मम स्वाहा[1] (३)

परस्पर समीक्षण

इसके पश्चात् कन्याप्रदाता वर और वधू को कहे कि आप दोनों एक दूसरे को भली भांति देख लें। उस समय 'अघोरचक्षु' आदि चार मन्त्र पढ़े जायें। इन मत्रों का अर्थ यह है—

अघोरचक्षु

"हे वधू, तुम्हारी दृष्टि अत्यन्त शुभ और मंगलमयी है। तुम कभी पति के किसी कार्य में बाधक न बनना और सदा उसके अनुकूल रहना। अपने घर के पशु और सेवक तथा अन्य जनों की सदा देखभाल तथा भलाई करते रहना और उनके भले के लिये सदा तत्पर रहना। अपने घर वालों तथा परिवार के सदस्यों के लिये तुम्हारा मन सदा अनुकूल और सद्भावयुक्त बना रहे। तुम सदा पातिव्रत तेज से तेजस्विनी बनी रहो। तुम्हारे पुत्र पौत्र वीर और पराक्रमी हों। तुम सदा देवताओं का भजन-पूजन और आराधन, विशेषतः अपने इष्टदेव की परिचर्या व उपासना में तत्पर रहना। देवपूजा के कार्य में कभी प्रमाद न करना और पारिवारिक सदस्यों के लिये यथाशक्ति सेवा करते हुए उनके लिए सुखदायक बनना। हमारे परिवार के जितने भी लोग और पशु आदि हैं, उन सबके लिए कल्याणकारिणी बनने का प्रयत्न करना।

सोमः प्रथमो

"हे वधू, सर्वप्रथम सोम ने, उसके बाद गन्धर्व ने और तदनन्तर अग्नि ने तुम्हें तथा तुम्हारे अंग-प्रत्यग को परिपुष्ट किया[1]। इस प्रकार सोम ने गन्धर्व को, गन्धर्व ने अग्नि को और अग्नि ने तुम्हें मुझे प्रदान किया है। अग्निदेव ने मुझे तुम्हे पत्नी रूप में इसलिए प्रदान किया है कि मैं तुम्हारे द्वारा खूब धन-धान्य, ऐश्वर्य तथा सन्तति-परम्परा से समृद्ध बन जाऊं।

---

१. श्री नित्यानन्द पन्त पर्वतीय-रचित संस्कार दीपक, पृष्ठ-१६६।
विशेषतो भूमिका दृष्टव्या।

(ततः उपविश्य सपवित्रेप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निपर्युक्षणं कृत्वा पवित्रे प्रणीतापात्रे निदध्यात् ।)

(विवाहादौ प्रवित्रप्रतिपत्तिःप्रणीताविमोकादयो न भवन्ति ।)

ततः पातितदक्षिणजानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतिर्जुहुयाद्वरः ।

(तत्राघारादारभ्य चतुर्दशाहुतिषु तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ।)

अग्निपूजनम्

भो योजकनामाग्ने अत्रसुप्रतिष्ठतो वरदो भव इत्येवं प्रतिष्ठाप्याग्नेर्ध्यानं कुर्यात्—

ॐ चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यान् आविवेश ।।

ॐ अग्नि प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णममलं दीप्तं समिद्धं सर्वतोमुखम् ।।
सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु ।।

इन मन्त्रों का आशय यह है कि सोम अर्थात् चन्द्रमा अथवा नानाविध औषधियों के रस के परिपाक से कन्या के शरीर का प्रारम्भिक विकास होता है । गन्धर्व वाणी और रूप के अधिपति हैं । कन्या के शरीर के विकसित हो जाने पर उसकी वाणी में माधुर्य और शरीर में सौन्दर्य का विकास होने लगता है । इस प्रकार शरीर के सुन्दर और सुपुष्ट हो जाने पर उनमें अग्नि-तत्त्व अथवा कामोद्दीपक ओज और सन्तानोत्पादक ऊष्मा का विकास होने लगता है ।

इस प्रकार सोम, गन्धर्व और अग्नि ये तीनों एक के बाद दूसरे क्रमशः कन्या के पति अर्थात् पालक या उसके अंगों को पुष्ट करने वाले हैं । और इसलिए कहा गया है कि कन्या को सर्वप्रथम सोम गन्धर्व को और गन्धर्व अग्नि को उसके गुणों के विकास के लिये सौंप देता है । इस प्रकार विवाह के योग्य रूपयौवन-लावण्य वाङ्माधुर्य आदि सभी गुणों से जब कन्या सर्वाङ्ग-सुन्दर बन जाती है, तो वह मनुष्य को पति के रूप में प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है । यह तो स्पष्ट ही है कि यहां 'पति' शब्द 'पालक' इस यौगिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । मनुष्य भी पत्नी का पालक या रक्षक है, इसीलिए वह पति कहलाने का अधिकारी बनता है ।

आचार्य पारस्कर ने अपने गृह्यसूत्र के प्रथम काण्ड की पांचवीं कण्डिका में तीसरे सूत्र—

'अन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्रजापत्यं स्विष्टकृच्च ।' में सर्वयज्ञोपयोगी आरम्भिक एवं आवश्यक चतुर्दश आहुतियों का विधान किया है।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम ।।

इत्यग्निं सम्पूज्य होममारभेत् ।

अथाघारौ

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा (१)

(इदं प्रजापतये न मम इति मनसा ।)

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा (२)

(इदमिन्द्राय न मम ।)

अथाज्यभागौ

ओ३म् अग्नये स्वाहा (३)

(इदमग्नये न मम ।)

ओ३म् सोमाय स्वाहा (४)

(इदं सोमाय न मम ।)

(इत्याज्यभागौ)

महाव्याहृतिहोमः

ओ३म् भूः स्वाहा (५)

(इदमग्नये न मम ।)

ओ३म् भुवः स्वाहा (६)

(इदं वायवे न मम ।)

ओ३म् स्वः स्वाहा (७)

(इदं सूर्याय न मम ।)

(एता महाव्याहृतयः)

सर्वप्रायश्चित्ताहुतयः

(ओ३म् त्वन्नोअग्नइति वामदेवऋषिरग्निवरुणौ देवते त्रिष्टुप्छन्दः सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः ।)

ओ३म् त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ।१।

(इदमग्निवरुणाभ्यां न मम ।)

(ओ३म् स त्वन्न इति वामदेवऋषिरग्निवरुणौ देवते त्रिष्टुप्छन्दः सर्वप्रायश्चित्तहोमे वियोगः ।)

और चौथी कण्डिका के तृतीय सूत्र—

उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय । (३)

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणꣳरराणो वीहि मृडीकꣳसुहवो न एधि स्वाहा ॥२॥

इदमग्निवरुणाभ्यां न मम।

(ॐ अयाश्चाग्न इति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता सर्वप्रायश्चित्त होमे विनियोगः।)

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्व मया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳस्वाहा ॥३॥

इदमग्नये अयसे न मम।

(ॐ ये ते शतमिति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वरुणः सविता विष्णुर्विश्वे देवा मरुतः स्वर्काश्च देवताः सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः।)

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा ॥४॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्योः देवोभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्क्केभ्यश्च न मम।

(ॐ उदुत्तममिति शुनःशेपऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वरुणो देवता सर्वप्रायश्चित्तहोमे विनियोगः।)

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये च स्याम स्वाहा ॥५॥

इदं वरुणाय न मम।

(एताः सर्वप्रयश्चित्तसंज्ञकाः।)

(निम्न दोनों आहुतियों के अन्त में दिये जाने का बिधान है।)

ॐ प्रजापतये स्वाहा। (उपांशु)

इदं प्रजापतये न मम।

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।।

इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

(अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः।)

तथा प्रथम कण्डिका के पांचों सूत्रों में कुशकण्डिका का विधान भी आचार्य पहले ही कर चुके हैं।

इसके आधार पर कहा जा सकता है कि विवाह-होम करते समय पहले कुशकण्डिका एवं चतुदर्श आहुति आदि प्रारम्भिक याज्ञिक विधि-विधान सम्पन्न कर लिये जायें। इसके पश्चात् विवाह के मुख्य और विशेष हवन आरम्भ होते हैं। सूत्रकार ने कहा है कि विवाह-सम्बन्धी

अथ राष्ट्रभृद्होमः

अतोऽग्रेऽन्वारम्भं बिना राष्ट्रभृतो जयानभ्यातानांश्च जुहुयात् ।
(ऋताषाडिति द्वादशानां प्रजापतिर्ऋषिर्युजश्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता होमे विनियोगः ।)

ओ३म् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः स न इदम्ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमृतासाहे ऋतधाम्नेऽग्नये गन्धर्वाय। न मम ॥१॥

ओ३म् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा । इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यश्च ॥२॥

ओ३म् सꣳहित विश्वसामा सूर्य्यो गन्धर्वः स न इदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय ॥३॥

ओ३म् सꣳहितो विश्वसामा सूर्य्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा । इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः ॥४॥

मुख्य होम में राष्ट्रभृत, जय और अभ्यातान नामक तीन होम भी हैं। इसी क्रम से इनका विधान किया जाता है ।

राष्ट्र विचारशक्ति के प्रतीक ब्राह्मण तथा दण्ड-शक्ति के प्रतिनिधि क्षत्रिय-वीर सैनिक के सहारे ही फलता-फूलता है। इसलिए इन मन्त्रों में कामना की गयी है कि राष्ट्र-निर्माता ब्राह्मण और क्षत्रिय सदा सशक्त बने रहें। इस प्रकार इन मन्त्रों में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले युवक से आशा की गयी है कि वह राष्ट्रीय-व्यवस्था के प्रति सदा जागरूक रहे। साथ ही इन आहुतियों में एक आहुति ऋत के लिए भी दी जाती है। सृष्टि के व्यापक नियम का नाम ही 'ऋत' है। और विवाह उस ऋत (नियम) के पालन के लिए ही किया जाय, न कि अनियमित भोग के लिए।

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है सम्पूर्ण राष्ट्र के भरण-पोषण, संरक्षण और कल्याण की कामना से यह होम किया जाता है। भारतीय परम्परा में व्यक्ति समाज या राष्ट्र का ही एक अंग है। इसीलिए विवाह जैसे नितान्त वैयक्तिक संस्कार या यूं कहें कि कार्य में भी हमारे ऋषियों ने राष्ट्र और राष्ट्र का धारण एवं संरक्षण करने वाली ब्रह्म या ज्ञानशक्ति तथा विचार-आध्यात्मिक शक्ति, एवं क्षात्र-भौतिक शक्ति के निरन्तर संरक्षित, सुरक्षित एवं परिवर्धित होते रहने की कामन की है, इन राष्ट्रभृत संज्ञक बारह मन्त्रों में।

इन मन्त्रों में से पहले में गन्धर्व तथा द्वितीय में उस गन्धर्व की विशेष अप्सराओं के नामों और कार्यों का सार्थक उल्लेख हुआ है। स्मरण रहे कि वेद में शब्दों के अर्थ अधिकतर

ओ३म् सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सुषुम्णाय सूर्य्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय ॥५॥

ओ३म् सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः ॥६॥

ओ३म् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः स न इदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय० ॥७॥

ओ३म् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्ज्जो नाम ताभ्यः स्वाहा । इदमद्भ्योऽप्सरोभ्यः ऊग्भ्र्यः ॥८॥

ओ३म् भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय गन्धर्वाय० ॥९॥

ओ३म् भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम ताभ्यः स्वाहा । इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः ॥१०॥

यौगिक हैं। सामान्यतया गन्धर्व देवताओं की एक जाति विशेष और अप्सराएं "स्वर्वेश्या" मानी गयी हैं । किन्तु इन मन्त्रों में प्रतिपादित गन्धर्व न तो गन्धर्व-जाति के कोई व्यक्ति ही हैं और न अप्सराएं स्वर्वेश्याएं ही । सूर्य की किरणें भी अप्सराएं कही गई हैं । इनके अर्थ सीधे-सादे से हैं, जैसे कि—

गन्धर्व

गां धारयति इति अर्थात् गौ को धारण करने वाला 'गन्धर्व' होता है और इस गौ के या गो के ब्रह्माण्ड, सूर्य, किरण, पृथ्वी, वाणी, मननशील मन, वायु और प्रकाशक तेज या अग्नि आदि अनेक अर्थ हैं । इन मन्त्रों में गन्धर्व इन्हीं उपयुक्त अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यही स्थिति 'अप्सरा' की है । अप्सु-जलेषु, कर्मसु अथवा तेजस्सु सरन्ति इत्यादि अनेक अर्थ हैं 'अप्सरा' के, वेद में । इस प्रकार इन मन्त्रों का कुछ आशय इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

ऋत

ऋत के सत्य आदि अनेक अर्थ हैं, किन्तु सृष्टि या प्रकृति के 'अटल नियम' का नाम ऋत है । सन्ध्या में प्रतिदिन पठित "ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।" इत्यादि अघमर्षणमन्त्र और विवाह प्रकरण के इस राष्ट्रभूत होम के "ऋताषाड् ऋतधामाग्निः" तथा सृष्टि-

---

१. स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः । —अमरकोश-१।१।५१

ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय० ॥११॥

ॐ प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस[1] एष्टयो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं ऋक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः ॥१२॥

इति राष्ट्रभृद्होमः

उत्पत्ति के सूचक ऐसे ही अन्य अनेक मन्त्रों में सृष्टि-तत्त्व या प्राकृतिक तत्वों का सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। ऋत वे प्राकृतिक नियम हैं, जिनके द्वारा सृष्टि का संचालन होता है, धारणा और सहन करने वाली दिव्य शक्ति ही भर्ग या तेज है। वह दिव्य तेज ही इस देदीप्यमान ब्रह्माण्ड रूपी गन्धर्व को धारण किये हुए है। ये जाज्वल्यमान किरणें (ओष् प्लोष् दीप्तौ) उसकी ऐसी अप्सराएं हैं, जिनसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मोद व आनन्द की उपलब्धि हो रही है। वह ऋत धामाग्नि गन्धर्व हमारी ब्रह्म (ज्ञान तथा आध्यात्मिक) शक्ति एवं क्षात्र-शक्ति (भौतिक बल) को बनाए रखे और उत्तरोत्तर उसे बढ़ाते रहे।

निश्चित ही ज्ञान एवं भौतिक बल के विकास से ही राष्ट्र की उन्नति होती है। ज्ञानी-विज्ञानी और वीर-विक्रान्त जब राष्ट्र-संरक्षण के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं तब देश चहुंमुखी उन्नति करता है। यही भाव राष्ट्रभृद्होम के अगले मन्त्रों में भी विभिन्न रूपों में दर्शाया गया है। जैसे कि—

"ॐ संहितो विश्वसामा"—गौ अर्थात् पृथ्वी तथा अन्य सौर-परिवार के ग्रहों को धारण करने वाला यह सूर्य एक ऐसा गन्धर्व है, जिसमें इन सबको अपनी आकर्षण शक्ति के बल पर संहित किया हुआ है। जिसके आधार पर इन सब सौर-मण्डल के ग्रहों की सम्पूर्ण गति-विधि संहित हो रही है तथा जो प्रातः सायं इन दोनों सन्धिवेलाओं में संहित होता और इस प्रकार दिन-रात को जो आपस में जोड़ता है। जैसाकि श्रुति में कहा गया है कि "एष अहोरात्रे सन्दधातीति" यह सूर्य-गन्धर्व सारे विश्व का स्रष्टा है और इसकी प्रकाशशील किरणें ऐसी अप्सराएं हैं, जिनसे प्राणी मात्र को आयु अथवा जीवन प्राप्त होता है।

हमारे ऋषि-मुनियों को हजारों वर्षो से ज्ञात था कि पेड़-पौधे भी जीवधारी हैं, वे भी श्वास लेते हैं। भले ही आज हमारे ही वैज्ञानिक डॉ जगदीशचन्द्र बसु ने उसे वैज्ञानिक विधि से भी पुनः सत्यापित कर दिखाया हो। ऋषि तो पहले ही से कह रहा है कि "मरीचयो··· ··· आयुवो नाम" अर्थात् ये सूर्य की किरणें आयु या जीवन प्रदान करती हैं। पौधों के पत्तों में प्रकाश-संश्लेषण Photo Senthesis के द्वारा उसके लिए इसी से पोष्यतत्त्व उत्पन्न होता है और इसी से पेड़-पौधे फलते-फूलते हैं।

---

१. ॐ यस्मिन्नृचः सामयजूंषि प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित ꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

अथ जयहोमः

(चित्तञ्चेत्यादीनां द्वादशमन्त्राणां परमेष्ठी ऋषिर्यजूंषि चित्तादयो देवता जयहोमे विनियोगः।)

ॐ चित्तं च स्वाहा, इदं चित्ताय न मम ॥१॥

ॐ चित्तिश्च स्वाहा इदं चित्यै न मम ॥२॥

"सुषुम्णा सूर्यरश्मि"—सुषुम्णा उन सूर्य रश्मि-विशेषों का नाम है, जो चन्द्रमा पर पड़ती हैं और उसे प्रकाशित करती हैं। सूर्य की रश्मियों से प्रकाशित होने वाला यह चन्द्रमा शीतल प्रकाश को धारण करने वाला सुन्दर, सौम्य गन्धर्व है। "भेकुरि" (भां-प्रभां कुर्वन्ति इति भेकुरयः) प्रकाशित करने वाले या आकाश में टिमटिमाने वाले ये नक्षत्र ही इस चन्द्रमा की शोभा बढ़ाने वाली उसकी अप्सराएं हैं।

"इषिरो विश्वव्यचा" सर्वत्र गमनशील, स्वेच्छा से सब स्थानों पर पहुंच जाने वाला यह शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर अथवा इस भूमण्डल पर व्याप्त सम्पूर्ण वायुमण्डल के द्वारा यह हमारी धरती भली-भांति सुरक्षित है, इसीलिए यह वायु भी (गां-पृथ्वीं धारयति इति 'गन्धर्वः') कहा गया है। ये वैज्ञानिक तो आज बताने लगे हैं कि वायुमण्डल और उसके दबाव के कारण मानव-धरती पर रहने और चल-फिरने योग्य बन पाया है, तथा यह वायुमण्डल ही आकाश में निरन्तर होने वाली उल्कावृष्टियों को मार्ग में ही भस्मसात् कर इस धरती को बचाये हुए है, अन्यथा इसकी भी चन्द्रमा जैसी दशा हो जाती। इन सब तत्त्वों को ध्यान में रखकर ऋषियों ने वायु को 'गन्धर्व' कहा है। अब प्रश्न यह हुआ कि गन्धर्व तो वायु बन गया पर उसकी अप्सराएं कहां उड़ी फिर रही हैं? इसके लिए ऋषि ने बताया कि वायुमण्डल के द्वारा सूर्य-किरणों से आकाश में और फिर उसी वायु के द्वारा पुनः धरती पर पहुंच कर अपने आवागमन का चक्र निरन्तर बनाये रखने वाली यह जल-राशि या पानी की बूंदे ही वायु की अप्सराएं हैं। और इन अप्सराओं का नाम है 'ऊर्ज' या अन्न। इस जल रूपी अप्सरा से ही ऊर्ज अथवा अन्न की उत्पत्ति होती है और उसी अन्न से बल प्राप्त होता है। अन्न कहिये या बल एक ही बात है।

"भुज्युः सुपर्णः" इस सृष्टि का धारक सर्वत्र गमनशील, आकाश में उड़ने, उठने वाला "सुपर्ण" यज्ञ भी गन्धर्व है, क्योंकि वह सम्पूर्ण प्राणिमात्र का पालन-पोषण करता है। (भुनक्ति इति भुज्युः) अर्थात् प्राणियों को भोग पदार्थ प्रदान करने वाला। इस यज्ञ की दक्षिणाए ही इसकी अप्सराएं अर्थात् कर्म की पूरक है। यहां 'अप्' शब्द कर्मार्थक है। यज्ञ-कर्म की पूर्ति दक्षिणाओं से होती है, यह सर्वविदित है। "हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः" इन दक्षिणाओं का नाम 'स्तावा' बताया गया है। 'स्तावा' का अर्थ है स्तुति या स्तुत्य या प्रशंसा के योग्य। यज्ञ की स्तुति या प्रशंसा तभी होती है, जब उसमें पुष्कल दक्षिणा दी जाती है।

"प्रजापतिः विश्वकर्मा" हमारा मनन चिन्तन आदि करने वाला सब प्रकार के शुभाशुभ

ॐ आकूतं च स्वाहा इदम् आकूताय न मम ॥३॥
ॐ आकूतिश्च स्वाहा इदमाकूत्यै न मम ॥४॥
ॐ विज्ञात च स्वाहा इदं विज्ञाताय न मम ॥५॥
ॐ विज्ञातिश्च स्वाहा इदं विज्ञात्यै न मम ॥६॥
ॐ मनश्च स्वाहा इदं मनसे न मम ॥७॥
ॐ शक्वरीश्च स्वाहा इदं शक्वरीभ्यः न मम ॥८॥
ॐ दर्शश्च स्वाहा इदं दर्शाय न मम ॥९॥
ॐ पौर्णमासञ्च स्वाहा इदं पौर्णमासाय न मम ॥१०॥
ॐ बृहच्च स्वाहा इदं बृहते न मम ॥११॥

कार्यों का प्रेरक और संचालक तथा सर्वत्र गमनशील यह मन प्रजापति तो है ही, साथ ही प्रज्ञापति भी है। सम्पूर्ण प्रज्ञा का विकास भी मन के द्वारा ही होता है। इसीलिए वेद के छह मन्त्रों में इस मन रूपी गन्धर्व की अनन्त शक्ति और विशाल महिमा का बखान करते हुए प्रत्येक मन्त्र के अन्त में प्रभु से प्रार्थना की गयी है कि ऐसा मेरा यह मन "शिवसंकल्प" हो। सारे विश्व के कार्यक्रम को संचालित करने वाले मन रूपी गन्धर्व की ऋचाएं और सामगीतियां ही अप्सराएं हैं। तथा इन अप्सराओं का नाम है "इष्टि" अर्थात् इच्छाओं को पूर्ण करने वाली। वेद ही मन की अप्सराएं हैं, इसी आशय को व्यक्त करते हुए अनेकत्र बहुत कुछ कहा गया है'। क्योंकि वेदमन्त्रके मनन से ही मनोबल बढ़ता है, अतः वेद मन की अप्सराएं—शक्तियां हैं। राष्ट्र के नीतिनिर्धारक ब्राह्मण और रक्षक वीरों का मनोबल सदा बढ़ता रहे, यही इस मन्त्र में कामना की गई है।

जयहोम

इसके पश्चात् जय होम की १४ आहुतियां दी जाती हैं। इन मन्त्रों में मन और आत्मा की विशिष्ट शक्तियों का स्मरण एवं आवाहन किया जाता है। जैसे कि—चित्त और चेतना-शक्ति, हमारे मानसिक अभिप्राय अथवा आशय और उस आशय को क्रियात्मक रूप में परिणित कर देने की शक्ति विज्ञान और विज्ञान को प्रयोगात्मक रूप में लाने की क्षमता एवं वैज्ञानिक प्रतिभा मन तथा मानसिक शक्तियां दर्श तथा पूर्णमास-इष्टि, बृहत् और रथन्तर साम इन सबके लिए सुहुत हो, ये सब हमारी श्रद्धाभक्ति स्वीकार करें, और हममें इनकी शक्तियों का यथेष्ट विकास हो। हम दर्शपौर्णमास इष्टि किया करें और सामगान की परम्परा भी हममें बनी रहे।

"प्रजापतिर्जयान्" इत्यादि मन्त्र का अर्थ है कि उस प्रजापति (परब्रह्म) ने वर्षा करने वाले या कामनाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्र के लिए जय देने वाले मन्त्र-शक्तियां-प्रदान किए हैं। इन जय देने वाले मन्त्रों के प्रभाव से ही इन्द्र शत्रुओं की सेनाओं को जीतने में प्रचण्ड पराक्रमी बने

ॐ रथन्तरञ्च स्वाहा इदं रथन्तराय न मम ॥१२॥

(प्रजापतिरिति परमेष्ठीऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रजापतिर्देवता जयहोमेविनियोगः।)

ॐ प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रपृतनाजयेषु । तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इ हव्यो बभूव स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय ॥

इति जयहोमः।

अथाभ्यातानहोमः

(अग्निर्भूतानामित्यादीनामष्टादशमन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दो अग्न्यादिदेवता अभ्यातानहोमे विनियोगः।)

ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥१॥

इदमग्नये भूतानामधिपतये।

ॐ इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥२॥

इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये।

ॐ यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा ॥३॥

इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये न मम।

(अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः)

और सब लोग उन्हें नमस्कार करते हैं। अर्थात् विजय की सामर्थ्य रखने वाला राष्ट्र-रक्षक पराक्रमी ही हमारे कर-ग्रहण का अधिकारी हो सकता है।

इसके बाद "अभ्यातान" होम की अट्ठारह आहुतियां देवें। इन मन्त्रों का अर्थ यह है—

"अग्निर्भूतानाम्"—अग्नि सब भूतों का रक्षक है। इसलिए वह मेरी रक्षा करे। वह इस ब्राह्मण-समूह में, अथवा इस ब्रह्मकर्म यज्ञ या ब्राह्म-विवाह में, इस क्षत्रिय के संरक्षण कार्य में इस प्रार्थना में, मेरे पास बैठी हुई वधू में, इस हवन आदि कर्म में और देवताओं के हमारे इस आवाहन में सर्वत्र सबकी रक्षा करे। इन्द्र सब ज्येष्ठ पुरुषों—बड़े से बड़े लोगों में प्रमुख हैं, वे सबके रक्षक हों (२) यम (सारी पृथ्वी का नियमन करने वाला ऋतुचक्र) इस पृथ्वी के स्वामी हैं, वे हमारी रक्षा करें (३) अन्तरिक्ष का अधिपति वायु है, वह हमारा रक्षक हो (४) द्युलोक या प्रकाशमान तत्त्वों का स्वामी सूर्य है, वह हमारी रक्षा करे (५) नक्षत्रों का

ॐ वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे-स्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥४॥

इदं वायवेऽन्तरिक्षस्याधिपतये न मम।

ॐ सूर्यो दिवो अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामा-शिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥५॥

इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये न मम।

ॐ चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥६॥

इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये न मम।

ॐ बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे स्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥७॥

इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये न मम।

ॐ मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥८॥

इदं मित्राय सत्यानामधिपतये न मम।

ॐ वरुणो अपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे-स्यामाशिष्यस्यां पुरोधायास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥९॥

इदं वरुणाय अपामधिपतये न मम।

ॐ समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा॥१०॥

इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये न मम।

स्वामी चन्द्रमा है, वह भी हमारी रक्षा करे (६) ब्रह्म अर्थात् वेद या इस विशद ब्रह्माण्ड का अधिपति परब्रह्म परमात्मा है, वह हमारी रक्षा करे (७) सत्य व्यवहारों का साक्षी या अधिपति सूर्य है, वह हमारी रक्षा करे (८) जलों का स्वामी वरुण है (९) स्रोत से बहने वाले जलों का अधिपति समुद्र है (१०) साम्राज्यों या ऐश्वर्यों का नियामक अन्न है (११) औषधियों का स्वामी सोम है (१२) फल पुष्प आदि का उत्पादक सूर्य है (१३) सम्पूर्ण पशुओं (जीवों) का स्वामी रुद्र-शिव है (१४) सुन्दर रूपों का निर्माता त्वष्टा (उत्तम शिल्पी) है (१५) मेघो का उत्पादक यज्ञ है (१६) गणों के स्वामी मरुत हैं (१६) ये सब हम सब लोगों की रक्षा करें। इसी प्रकार पिता, पितामह, प्रपितामह आदि भी हमारी रक्षा करें।

ॐ अन्नꣳसाम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्-क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥११॥

इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये न मम ।

ॐ सोम औषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ-स्वाहा ॥१२॥

इदं सोमाय औषधीनामधिपतये न मम ।

ॐ सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ-स्वाहा ॥१३॥

इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये न मम ।

ॐ रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे-ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳस्वाहा ॥१४॥

इदं रुद्राय पशूनामधिपतये न मम ।

(अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः)

ॐ त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ-स्वाहा ॥१५॥

इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये न मम ।

ॐ विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ-स्वाहा ॥१६॥

इदं विष्णवे प्रजानामधिपतये न मम ।

ॐ मरुतो गणानामधिपतयस्ते मान्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ-स्वाहा ॥१७॥

इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यो न मम ।

ओ३म् पितरः पितामहाः परेवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥१८॥

इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योवरेभ्यश्च । [१०]

(अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः)

इत्यभ्यातानहोमः ।

अथापरोऽग्न्यादिपञ्चकहोमः

(अग्निरैत्वित्यादीनां प्रजापतिः ऋषिरनुष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता आज्यहोमे विनियोगः ।)

ओ३म् अग्निरैतु प्रथमो देवतानाᳪसोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयᳪराजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेय ᳪ स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥१॥

इदमग्नये इदं न मम ।

ओ३म् इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियᳪ स्वाहा ॥२॥

इदमग्नये इदं न मम ।

ओ३म् स्वस्ति नोऽअग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रᳪस्वाहा ॥३॥

इदमग्नये न मम ।

इस प्रकार अभ्यातान होम की अट्ठारह आहुतियां देने के बाद वर "अग्निरेतु" इत्यादि मन्त्रों से घी की छः आहुतियां देवे । इन मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार है—

"अग्निरैतु" आदि मन्त्र का अर्थ यह है—देवताओं में मुख्य मृत्यु के भय या बन्धन को भस्म करने वाला अग्नि हमें भली-भांति प्राप्त हो । वह पुत्र-पौत्रादि प्रदान करे । वरुण राजा उस पुत्र-पौत्रादि की समृद्धि का अनुमोदन करे, ताकि मेरी वधू को कभी कोई सन्तान के अभाव अथवा कुमार्गगामी सन्तान के होने का किसी भी प्रकार कष्ट आदि का दुःख न सताये । (१)

"इमामग्निः" इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है—गार्हपत्य (गृहस्थसम्बन्धी यज्ञ की) अग्नि इस मेरी वधू की रक्षा करे । प्रभु करे इसकी दीर्घायु हो और सुख-सन्तान की प्राप्ति हो, इसकी

ॐ सुगन्नु पंथाम्प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरं न आयुः। अपैतु मृत्युरमृतं न आगाद्वैवस्वतो नोऽभयं कृणोतु स्वाहा ।।४।।

वैवस्वताय न मम' [११]

(अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः)

(परंमृत्याविति सङ्कसुकऋषिरनुष्टुप्छन्दो मृत्युर्दत्रता होमे विनियोगः)

ॐ परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा७ुरीरिषो मोत वीरान् स्वाहा ।।५।।

इदं मृत्यवे न मम ।

परं मृत्याविति चैके (संस्रव) प्राशनान्ते [१२]

(अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः)

इति पारस्करगृह्यसूत्रे पञ्चमी कण्डिका ।

गोद सदा भरी-पूरी रहे और यह दीर्घजीवी पुत्रों की माता बने। यह पुत्र-पौत्रादि से प्राप्त होने वाले आनन्द का अपने जीवन में सदा उपभोग करती रहे। (२)

"स्वस्ति नो अग्ने" इत्यादि मन्त्र का अर्थ है— हे यजत्र-यज्ञ करने वालों के रक्षक अग्नि (उन्नति की ओर अग्रसर करने वाले भगवान्) हमारे जो काम यथाविधि सम्पन्न न हुए हों, उन्हें आप विधिपूर्वक करने की क्षमता प्रदान कीजिए और हमें पृथ्वी से आकाश तक के यश का तथा इस पृथ्वी और आकाश में मिलने वाले नाना प्रकार के द्रव्यों और श्रेष्ठ वस्तुओं का भागी बनाइये। (३)

"सुगन्नु पन्थाम्" इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है—हे अग्ने, हे भगवान्, आप हमें सुमार्ग दिखाते हुए सदा हमारे मध्य निवास करें और हमें वृद्धावस्था के रोग और निर्बलता आदि विकारों से रहित जगमगाती हुई आयु प्रदान करें। मृत्यु (का भय) हमसे दूर हो जाए, हमें अमृतत्त्व की प्राप्ति हो और सूर्य का प्रकाश हमें सदा अभय करता रहे। और विवस्वान के पुत्र यम से हम सदा निर्भय रहें। (४)

---

१. शिष्टाचार के अनुसार इसके बाद 'परंमृत्यो' आदि आहुति के समय वधू के आगे अन्तरपट कर दिया जाता है। एक चार-पांच हाथ लंबा कपड़ा दो व्यक्ति दोनों ओर से पकड़कर वधू के आगे इस प्रकार परदा कर देतें हैं कि वह आगे दी जाने वाली मृत्यु देवता की आहुति को न देख सके। मृत्यु के नाम से वधू इस मांगलिक अवसर पर भयभीत न हो जाये, इसलिए केवल वधू के आगे यह अन्तर पट किया जाता है। वर-वधू दोनों के मुख के आगे अन्तरपट नहीं करना चाहिए, क्योंकि वर तो अग्नि के समक्ष बैठा हुआ ही आहुति देगा। यदि वधू घूंघट निकाले हुए हो तो अन्तरपट की कोई आवश्यकता नहीं।

लाजाहोमः

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे षष्ठी कण्डिका

(तत्र वधूवरौ द्वावपि प्राङ्मुखौ स्थितौ भवतः। वधूश्च किञ्चिदग्रे स्थिता स्यात्। यथा तस्यै स्वाञ्जलिनाग्नौ लाजाहुतिदाने सौकर्यं स्यात्। तत आचारात् वराञ्जलिपुटोपरि संलग्नवध्वञ्जलौ—)

पारस्कर : कुमार्या भ्राता शमीपलाश (घृत) मिश्राल्लाजानञ्जलिनाञ्जलावावपति [१] ताञ्जुहोति संहतेन तिष्ठती।

मन्त्रो यथा—

(ओ३म् अर्यमणमित्यादिमन्त्राणामथर्वणऋषिरग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दो लाजाहोमे विनियोगः।)

ओ३म् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा ॥१॥

इदम् अर्यमणे न मम।

(अनेनाञ्जलिस्थलाजानां तृतीयांशं जुहोति)

इस समय पठनीय "परम्मृत्यो" आदि मन्त्र का अर्थ है—हे मृत्यु के अधिष्ठात्री देवता तुम अहिंसा के उत्कृष्ट मार्ग का अनुसरण करो। उससे भिन्न हिंसात्मक मार्ग को मत अपनाओ, क्योंकि कोई भी देवता हिंसा के मार्ग को ग्रहण नहीं करता। अथवा हे मृत्यु के अधिष्ठातृ देव जो कोई हमें दैवी-सम्पदा या देवताओं के मार्ग से हटाने का प्रयत्न करे, आप उसे हमसे दूर कर दीजिए। और आप स्वयं हमारे इस देवयान मार्ग से कहीं दूर (पितृयान मार्ग की ओर) चले जाएं। सब कुछ देखने-सुनने तथा जानने वाले हे देव, आप हमारी प्रजा या पुत्र-पौत्रादि और वीरों को नष्ट न होने दें।

(यह आहुति दे देने के बाद वर प्रणीता के जल का स्पर्श करे।)

लाजाहोम

इसके बाद वर और वधू दोनों अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जायें। इनके पीछे वधू का भाई (सगा या चचेरा, मौसेरा कोई भी) सूप में लाजा (चावल, ज्वार आदि की खीलें) घी और शमीपत्र (जंडी या खेजड़े की पत्तियां) मिलाकर उन्हें छाज में भर कर खड़ा हो जाए।

अब वर और वधू की अंजुलियां एक साथ ऊपर नीचे मिला दी जाये, तब वर की अंजुलि पर रखी हुई वधू की अंजुलि में उसका भाई लाजा भर दे। इस प्रकार "अर्यमणम् देवम्", "इयं नारी उपब्रूते" और "इमां लाजान्" आदि तीन मन्त्र पढ़कर अपनी अंजुलि की धानियों की अग्नि में तीन आहुतियां दे। इस अवसर पर पठनीय तीनों मन्त्रों के अर्थ इस

ॐ इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पति-रेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा ॥२॥

इदम् अग्नये न मम ।

(अनेनाञ्जलिस्थलाजानामर्धं जुहोति)

ॐ इमांल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्यञ्च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा ॥३॥

इदम् अग्नये न मम [२]

(एवं तिष्ठन्ती वधूस्त्रिवारमुक्तमन्त्रैः स्वाञ्जलिस्थान् लाजान् जुहुयात् ।)

वरोऽथास्यै दक्षिणहस्तं गह्णाति सांगुष्ठम् ।

मन्त्रो यथा—

(गृभ्णामीत्यादीनां चतुर्णां मन्त्राणां याज्ञवल्क्यभरद्वाजाथर्वणप्रजापतय ऋषय स्त्रिष्टुबुष्णिगनुष्टुब्यजूंषि छन्दांसि भगार्यमसवितृपुरन्धयो देवताः वधूपाणिग्रहणे विनियोगः ।)

ॐ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥१॥

ॐ अमोऽहमस्मि सा त्वꣳसा त्वमस्यमोऽअहम् । सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ॥२॥

ॐ तावेव विवाहावहै सह रेतो दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्द्यावहै बहून् ॥३॥

पहली आहुति—

"ॐ अर्यमणं देवम्"—अग्नि स्वरूप जिस अर्यमादेव (प्रभु या सूर्य) की उपासना मैं कर रही हूं, वह मुझे अपने पति से कभी बिछुड़ने न दे । (इस मन्त्र को बोल कर वधू अपनी अंजुली की तृतीयांश लाजाओं की पहली लाजाहुति देवे ।)

दूसरी आहुति—

"इयं नारी उपब्रूते"—लाजा होम करती हुई यह नारी (मैं वधू) कामना करती हूं कि मेरा पति आयुष्मान् हो और मेरे परिवार के लोग-पितृकुल व पतिकुल दोनों—खूब फलें-फूलें । (इस मन्त्र से दूसरे भाग की लाजाहुति देवे ।)

तीसरी आहुति

'इमान् लाजान्"—हे पतिदेव आपकी सुख और समृद्धि की प्रतीक इन लाजाओं की मैं अहुति दे रही हूं—इन्हें मैं अग्निदेव को समर्पित कर रही हूं । यह अग्निदेव आपके और मेरे प्रेम को खूब बढ़ाये । (इस मन्त्र से वधू सारी लाजाओं की तीसरी आहुति देवे ।)

ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳश्रृणुयाम शरदः शतम् । [३]

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे षष्ठी कण्डिका)

अथ सप्तमी कण्डिका

अथ अश्मारोहणम्

(पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे सप्तमी कण्डिका)

वरोऽथैनामश्मानमारोहयत्युत्तरतोऽग्नेर्दक्षिणपादेन ।

मन्त्रो यथा—

(आरोहेममित्यस्याथर्वणऋषिरनुष्टुप्छन्दो वधूर्देवता अश्मारोहणे विनियोगः ।)

ॐ आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳस्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतो-

(यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि वधू अपनी अंजुलि में भरी हुई लाजाओं की थोड़ी-थोड़ी करके अलग-अलग मन्त्रों के साथ तीन आहुतियां देगी ।)

सांगुष्ठ पाणिग्रहण

तब वर वधू का अंगूठे सहित दायां हाथ पकड़ ले । इस समय वह "गृभ्णामि ते" इत्यादि मन्त्र पढ़े । इनका अर्थ इस प्रक.र है—मैंने सौभाग्य (सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य) के लिए तुम्हारा हाथ पकड़ा है, हे वधू तुम मेरे साथ वृद्धावस्था तक लम्बी आयु प्राप्त करना । मैंने तुम्हारा हाथ इसलिए पकड़ा है कि भग अर्यमा और सविता देवों ने तुम्हें मुझे दिया है। तुम लक्ष्मी रूपिणी हो, इसलिए मैं तुम्हें गृहस्वामिनी के रूप में स्वीकार करता हूं । अब हम तुम दोनों मिलकर गृहस्थ चलायेंगे और निरतिशय आनन्द प्राप्त करेंगे तथा जहां तक बन पड़ेगा गार्हपत्य अग्नि की स्थापना कर प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ आदि किया करेंगे ।

"अमोऽहमस्मि"—इत्यादि मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—हे वधू, मैं लक्ष्मीवान् हूं और और तुम लक्ष्मी हो । (तुम्हारे बिना मैं लक्ष्मीरहित था, अब मेरी लक्ष्मी तुम बन जाओ ।) मैं विष्णु रूप हूं और तुम लक्ष्मीरूपिणी हो, मैं सामवेद हूं आर तुम ऋचा (ऋग्वेद) हो । अतः जैसे सामवेद ऋग्वेद का ही एक अंश है, वैसे ही तुम भी मेरा ही रूप बन जाओगी । मैं 'द्यौ' (आकाश) हूं और तुम पृथ्वी (के समान सब धन-धान्यों की आधार एवं सहिष्णु हो) । हम दोनों का विवाह-सम्बन्ध स्थापित हो रहा हैं । प्रभु-कृपा से इस विवाह के द्वारा हम पुत्र-पौत्रादि तथा सुख-समृद्धि से युक्त होकर वृद्धावस्था तक जीते रहें । हम दोनों का प्रेम सदा बना रहे, हमारा यश खूब फैले और हम शुभ-कामनाएं करते हुए सौ वर्षों तक देखते और सुनते हुए जीवित रहें ।

ऽवबाधस्व पृतनायतः । [१]

अथ गाथां गायति (वरः)—

(सरस्वती प्रेदमिति विश्वावसुःऋषिरनुष्टुप्छन्दः। सरस्वती देवता गाथागाने विनियोगः।)

ॐ सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति। यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः ॥१॥

ॐ यस्यां भूत ७ँ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः। [२]

अथ (वधूवरौ प्रदक्षिणमग्निं) परिक्रामतः। मन्त्रो यथा—

(तुभ्यमग्र इत्याथर्वणऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता परिक्रमणे विनियोगः।)

ॐ तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्या वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां

शिलारोहण

इसके बाद यज्ञवेदी के उत्तर में पूर्वाभिमुख खड़ा हुआ वर वधू से कहे कि वह अपना दायां पैर शिला पर रखे (यह शिला वहां पहले ही से रख दी जाय) जिस समय वधू शिला पर पैर रखकर खड़ी हो, उस समय 'आरोह' ादि मन्त्र पढ़ा जाय। उसका भाव यह है—

हे वधू तुम इस शिला पर इसलिए आरूढ़ हुई हो कि इस शिला की भांति मेरे परिवार में तुम स्थिर रूप से प्रतिष्ठित हो जाओ और जो कोई भी तुम्हारा या हमारे परिवार का विरोध करे, उसका इस शिला की भांति दृढ़तापूर्वक दमन करने में समर्थ बनो, तुम शिला के समान सदा स्वस्थ व सुदृढ़ बनी रहना।

गाथागान

इसी समय "सरस्वती प्रेदमव" मन्त्र पढ़ा जाये। इसका अर्थ इस प्रकार है— हे सब ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री तथा अन्न आदि प्रदान करने वाली सरस्वती देवी, आप इस विवाह संस्कार के कर्म की रक्षा करें। आप इस सम्पूर्ण विश्व की आया जननी या प्रकृति कही जाती हैं। पृथ्वी आदि पंच महाभूत आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आज मैं उस गाथा का गान करूंगा, जो स्त्रियों का उत्तम यश है, अथवा हे वधू, तुम सरस्वती के समान विदुषी और अन्न तथा कोष की रक्षिका बनकर गृहस्थ का भली भांति संचालन व संरक्षण करने वाली बनो। मैं आज स्त्रियों के उत्तम यश का गान करता हू ।

---

१. कुछ लोग वर को कहते हैं कि वह वधू का पांव पकड़ कर उसे शिला पर रखे। यह ठीक नहीं। वर केवल वधू से पांव रखने के लिए कहे, उसका पैर न पकड़े। दूसरी बात यह कि वधू का पांव शिला पर ही रखवाया जाये, बट्टे, लोढी या लुढ़क जाने वाले किसी पत्थर पर नहीं। वर का यह प्रैषवाक्य है।

दाऽग्ने प्रजया सह । [३]

(इति पठन् वधूमग्रतः कृत्वा परिक्रमेत् ।*)

एवं द्विरपरं लाजादि । [४]

तृतीयपरिक्रमणानन्तरं चतुर्थे शूर्पकुष्ठया सर्वान् लाजानावपति वधूः । मन्त्रो यथा—

ओ३म् भगाय स्वाहा । [५]

इदं भगाय न मम ।

ततः समाचारात् तूष्णीं चतुर्थपरिक्रमणं कुरुतो वधूवरौ । अत्र वरोऽग्रे वधूश्च पश्चात् । ततः यथास्थानमागत्य उपविश्य ब्रह्मणान्वारब्धः वरः जुहोति ।

त्रिः परिणीतां प्राजापत्यꣳहुत्वा सप्तपदी मारभेत । [६] मन्त्रो यथा—

अग्नि की परिक्रमा या फेरे

इस गाथा-गान के बाद वर और और वधू यज्ञवेदी की परिक्रमा करें। यहां वधू आगे और वर पीछे रहे।

अग्नि की परिक्रमा करते समय "तुभ्यमग्ने" आदि मन्त्र पढ़ा जाये।

इसका अर्थ इस प्रकार है—"हे अग्निदेव, तुम्हें प्राप्त कराने वाले यज्ञादि कार्यों के लिए मैंने इस वधू को स्वीकार किया है। यह सूर्य की दी हुई शोभा प्राप्त करे और इसका पति मैं भी प्रतिष्ठा प्राप्त करू। हे अग्ने, आप मुझे इस वधू को पत्नी के रूप में प्रदान कर रहे हैं। (मैं अग्नि को साक्षी बनाकर इसे अपनी सधर्मिणी पत्नी बना रहा हूं। मेरी प्रार्थना और कामना है कि) हम दोनों पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर सुखी और समृद्ध हों।

इस प्रकार एक परिक्रमा कर लेने के बाद फिर उसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार, तीन-तीन लाजाहुतियां, शिलारोहण और अग्नि परिक्रमा की जाय और (हो सके तो मन्त्र तथा उनके अर्थ भी) प्रत्येक बार बोले जायें।

चतुर्थ लाजाहुति

इस प्रकार जब तीन बार में नौ लाजाहुतियां और तीन बार शिलारोहण तथा तीन बार अग्नि की परिक्रमाएं हो जाएं, तब वर और वधू अपने-अपने आसनों पर खड़े हो जायें। अब वधू का भाई चौथी बार उस (वधू) की अंजुलि में शेष बची हुई सारी खीलें डाल दे और वह (वधू)—"ओ३म् भगाय स्वाहा" मन्त्र बोलकर उन सब लाजाओं की आहुति दे दे।

तत्पश्चात् वधू और वर बिना कोई मन्त्र बोले अग्नि की चौथी परिक्रमा करें[1]। इस

---

*अग्रे तु शुभदा पत्नी माङ्गल्ये सर्वकर्मणि। (सभा. कारिक)

१. कहीं-कहीं लोकाचारानुसार अग्नि की ७ परिक्रमाएं भी दी जाती हैं, वहां चौथी की भांति पांचवीं, छठी और सातवीं परिक्रमा भी बिना कोई मन्त्र बोले सम्पन्न होती हैं। चार परिक्रमाएं सात के अन्तर्गत हैं, अतः ७ परिक्रमाएं करने में भी कोई शास्त्रविरोध नहीं है।

ॐ प्रजापतये स्वाहा ।

इदं प्रजापतये न मम । (इति मनसा)

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे सप्तमी कण्डिका)

परिक्रमा में वर आगे और वधू पीछे रहे । अग्नि की परिक्रमा या फेरों के समय तथा शिलारोहण आदि के अवसरों पर भी वर-वधू गठजोड़े सहित ही सब विधि सम्पन्न करें ।

लाजा होम के समय वधू यह भी कामना करती है कि मेरी जाति के, परिवार के लोग खूब बढ़ें, फलें-फूलें । यहां केवल पति की दीर्घायु की ही कामना नहीं की गयी है अपितु पूरे परिवार, समाज और राष्ट्र के फलने फूलने की उदात्त कामना भी है ।

लाजा-होम और अग्नि-परिक्रमा के साथ ही साथ वर-वधू को शिला पर खड़ी करवाता है ।

इस प्रकार चार परिक्रमा कर लेने के बाद वर और वधू अपने-अपने आसन पर बैठ जायें । तब वर—

"ॐ प्रजापतये स्वाहा" इदं प्रजापतये न मम ।

मन्त्र मन में बोलकर एक घृत आहुति देवे ।

सप्तपदी और वामाङ्ग

इसके बाद वर वधू को अपने साथ ७ पद (डग) चलाये । उसकी विधि यह है कि वर और वधू दोनों खड़े हो जायें और उत्तर की ओर पहले से खींची गई रेखाओं पर पहले दाहिना पैर रखते हुए वर, वधू को अपने साथ-साथ चलाये । एक-एक पग पर पढ़े जाने वाले प्रत्येक मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

१. 'हे सखे, मैं विष्णु रूप वर अन्न आदि पदार्थों की प्राप्ति के लिए पहला पग, २. बल के लिए दूसरा, ३. धन-धान्य के लिए तीसरा, ४. सुख समृद्धि के लिए चौथा, ५. गौ आदि पशुओं (से प्राप्त होने वाले दूध, दही घी, मक्खनऔर बरफी-पेड़ा आदि) की प्राप्ति के लिए पांचवां और विभिन्न ऋतुओं में प्राप्त होने वाले पदार्थों के उपयोग के लिए छठा पग तुम्हें अपने साथ चलाता हूं । इस प्रकार हे वधू मेरे साथ सात पग चलकर तुम मेरी सखा या मित्र बन गयी हो । मैं आशा करता हूं कि तुम सदा मेरी अनुवर्तिनी रहोगी और इस प्रकार साथ-साथ चलते हुए हम दोनों १भूः, २ भुवः, ३ स्वः, ४ महः, ५ जन, ६ तपः और ७ सत्य इन सातों लोकों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जायेंगे ।"

पारस्करगृह्यसूत्रेऽष्टमी कण्डिका

सप्तपदी

अथेनामुदीचीᳪसप्तपदानि प्रक्रामयति (वरः) [१]

एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु ।

द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु ।

त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु ।

पूज्यपाद आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराज ने 'सप्तपदीहृदय' के नाम से इस शास्त्रीय विधि का वैज्ञानिक विवेचन भावग्राही रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

इस शिवशक्तिस्वरूप सम्पूर्ण विश्वमण्डल में किसी न किसी विशेष सम्बन्ध से परस्पर आनन्द के लिए नाना प्रकार से व्यवहार करने वाला यह जगत् सम्बद्ध ही दिखाई देता है। उसमें भी अपने-अपने समाजों से स्थापित किये हुए उन उन नियमों के अनुसार स्त्री-पुरुष, परस्पर पतिपत्नी-भाव से जिस सभ्य बनने वाले कर्म को स्वीकार करते हैं, उस संस्कारक कर्म को सच्छास्त्रों के रहस्य को जानने वाले विद्वान् विवाह कहते हैं।

यह विवाह बहुत प्रकार का होता है। विवाह शब्द योगरूढ़ है। स्त्री और पुरुष नियम विशेष से पति-पत्नी भाव सम्बन्ध को परस्पर प्राप्त करते हैं, उस कर्म को विवाह कहते हैं। मन्वादि महर्षियों ने आठ प्रकार का विवाह बतलाया है, वे सब बातें उन्हीं ग्रन्थों में देखनी चाहिए।

यज्ञ से यज्ञपुरुष परमात्मा को सन्तुष्ट करने वाले आर्य लोग सुव्यवस्था की स्थापना से सम्पूर्ण जगत् को आनन्द देने के लिए संस्कार करते हैं अर्थात् श्रेष्ठ बनाते हुए दिखाई देते हैं। इसीलिए भगवान् ने कहा है कि—

'सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।'

"प्रजापति ने बहुत प्राचीन समय में प्रजा की सृष्टि की तथा उनकी सहायता के लिए यज्ञ का उपदेश कर उनसे कहा कि इससे सम्पूर्ण प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करलो, यह आपकी इच्छापूर्ति के लिए कामधेनु होगा।"

आर्यत्व प्राप्त करने वाले विधान से परस्पर सहायता पहुंचाने वाले सम्पूर्ण कर्मों का समावेश यज्ञपद में हो जाता है। उसमें जो कर्म अन्तर्मुखता के लिए हितकर हो वह श्रेष्ठ यज्ञ है। जो बहिर्मुखता के लिए हितकर हो वह कनिष्ठ यज्ञ है। अच्छे कर्मों से अच्छे फलों की तथा कनिष्ठ कर्मों से कनिष्ठ फलों की प्राप्ति होती है। इसलिए धर्म, पुत्र, रति फल के उद्देश से किये गये विवाहों में पूर्व पूर्व विवाह को सनातन महर्षियों ने श्रेष्ठ कहा है, अस्तु।

पञ्च पशुभ्यः विष्णुस्त्वा नयतु ।

षड् ऋतुभ्यः विष्णुस्त्वा नयतु ।

सखे सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव । [२]

विष्णुस्त्वा नयत्विति सर्वत्रानुषजति । पा. सू. [३]

भारतवर्ष में भूत तथा भविष्यत् जानने वाले जगत् के कल्याणकारक सम्पूर्ण साधनों को प्रत्यक्ष देखने वाले सनातन महर्षियों द्वारा संस्थापित विवाह विधायक कर्मों में सर्वोत्तम तथा अन्तिम सप्तपदी नामक कर्म है। इस कर्म के सम्पूर्ण होने पर ही विवाह अटूट माना जाता है। अतः विद्वानों की सम्मति में विवाह क्रिया में सप्तपदी कर्म सर्वश्रेष्ठ है। इस कर्म में वर वधू को अपने साथ सात पद चलाता है। सप्तपदों को चलाने का यह कर्म सात श्रेष्ठ लोकों का विजयसूचक है। श्रेष्ठलोक सात ही माने गये हैं। सात लोक पर्यन्त एक सम्मति से साथ जाने वालों में पूर्ण मित्रभाव की स्थापना होना स्वयंसिद्ध ही है। इसीलिए महर्षि लोग सख्य(मित्रभाव) को सप्तपदीन नाम देते हैं। सातों लोकों के विजय की अभिलाषा रखने वाला पुरुष अपनी सहायता के लिए तथा अपने बहिर्मुख आनन्द की पूर्ति के लिए स्त्री के सम्मुख सात प्रकार की प्रतिज्ञा से उसके सात लोकों की विजय के लिए अपने आपको पूर्ण रूप से प्रतिभूत्व (उत्तर-दायित्व) की प्रतिज्ञा करता हुआ इस स्त्री के साथ पूर्ण मित्रभाव स्थापित करता है। भारतीय आर्य विवाहसंस्कार कर्म में अत्युत्तम तथा अन्तिम यह क्रिया कितनी सुन्दर एवं आदर्शपूर्ण है। इस सप्तपदी में वर के द्वारा की जाने वाली ये सात प्रतिज्ञाएं गृह्यसूत्र में "एकमिषे" इत्यादि वाक्यों से बहुत ही संक्षिप्त रूप में कही गयी हैं। उन्हीं का हृदय (रहस्य) मनोहर श्लोकों में खोलकर यहां स्पष्ट किया जा रहा है—

शिवशक्तिमयं विश्वं परस्परसुखाप्तये।
विवाहितं विजयते सप्तपद्या प्रतिश्रुतम् ।।१।।

मदतिथिगुरुपुत्रभ्रातृवर्गं समस्तं
विविधविधिविधानैः साधितैरन्नपानैः ।
इह हि परिचरन्ती माननीया स्वराष्ट्रे
भवसि जयसि लोकं मद्गृहस्था सुधाशे !।।२।।

इषे नयाम्यहं विष्णुस्त्वां सुन्दरि ! सुधाशने ।।
पदमेकमिति प्रोक्ते पत्या प्राह वधूरिदम् ।।३।।

तवार्जितैरन्नवरैः सुरक्षैः
सुपाचितैस्त्वां परितोषयामि ॥
तव स्ववर्गं च समस्तमेव
त्वदाज्ञया साधु सभाजयामि ॥४॥

शौचाऽऽचारविचारसाधितपरीणाहेन सम्पोषितः
स्वो वर्गोऽहमपि प्रसन्नहृदयः साराङ्गयष्टिः सदा ॥
ऊर्जस्वि प्रभवामि कर्तुमखिलं राष्ट्रं स्वकीयं महत्
तस्माच्चारुदृढाङ्गशोभिनि ! भुवर्लोकं मया यास्यसि ॥५॥

ऊर्जे नयाम्यहं विष्णुस्त्वां चारुदृढविग्रहे ! ॥
पदद्वयमिति प्रोक्ते पत्या प्राह वधूरिदम् ॥६॥

यथाबलं त्वद्गृहपारिणाह्यं
परीक्ष्य शौचादिविधानतोऽहम् ॥
ऊर्जप्रदं रोगहरं त्वदर्थे
कुटुम्बपुष्ट्यै परिसाधयामि ॥७॥

१. पहला पद—वर और वधू एक साथ पहला कदम आगे बढ़ाते हैं और उस समय वर यह मन्त्र बोलता है—

ॐ एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु ।

अर्थात् विष्णु रूप मैं वर इष अर्थात् अन्नादि के लिए तुम्हें अपने साथ एक कदम लिए चलता हूं।

उपनिषदों में कहा गया है कि "अन्नं वै प्राणाः" अर्थात् प्राणियों का जीवन अन्न, भोजन या खुराक पर ही निर्भर है। इसलिए सर्वप्रथम वर यह कामना करता है कि विवाहित जीवन में उसे सुन्दर, मधुर, स्वादु, पुष्टिकारक भोजन सुलभ हो। ब्रह्मचर्याश्रम में रहते तो जैसा-तैसा रूखा-सूखा जो कुछ खाने को मिल जाता था उसी से संतोष करना पड़ता था। किन्तु अब गृहस्थाश्रम में बल और पुष्टिकारक भोजन मिलना ही चाहिये। क्योंकि आचार्य चरक ने कहा है—

हितभुक् मितभुक् पथ्याशी नरो न रोगी भवति।

अर्थात् हितकारक यानि बल, पुष्टि प्रदान करने वाले तथा मधुर और सुस्वादु पदार्थों का परिमित या उचित मात्रा में भोजन करने वाला एवं सदा पथ्य ग्रहण करने वाला व्यक्ति कभी दुर्बल, कमजोर, अस्वस्थ या रोगी नहीं होता। इसलिए वर वधू से सर्वप्रथम यही चाहता है कि वह उसे जीवन में सदा अच्छे, बल पुष्टिवर्धक भोज्यपदार्थ बना कर खिलाती रहे। इसके उत्तर में वधू कहती है कि—

धनं धान्यं च मिष्टान्नं व्यंजनाद्यञ्च यद् गृहे।
मदधीनं च कर्तव्यं-वधूराद्ये पदे वदेत् ॥

अर्थात् मैं आपकी रुचि के अनुकूल नानाविध मधुर व्यंजन बनाकर खिलाना अपना

द्रव्यक्षेमविचारभारमखिलं दत्त्वा त्वदीये करे
नानोपायविधानतः स्वयमहं द्रव्याणि सम्प्रार्जयन् ।।
स्वं राष्ट्रं धनपूरितं विरचयन्नर्थज्ञधुर्ये ! शुभे !
स्वर्लोकं प्रभवामि जेतुमिह हि प्राज्ये स्वराष्ट्रे त्वया ।।८।।

रायस्पोषाय विष्णुस्त्वामर्थविज्ञे ! नयाम्यहम् ।
पदत्रयमिति प्रोक्ते पत्या प्राह वधूरिदम् ।।९।।

गार्हस्थ्यसाधनसमस्तपदार्थवर्ग
मूलं धनं विधिवदर्जितमस्ति यत्ते ।।
आयव्ययादि सुपरीक्ष्य निदेशतस्ते
त्वत्प्रीतये बहुविधं परिवर्द्धयामि ।।१०।।

संरक्षां ननु पारिणाह्यविषयां सौख्यप्रदानोद्धुरे !
नानाऽऽशंसितवस्तुसंग्रहधुरामारोप्य शीर्षे तव ।।
तत्तत्सौख्यनिमित्तवस्तुभरितं राष्ट्रं समृद्धं स्वकं
कुर्वन्कीर्तिमवाप्नुवन्निह महर्लोकं जयामि त्वया ।।११।।

सौभाग्य मानूंगी, किन्तु इसके लिए अन्न, घृत दुग्ध आदि आवश्यक सामग्री आपको जुटानी होगी।

वर, वधू की यह बात सहर्ष स्वीकार करता है और कहता है कि इस प्रकार जब हम दोनों मिलकर जीवनरूपी रथ के दो पहियों की भांति आगे बढ़ेंगे तो हम इस भूलोक पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

२. वर, वधू को अपने साथ दूसरा पद चलाते समय यह मन्त्र बोलता है—

ॐ द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु ।२।

अर्थात् ऊर्ज या बल पराक्रम के लिए मैं विष्णु रूप वर तुम्हें दो कदम अपने साथ लिए चलता हूं। जब अच्छा पुष्टिकारक भोजन मिलेगा। भोजन में पोषक तत्त्वों का अभाव नहीं रहेगा तो मनुष्य बलवान होगा और बलवान मनुष्य ही सब कुछ कर सकता है, यह तो सुविदित ही है। इसीलिए यहां बल या पराक्रम की कामना की गयी है। किन्तु यह बल और पराक्रम केवल अकेले व्यक्ति का नहीं पूरे परिवार का कहा गया है। मेरे परिवार को बलशाली बनाना होगा। मेरे माता-पिता और कुटुम्ब की ही नहीं, समागत अतिथियों के भी आतिथ्य-सत्कार के द्वारा ही मुझे सच्चा बल प्राप्त होगा।

वधू वर की यह बात स्वीकार करती हुई कहती है कि —

कुटुम्बं पालयिष्यामि बालान् वृद्धान्स्वमेव च।
यथालब्धेन सन्तुष्टा ब्रूते कन्या द्वितीयके ।।

मायोभवाय विष्णुस्त्वां सुखविज्ञे ! नयाम्यहम्
चतुष्पदमिति प्रोक्ते पत्या प्राह वधूरिदम् ।।१२।।

आवश्यकानि विविधानि गृहे त्वदीये
वस्तूनि यानि गृहिणां सुखसाधनानि ।।
तेषामहं समुदयं विरचय्य नूनं
त्वामात्मवर्गसहितं सुखयामि शश्वत् ।।१३।।

मेधाकान्तिबलाऽगदत्वरचनं गव्यं परं कारणं
तन्मूलं पशुवृन्दपालनमतस्त्वां तद्व्यवस्थापने ।।
वार्ताज्ञे ! विनियोज्य राष्ट्रभरणे कुर्वन् प्रयत्नं सदा
जानं लोकमहं त्वया सह पुनर्जेष्यामि शुद्धाशये ! ।।१४।।

परिवार का ऐसे पालन पोषण करूंगी कि सब लोग सदा सुखी, स्वस्थ व प्रसन्न रहें। और आप जो भी कुछ जितना भी लाकर देंगे, अपनी चतुराई और सुघड़ता से मैं उसी में भली भाति निर्वाह कर लिया करूंगी।

इस पर वर कहता है कि तब तो निश्चित ही हम दोनों साथ चलते हुए भुवः लोक पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।

३. इसके बाद वर और वधू तीसरा कदम आगे बढ़ाते हैं तब वर यह मन्त्र बोलता है—

ॐ त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु ।३।

अर्थात् रै या धन-वैभव की वृद्धि के लिए मैं तुम्हें तीन कदम अपने साथ लेकर चलता हूं। हमारा जीवन समृद्धशाली या प्रोस्परस हो यह मैं चाहता हूं। तुम्हारे सहयोग से हम सर्वविध धन, वैभव के भागी बनें।

पहले कदम में अच्छे पुष्टिवर्धक भोजन की बात कही गयी थी और दूसरे पद में बताया गया था कि पुष्टिकारक भोजन से ही मनुष्य बलवान बन सकता है और अब तीसरे पद में बताया गया है कि जब मनुष्य बलवान होगा तो वह अपने उद्योग और परिश्रम से खूब धन कमायेगा और वैभवशाली बनेगा।

इस पर वधू कहती है कि जब हमारा जीवन वैभवशाली होगा तो हम खूब कूएं तालाब, मन्दिर, धर्मशालाएं और पाठशालाएं आदि बनाएंगे ताकि हमारे राष्ट्र और समाज का कल्याण हो। यह न सोचना कि आप अपनी सम्पत्ति या समृद्धि से केवल अपना हो भला करो। अपितु अपनी समृद्धि में सारे समाज और राष्ट्र को सहभागी बनाना।

इष्टापूर्ति विधास्यामो लोककल्याणकारणम् ।

अर्थात् शास्त्रकारों ने मन्दिर धर्मशालाएं आदि बनवाने के लिए इष्ट और आपूर्त जो दो प्रकार के कर्म बताये हैं, उनका सम्पादन हम करेंगे।

पश्वर्थं विष्णुरूपो हे वार्ताज्ञे ! त्वां नयाम्यहम् ।।
पदपञ्चकमित्युक्ते पत्या प्राह वधूरिदम् ।।१५।।

दधिदुग्धघृतादिसाधनं
कृषिवाणिज्यनिमित्तमस्ति यत् ।।
सुखदं परमं कुटुम्बिनां
पशुवृन्दं परिपालयामि तत् ।।१६।।

आत्मायं परमो बहिर्मुखमहाऽऽनन्दाय बद्धीकृत-
स्तस्मात्त्वां परिणीय चित्तरचितं सर्वर्त्तुसौख्यं भजन् ।।
राष्ट्रप्रीणनतत्परं सुयशसं वंशं प्रतिष्ठापयन्
जेष्यामि प्रथितं त्वया सह तपोलोकं विशुद्धाशये ! ।।१७।।

तब वर कहता है कि इस प्रकार जब हम दोनों मिलकर लोक-कल्याण में प्रवृत्त होंगे, तो निश्चित, ही हम दोनों तीसरे स्वर्लोक या स्वर्ग पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे ।

ॐ चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु ।।४।।

मायो भू अर्थात् सुख और कल्याण के लिए मैं तुम्हें चार कदम अपने साथ लिए चलता हूं। अर्थात् जब हम लोक-कल्याण के कार्यों में प्रवृत्त होंगे तो निश्चित ही हमें अनुपम सुख, आत्मिक आनन्द और यश की प्राप्ति होगी। और साथ ही हमें सांसारिक भोग-विलास की भी कहीं कोई कमी नहीं रहेगी ।

वधू इसके लिए भी सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान करती है ।

और तब वर कहता है कि इस प्रकार चौथे महर्लोक पर भी हम विजय प्राप्त कर लेंगे। अब मैं तुम्हें पांचवें पद तक अपने साथ लिए चलता हूं ।

५. वर और वधू के पांचवां पद एक साथ चलते समय वर यह मंत्र बोलता है—

ॐ पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ।।५।।

अर्थात् अपने पशु-धन की वृद्धि के लिए मैं तुम्हें पांच पद तक अपने साथ लिए चलता हूं। पहले मधुर पुष्टिकारक भोजन, बल, वैभव और राष्ट्रकल्याणकारी कार्यों की कामना की गयी किन्तु इन सबके लिए जो परमाश्यक तत्त्व है वह यह है, कि हमारे पशुधन गाय, बैल, घोड़ा आदि पशुओं के बिना न पुष्टिकारक भोजन मिलेगा और न बल ही होगा। इसलिए यहां कामना की गयी है कि गृहणी घर के पशुधन की भलीभांति देखभाल किया करे ।

वधू ने वर की इस बात के साथ अपनी सहमति प्रदान की और कहा कि इतना ही नहीं सुख हो या दुःख मैं आपकी सदा सहभागिनी बनी रहूंगी ।

तब वर कहता है कि इस प्रकार हम पांचवें जन लोक पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।

विशुद्धकामने ! विष्णुर्ऋतुभ्यस्त्वां नयाम्यहम् ॥
पदषट्कमिति प्रोक्ते पत्या प्राह वधूरिदम् ॥१८॥

अद्वैतभावमुपगम्य तवाज्ञयैव
तत्तद्-हृषीकसुखसाधनतामुपेता ॥
सर्वासु तासु ऋतुषु त्वयि बद्धभावा
त्वामर्चयामि नितरां परितोषयामि ॥१९॥

सख्यं साप्तपदीनमत्र मुनयः सम्पूर्णमाहुः सदा
तेन त्वामभिगम्य सप्तममहं लोकं जयामि ध्रुवम् ॥
मोक्षार्थं हृदयं विधाय भवती राष्ट्रस्य सम्भावने
मामेवाऽनुगता भविष्यति तदा मोक्षो न ते दुर्लभः ॥२०॥

वध्वाः प्रतिश्रुतं ज्ञात्वा पतिः प्राहैवमुत्तमम् ॥
सखे ! सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव ॥२१॥

प्राप्तं मया मनुजदेहफलं समस्तं
त्वत्सख्यसुकृतमहं भवता गताऽद्य ॥
सर्वं प्रतिश्रुतमिदं हृदये दधाना
त्वामेव पूर्णहृदयेन तु कामयिष्ये ॥२२॥

६. आगे छठे पद की ओर बढ़ते समय वर यह मन्त्र पढ़ता है—

ॐ षड्ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ॥६॥

अर्थात् पशुधन की वृद्धि से जब हमें भरपूर दूध, दही घृत आदि गव्य पदार्थ प्राप्त होंगे तो हम उनका उपयोग केवल अपने लिये ही न करके छहों ऋतुओं में होने वाले विविध यज्ञों के लिए किया करेंगे। और इस प्रकार हम सच्चे अर्थों में ऋत्विक अर्थात् प्रत्येक ऋतु में विधिपूर्वक यज्ञ करने वाले बन जायेंगे। इसके साथ ही यह भी कि हमारा खान-पान और भोजन वस्त्रादि भी सदा तदनुकूल परिवर्तित होता रहेगा। और छहों ऋतुओं के सुख वैभव हमें सदा सुलभ रहेंगे। इस पर वधू अपनी सहमति प्रदान करती है और कहती है कि आप ठीक कहते हैं। हम खूब यज्ञ दानादि किया करेंगे और इन कामों में मैं आपका हाथ बटाती रहा करूंगी।

तब वर कहता है कि इस प्रकार छह कदम साथ चलने के बाद हम तपोलोक पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।

७. और तब वर वधू सातवां पद आगे धरते हैं। उस समय वर यह मन्त्र बोलता है—

ॐ सखे सप्तपदा भव, सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु ॥७॥

अर्थात् सात पैर मेरे साथ चलकर अब तुम मेरी सखा बन गई हो।

(पश्चादुपविष्टपुरुषस्य स्कन्धस्थितकुम्भादाम्रपल्लवेन जलमानीय) तत एनां मूर्द्धन्यभिषिञ्चति वर। [४]

(ॐ आपः शिवा इति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः आपो देवता वधूमूर्द्धाभिषेचने विनियोगः)।

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ [५]

(ॐ आपो हिष्ठेति त्रिचस्य सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्रीछन्द आपो देवता वधूमूर्द्धाभिषेके विनियोगः)।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥१॥

ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥

तस्माऽअरङ्गमामव यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥३॥ [६]

अथैनां सूर्यमुदीक्षयति मन्त्रो यथा—

(तच्चक्षुरिति दध्यङ् आथर्वण ऋषिर्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योदीक्षणे विनियोगः।)

अभिषेक—

तब वर पहले से भरकर रखे हुए कुम्भ में से लिये हुए जल से 'आपोहिष्ठा' आदि मन्त्रों से वधू के सिर पर छींटे दे और अन्त में अपने ऊपर भी जल छींट ले।

अभिषेक के पठनीय मन्त्रों का अर्थ यह है—

१. 'आपः शिवाः'—हे वधू, कल्याणकारक और परिपूर्ण समृद्धि के प्रतीक सब प्रकार की मलिनता और पापों को दूर करने वाले जल तुम्हें सदा आरोग्य प्रदान करें।

२. 'आपोहिष्ठा'—हे जलो, तुम सब प्रकार के सुख देने वाले हो, इसलिए हमें अन्न के उत्पादन में समर्थ बनाओ, ताकि हम अन्न का उत्पादन कर विश्व के रमणीय दृश्य पदार्थों को देख सकें। या उस ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकें। जैसे माता अपने पुत्र की कामना करती है, वैसे ही हे जलो, आप भी हमें सब प्रकार के सुख सौभाग्य और कल्याण के भागी बनाइए। हे जलो, जिस अन्न के निवास के लिए तुम औषधियों को पुष्ट करते हो, उसी दिव्य अन्न के लिए हम तुम्हें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करते हैं और तुम हमें पुत्र-पौत्रादि के उत्पादन में समर्थ बनाओ।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳश्रृणुयाम शरदः शत भूयश्च शरदः शतात् ॥ [७]

अथास्यै दक्षिणांसमधि हृदयमालभते। मन्त्रो यथा—

(मम व्रते ते इति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रजापतिर्देवता वधूहृदयालम्भने विनियोगः)।

ओ३म् मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ [८]

अथ वर एनामभिमन्त्रयते। मन्त्रो यथा—

(सुमङ्गलीरिति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता वध्वभिमन्त्रेण विनियोगः)।

ओ३म् सुमङ्गलीरियं वधूरिमाꣳसमेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेत न ॥ [९]

'सुमङ्गलीरित्यनेन' मन्त्रेण वरेणाथवा सौभाग्यवत्या सीमन्तिन्या वधूसीमन्ते सिन्दूरमपि दापयन्ति वृद्धाः। तत्पश्चात् 'उत्तरत आयतना हि स्त्री' (श. ब्रा.) इति श्रुतिलिङ्गानुमितात् शिष्टाचारात् वधूं वरस्य वामभाग उपवेशयन्ति।

तां दृढपुरुष उन्मथ्य प्राग्वोदग्वाऽनुगुप्त आगार आनडुहे रोहिते चर्मण्युपवेशयति। मन्त्रो यथा—

(इह गावो इति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता वधूपवेशने विनियोगः)।

इह गावो निषीदन्त्विहाश्वा इह पुरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणो

सूर्यदर्शन

इसके बाद वर वधू से कहे कि सूर्य का दर्शन करो। इस समय वर या वधू (अथवा दोनों) के पठनीय 'तच्चक्षु' आदि मंत्र का अर्थ यह है—

'हम पूर्व दिशा में निकलते हुए उस परब्रह्म के निर्मल नेत्र और देवताओं के हितकारक सूर्य को सौ वर्ष तक देखते रहें। सौ वर्ष तक जीते रहें, सौ वर्ष तक सुनते और बोलते रहें तथा सौ वर्ष तक ऐसे समर्थ रहें कि हमें किसी के आगे दीनता दिखानी न पड़े और गिड़गिड़ाना न पड़े। प्रभु करे कि हम सौ वर्ष से भी अधिक देखते-सुनते और बोलते हुए जीते रहें।

हृदयालम्भन

सूर्य दर्शन के बाद वर वधू के दाहिने कंधे पर से अपना दायां हाथ ले जाकर वधू के हृदय का स्पर्श करे। इस समय पठनीय 'मम व्रते' आदि मंत्र का अर्थ यह है—

हे वधू, तुम्हारा हृदय मेरे व्रतों (शास्त्रविहित व्रतानुष्ठान तथा अन्य सब कार्यों) में लगे।

यज्ञ इह पूषा निषीदन्त्विति ॥ [१०]

ततो ब्रह्मणान्वारब्धो—

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।

इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।

इति मन्त्रेण स्विष्टकृद्धोमं कुर्यात् । स्रुवावशिष्टाज्यं प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षिप्य पश्चात् तत्रस्थमाज्यं किञ्चिदवघ्राय हस्तौ प्रक्षाल्य आचम्य पूर्णपात्रं ब्रह्मणे दद्यात् ।

तत्र सङ्कल्पः—

ॐ तत्सदित्यादिना देशकालौ सङ्कीर्त्य अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा सवधूकोऽहं कृतैतद्विवाहहोमकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवत्यं सदक्षिणाकं अमुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणात्वेन तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति ब्रह्मणे दक्षिणासहितं पूर्णपात्रं दद्यात् ।

ॐ स्वस्तीति ब्रह्मणः प्रतिवचनम् ।

एवमेव आचार्याय अन्येभ्यः उपस्थितेभ्यः ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां दद्यात् । अत्रैव विभिन्नसंस्थाभ्यो दीनानाथेभ्यश्च यथाशक्ति दानं भूयसीदक्षिणां च दद्यात् ।

ततो ब्रह्मग्रन्थिं विमोचयेत् ।

ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।

इति मन्त्रेण पवित्रं गृहीत्वा प्रणीताजलेन वधूवरयोः सम्मृज्य सपत्नीकस्य कन्याप्रदातुश्च शिरांसि सम्मृज्य —

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ।

इत्यनेन मन्त्रेण प्रणीतामैशान्यां न्युब्जी कुर्यात् ।

तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल रहे । तुम मेरी बात को एक मन होकर मानो । वह प्रजापति प्रभु, तुम्हें सदा मेरी अनुवर्तिनी बनाये रखें । इसके बाद वधू की ओर देखते समय सुमंगली आदि वर के पठनीय मंत्र का अर्थ है—'हे उपस्थित महानुभावों, यह वधू शोभन मंगलस्वरूप है, इसे आप अपनी कल्याणकारिणी दृष्टि से देखें और इसे सौभाग्य का आशीर्वाद देने के पश्चात् ही अपने-अपने घर पधारें तथा ऐसे ही अन्य मांगलिक अवसर पर फिर भी हमारे घर पधारते रहा करें ।

इसके बाद वर या कोई सौभाग्यवती स्त्री वधू की मांग में सिंदूर लगाये । उस समय 'सुमङ्गली' इत्यादि मंत्र बोले । तत्पश्चात् सौभाग्यवती स्त्रियां वधू को सौभाग्य का आशीर्वाद देवें कि तुम्हें गौरी और सावित्री का सौभाग्य मिले । तदनन्तर शिष्टाचारानुसार वधू को वर

तत आस्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिधार्य हस्तेनैव जुहुयात् ।

मन्त्रो यथा—

ओ३म् देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ।
मनसस्पत इमं देवयज्ञ्ँ स्वाहा वातेधाः—स्वाहा ॥

इदं वाताय ।

ग्रामवचनं च कुर्युः ॥ [११]

विवाहश्मशानयोर्ग्रामं प्रविशतादितिवचनात् । [१२]

तस्मात्तयोर्ग्रामः प्रमाणमिति श्रुतेः । [१३]

(ग्रामेति स्वकुलवृद्धाः स्त्रियः कथ्यन्ते) ।

दक्षिणादानम्—

आचार्याय वरं ददाति । [१४]

गौर्ब्राह्मणस्य वरः । [१५]

के वाम भाग में बैठा दिया जाता[1] है ।

ध्रुवदर्शन

रात्रि हो जाने पर वधू को ध्रुव-दर्शन के लिए कहा जाये । ध्रुव का दर्शन करती हुई वधू कहे कि मैं ध्रुव का दर्शन कर रही हूं । इस समय पठनीय 'ध्रुवमसि' आदि मंत्र का अर्थ यह है—

'हे वधू, तुम ध्रुव अर्थात् मेरे घर में स्थिर रूप में रहने वाली हो । मैं तुम्हें इस ध्रुव तारे का दर्शन कराता हूं, इसलिए तुम भी सदा मेरे परिवार का पालन-पोषण करने में स्थिरचित्त बनी रहना । बृहस्पति (ब्रह्मा जी) या उपस्थित विद्वानों ने तुम्हारे पिता तथा बन्धु बान्धओं ने तुम्हें

---

१. दायें, बायें बैठने का यह विधान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । सामान्यतया तो पत्नी को अर्धाङ्गिनी कहा जाता है । किन्तु वह दांयां या बांयां कौन सा अंग है, इसके लिए अंग्रेजी में पत्नी को "बेटर हाफ" कहा जाता है । यहां फिर प्रश्न होता है कि दायां, बांयां अंग दोनों ही अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं और अधिकतर काम दायां हाथ ही करता है, दायां पवित्र व श्रेष्ठ है । देखने में तो यह बात ठीक लगती है, किन्तु वास्तव में श्रेष्ठ अंग बांया ही है, क्योंकि हृदय दायीं ओर नहीं बांयी ओर है और इस प्रकार वर-वधू को अपने बांयीं ओर बैठाकर यह बताता है कि उसने वधू को अपने हृदय में स्थान दे दिया है । यज्ञ पूजन आदि में तो वधू दाएं बैठती है, बाएं नहीं ।

ग्रामो राजन्यस्य । [१६]

अश्वो वैश्यस्य । [१७]

अधिरथ ᳪ शतं दुहितृमते । [१८]

पूर्णाहुतिः—

तत उत्थाय वरो वधूदक्षिणकरस्पृष्टघृतपुष्पफलपूर्णेन स्रुवेण पूर्णाहुतिं दद्यात् ।

मन्त्रो यथा—

(मूर्धानमिति भरद्वाजऋषिस्त्रिष्टुप् वैश्वानरो देवता पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः) ।

ॐ मूर्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविᳪसम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाःस्वाहा ॥

इदमग्नये वैश्वानराय ।

तत उपविश्य स्रुवेण भस्ममानीय दक्षिणानामिकागृहीतभस्मना त्र्यायुषीकरणं कुर्यात् ।

तद्यथा—

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः । (इति ललाटे)

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् । (इति ग्रीवायां)

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् । (इति दक्षिणस्कन्धे)

ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् । (इति हृदि)

एवमेव वधोर्ललाटादावपि कुर्यात् । 'तत्र तन्नो' इत्यस्य स्थाने 'तत्ते' इति पठ्येत् । एवमेव सपत्नीकः कन्याप्रदाता अन्ये च बन्धुबान्धवा अपि त्र्यायुषीकरणं कुर्युः ।

अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति । मन्त्रो यथा—

(ऋष्यादि ध्रुवमसीति प्रजापतिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दो ध्रुवोदेवता ध्रुवोदीक्षणे विनियोगः)।

ॐ ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतमिति ॥ [१९]

सा यदि न पश्येत् पश्यामित्येव ब्रूयात्[1] । [२०]

मुझे सौंप दिया है, इसलिए तुम मेरे साथ रहकर पुत्र-पौत्रादि से युक्त हो, और सौ वर्ष तक जीओ ।

---

१. आचार्य पारस्कर ने पहले सातवें सूत्र में सूर्य-दर्शन का विधान करने के पश्चात् सुमंगलीकरण आदि के पश्चात् १९वें सूत्र में कहा है कि सूर्यास्त हो जाने के पश्चात् वधू को ध्रुवदर्शन करवाए । इससे स्पष्ट है कि ऋषियों को दिवालग्न ही अभीष्ट है ।

त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीयाता ँ संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्र ँ षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः[1] । [२१]

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे अष्टमी कण्डिका)

तब उपस्थित सब स्त्री-पुरुष खड़े होकर वर-वधू पर 'राघवेन्द्रे' आदि श्लोकों के साथ पुष्प वर्षा करें ।

विवाह संस्कार के समय उपस्थित ब्रह्मा, पुरोहित, आचार्य तथा अन्य सब विद्वान मिलकर इन श्लोकों का उच्चारण एक साथ इस ढंग से करें कि सारा वातावरण आशीर्वाद के इन श्लोकों की मधुर ध्वनि से गुंजित हो उठे । इन श्लोकों का भाव यह है कि जैसे राम और सीता, रुक्मिणी और कृष्ण, अत्रि और अनसूया तथा गौतम और अहल्या आदि की जोड़ी बनी रही, वैसे ही तुम दोनों की जोड़ी भी सदा बनी रहे ।

इसके पश्चात् इसी प्रकार वर पर भी पुष्प वृष्टि कर उसे भी आशीर्वाद प्रदान किया जाय ।

आशीर्वचनपूर्वकं सर्वे सामाजिकाः स्त्रियः पुरुषाश्चोत्थाय पुष्पाणि संगृह्य एकैकं पुष्पमादाय आचार्यकर्तृकमन्त्राध्ययनं श्रुत्वा 'तथा त्वं भव भर्तरी'ति आचार्योक्तमन्त्रान्ते स्वयमप्युक्त्वा वध्वा उपरि प्रक्षिपेयुरिति । मन्त्राः यथा—

गायत्री च विधौ यद्वल्लक्ष्मीर्देवपतौ यथा ।
उमा यथा महेशाने तथा त्वं भव भर्तरि ॥१॥

सुवर्चला यथा चार्के यथा चन्द्रे तु राहिणी ।
मदने च रतिर्यद्वत्तथा त्वं भव भर्तरि ॥२॥

सुदक्षिणा दिलीपे तु राघवे तु विदर्भजा ।
अरुन्धतिर्वसिष्ठे च, तथा त्वं भव भर्तरि ॥३॥

राघवेन्द्रे यथा सीता विनता कश्यपे यथा ।
पावके च यथा स्वाहा तथा त्वं भव भर्तरि ॥४॥

---

१. केचिद्विवाहे पूर्णाहुतिं न कारयन्ति । विवाहे पूर्णाहुतेर्निषेधे गोभिलगृह्यसूत्रस्य भाष्ये गर्भाधान प्रकरणे—

विवाहे व्रतबन्धे च शालायां चौलकर्मणि ।
गर्भाधानादिसंस्कारे पूर्णाहुतिं न कारयेत् ॥

इत्युक्तमिति कथ्यते । अनेन स्पष्टं सिद्धयति यत् प्रथमं तावत् केनाप्यार्षवचनेन पूर्णाहुतेर्निषेधो न विहितः । गोभिलगृह्यसूत्रभाष्यकारवचनमपि सामवेदीयगोभिलगृह्यानुयायीनां कृते एव । पारस्करकात्यायनानुयायिभिः माध्यन्दिनैस्तु पूर्णाहुतिर्दातव्या एव । अथवा यथा शिष्टाचारः स्यात्तथैव कार्यम् ।

अनिरुद्धे यथैवोषा दमयन्ती नले यथा।
श्यामली चर्तुपर्णे च तथा त्वं भव भर्तरि ॥५॥

पुलोमजा च देवेन्द्रे वसुदेवे च देवकी।
लोपामुद्रा यथागस्त्ये तथा त्वं भव भर्तरि ॥६॥

छाया यथैव चादित्ये यथा चन्द्रे च रोहिणी।
रेवती बलदेवेऽपि तथा त्वं भव भर्तरि ॥७॥

शन्तनौ च यथा गंगा सुभद्रा च यथार्जुने।
धृतराष्ट्रे च गान्धारी तथा त्वं भव भर्तरि ॥८॥

अत्रौ यथानसूया च जमदग्नौ च रेणुका।
श्रीकृष्णे रुक्मणी यद्वत्तथा त्वं भव भर्तरि ॥९॥

धनपुत्रवती साध्वी सततं भर्तृवत्सला।
मनोज्ञा ज्ञानसहिता तिष्ठ त्वं शरदां शतं ॥१०॥

जीवत्सू वीरसू भद्रे भव सौख्यसमन्विता।
भाग्यारोग्यसुसम्पन्ना यज्ञपत्नी पतिव्रता ॥११॥

अतिथीनागतान्साधून्बालान्वृद्धान् गुरूंस्तथा।
पूजयन्त्या यथान्यायं शश्वद्गच्छन्तु ते समाः ॥१२॥

पृथिव्यां यानि रत्नानि गुणवन्ति गुणान्विते।
तान्याप्नुहि कल्याणि सुखिनी शरदां शतम् ॥१३॥

निम्न श्लोक पढ़कर वर पर पुष्प-वृष्टि की जाय और आशीर्वाद दिया जाय—

ब्रह्मा वेदपतिः शिव. पशुपतिः शक्रः सुराणां पतिः
प्राणो देहपतिः सदागतिरयं ज्योतिष्पतिश्चन्द्रमाः।
अम्भोधिः सरितांपतिर्जलपतिः सूर्यो ग्रहणां पतिः
सर्वे ते पतयः कुबेरसहिताः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥१॥

आयुर्द्रोणसुते श्रियो दशरथे शत्रुक्षयो राघवे
ऐश्वर्यं नहुषे गतिश्च पवने मानञ्च दुर्योधने।
शौर्यं शान्तनवे बलं हलधरे सत्यञ्च कुन्तीसुते
विज्ञानं विदुरे भवन्तु भवतः कोर्तिश्च नारायणे ॥२॥

सावित्र्या च यथा विधिर्गिरिजया संशोभते शङ्करः
श्रीविष्णुर्भगवान् श्रिया विलसितो दीप्त्या यथा भास्करः।
वैदेह्या सह राजते रघुपतिः कृष्णश्च राधान्वित-
स्तद्वद् हे वरराज ! सौख्यसहितो वध्वानया राजताम्[1] ॥३॥

---

१. स्वज्येष्ठसुपुत्रस्य रविशर्मणो विवाहावसरे ग्रन्थकृता रचितमिदं पद्यम।

पंडित के करने के कार्य

इस प्रकार पुष्पांजलि पूर्वक आशीर्वाद के पहले या बाद में वर 'ॐअग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इदमग्नये स्विष्टकृते इदम् न मम इस मंत्र से हवनसामग्री की आहुति दे और प्रोक्षणीपात्र में गिराये संश्रव (घी) की एक आध बूंद अपने ओठों पर लगाकर हाथ धो ले और आचमन कर ले। ब्रह्मा या पुरोहित (विवाह कराने वाले पंडित) को संकल्प कर दक्षिण और पूर्णपात्र दिये जाये। वे सब लोग 'स्वस्ति' कह कर आशीर्वाद देवें (और 'सुमित्रिया' आदि मंत्र के द्वारा प्रणीता-जल से कुशा के बने हुए पवित्रों द्वारा वर-वधू के सिर पर मार्जन करे—जल के छींटे देवें)। तदनन्तर 'दुर्मित्रिया' आदि मंत्र से प्रणीतापात्र को उल्टा देवे और सब कुशाओं को घी लगाकर 'देवा गातु' आदि मंत्र से उनकी आहुति दे दे। तब सब लोग खड़े हो जायें और वर नारियल, पुष्प आदि सहित घृतपूरित स्रुव, वधू के दाहिने हाथ से स्पर्श कराके पूर्णाहुति देवे। इस समय पंडित 'मूर्धानं दिवो' आदि मंत्र पढ़ें। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

क्योंकि अग्नि जठराग्नि के रूप में सबमें विद्यमान रहकर अन्न का पाचन करती है। यह अग्नि ऋत (यज्ञ) के लिए उत्पन्न है और सबका उपकार करना जानती है। अत्यन्त प्रकाशमान है, अतिथि (स्वागत-पात्र) है और यह अग्नि ही हमारे या देवताओं के मुख में चमचे के समान पदार्थों को पहुंचाती है।

इसके पश्चात् 'ॐ त्र्यायुष जमदग्नेः' आदि मंत्रों से स्रुवे से यज्ञ की भस्म लेकर वर और वधू अपने मस्तक, गले, बांये कंधे और हृदय पर यज्ञभस्म का तिलक लगावें।

त्र्यायुषम् आदि मन्त्रों का अर्थ यह है—

'त्र्यायुषम्'—जमदग्नि (नामक ऋषि या आहिताग्नि-नित्य यज्ञ करने वाले) कश्यप (ऋषि या आत्म-ज्ञानी) और देवों विद्वानों की बाल्य, यौवन, वृद्ध तीन प्रकार की या तिगुनी आयु होती है, वैसे ही हमारी भी तीनों या तिगुनी आयु हों।

यज्ञ-भस्म के तिलक लगा देने के बाद लोकाचारानुसार वर-वधू तथा सपत्नीक कन्या-प्रदाता की आरती आदि की जो अन्य प्रथाएं हों, वे भी सम्पन्न की जाएं।

इसके पश्चात् कांसे के कटोरों में भरे हुए पिघले हुए घी में वर-वधू अपना-अपना मुख देख लें। (ये छायापात्र प्रातःकाल अचारज या शनि का दाने लेने वाले डाकोत आदि को दे दिए जाए।)

वर-वधू का जनवासे में गमन—

यदि बरात कहीं दूसरे नगर से आई हो और जनवासे में वरपक्ष की ओर से गणेश एवं मातृका आदि की स्थापना की गई हो तथा पिता-पितामह आदि बड़े-बूढ़े लोग वहां उपस्थित हों तो विवाह-वेदी से उठने के पश्चात कन्यापक्ष की माया में स्थापित गणेशादि देवताओं को प्रणाम कर वर-वधू जनवासे में जाते हैं, तथा वहां स्थापित गणेशादि कुल देवताओं को प्रणाम कर बड़े-बूढ़ों को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लेते हैं, तथा वे लोग उन्हें यथाशक्ति उपहार अथवा

द्रव्यादि प्रदान करते हैं, यह शिष्टाचार है। उस समय कन्या-पक्ष की महिलायें बाजे-गाजे के साथ गीत गाती हुई उनके साथ जाती हैं। वर-वधू दोनों अपने सास-स्वसुर आदि को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार मुख्य विवाह-संस्कार के सानन्द सम्पन्न हो जाने के पश्चात् विवाह-संस्कार के उत्तरांगों का क्रम आरम्भ होता है। यूं तो विवाह के उत्तरांग भी अनेक हैं किन्तु उनमें से—(क) बेटी की विदाई, (ख) चतुर्थी कर्म और (ग) द्विरागमन ये तीन प्रमुख हैं।

इनका विधि-विधान इस प्रकार है—

बेटी की विदाई

विवाह-संस्कार तो सानन्द-सोल्लास सम्पन्न हो गया, किन्तु अब उपस्थित होता है, सबसे अधिक मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी क्षण बेटी की बिदाई। भारतीय जीवन को बेटी की बिदाई के क्षण की यह हृदयस्पर्शिता किस प्रकार प्रभावित करती है, इसका जैसा मुंहबोलता चित्र महा-कवि कालिदास ने अपनी अमर लेखिनी से प्रस्तुत किया है। उससे बेटी की बिदाई का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं सस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥

अर्थात् महर्षि कण्व कहते हैं कि आज बेटी शकुन्तला अपने ससुराल जा रही है, इस बात का ध्यान आते ही मेरा जी बैठा जा रहा है। आंसुओं को रोकने से गला इतना रुँध गया है कि मुंह से शब्द निकल नहीं पा रहे। यही सोचते-सोचते मेरी आंखें धुंधली-सी पड़ गईं। मुझ जैसे बनवासी को भी जब इतनी व्यथा हो रही है, तो अपनी बेटी की बिदाई के समय गृहस्थ लोगों की तो न जाने क्या दशा होती होगी।

इसी समय माता-पिता को अपनी बेटी को पराये हाथों सौंपते हुए कुछ उपयोगी सीख भी देनी पड़ती है। जैसे कि—बेटी, अब तू अपने घर जा रही है, वहां तू अपने परिवार की ननद, देवरानी, जेठानी आदि के साथ सखियों जैसा स्नेहपूर्ण व्यवहार करना। और हां सास श्वसुर आदि बड़े लोगों की सेवा सुश्रुषा भी मन लगाकर किया करना। जीवन में पति-पत्नी में छोटी-मोटी बातों को लेकर कभी कोई ऊंची-नीची बात हो जाया करती है, किन्तु तुम अपने पति से कभी रुष्ट या नाराज न होना। परिवार के सभी लोगों के साथ सदा स्नेह और सद्भावनापूर्ण व्यवहार करना। क्योंकि अपने ससुराल में ऐसा बर्ताव करने वाली स्त्रियां ही सच्ची गृहणी कहलाने की अधिकारिणी होती हैं—

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं समाने जने
भर्तविप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।।

अ. शा. ४।१२

महाकवि कालिदास ने बिदा होती हुई बेटी को कण्व के मुख से यह जो सीख दिलाई है, प्रत्येक पिता वही सीख अपनी बेटी को देना चाहेगा ।

पीला नारियल देना—

राजस्थान आदि प्रान्तों में बरात को विदा करते समय वर के पिता-पितामह आदि सबसे बड़े-बूढ़े व्यक्तियों को कन्या का पिता दक्षिणा के साथ हल्दी में रंगा पीला नारियल भेंट करता है । यह विवाह के सानन्द सम्पन्न हो जाने तथा उसकी समारोह पूर्वक विदाई का प्रतीक है । वर का पिता पीले नारियल को ग्रहण कर 'स्वस्ति' कहे ।

वरगृह में कार्य

इस प्रकार कन्यागृह से विदाई के पश्चात् बरात वर-वधू के साथ सानन्द वरगृह पर वापस आ जाती है । नववधू का वरगृह में दिन में प्रवेश नहीं किया जाता । अतः यदि बरात दिन में वापस लौटी हो तो वधू को रात्रि होने तक किसी दूसरे घर में ठहराया जाता है । रात्रि में ही उसे अपने घर में लिया जाता है । राजस्थान आदि में स्त्रियां उस रात्रि में गीत गाती हुई रात्रि जागरण भी करती हैं । वास्तव में यह चतुर्थी कर्म का ही एक लौकिक रूप है । इस चतुर्थी कर्म का शास्त्रीय विधि विधान आगे दिया जा रहा है ।

विवाहसंस्कारोत्तराङ्गभूतम्—

अथ चतुर्थीकर्म

(पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे एकादशी कण्डिका)

चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्माण-मुपवेश्योत्तरत उदपात्रं प्रतिष्ठाप्य स्थालीपाक ँ श्रपयित्वाऽऽज्यभागा-विष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । [१]

चतुर्थीकर्मविधिविधानम्

वरपिता विवाहचतुर्थदिवसे अपररात्रेररुणोदयतः प्राक् उद्वर्त्तनपूर्वकं वधूवर स्नापयित्वा संस्कृतस्य वरस्य दक्षिणतोऽलंकृतां वधूमुपवेश्य वध्वा उत्तरतो वरमुपवेशयेत् । अथ वरस्त्रिरा-चम्य अर्घं संस्थाप्य प्राणानायम्य गणेशपूजनं कुर्यात् । तत्र संकल्पः—

अद्येह अमुकशर्मा सवधूकोऽहं करिष्यमाणविवाहांगचतुर्थीकर्माख्यकर्मणि निर्विघ्नतया कार्यसिद्धये श्रीभगवतो गणेश्वरस्य पूजनं करिष्ये इति । यथाविधि गणेशं सम्पूज्य प्रधानसंकल्पं कुर्यात् । अद्येह अमुकोऽहं विवाहांगचतुर्थीकर्म करिष्ये ।

तत्रादौ समाचारात् पूर्वांगदिवसे स्थापितानां गणपतिसहितगौर्यादिषोडशमातृणां पूजनं करिष्ये इति संकल्पं कुर्यात् ।

गृहाभ्यन्तरतो होमवेदीं सम्पाद्य तत्र पंचभूसंस्कारपूर्वकं विवाहाग्निं संस्थाप्य वेद्या ईशाने कलशे ग्रहानावाह्य सम्पूज्य च विवाहसमये वृतस्य ब्रह्मणोऽसत्वेऽन्यस्य ब्रह्मणो वरणं कुर्यात् । अद्येह अमुकशर्माऽहं करिष्यमाणचतुर्थीकर्मांगहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणादि ब्रह्मकर्म कर्तुं ब्रह्मणः पूजनपूर्वकं वरणं करिष्ये । इति संकल्प्य 'ब्रह्मजज्ञानमिति' गन्धादिभिः सम्पूज्य वरण-सामग्रीं करे कृत्वा एभिर्गन्धाक्षतपुष्पपूगीफलद्रव्यैः करिष्यमाणचतुर्थीकर्मांगहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणादिब्रह्मकर्मकरणाय त्वामहं वृणे ।

चतुर्थी कर्म

चतुर्थी कर्म एक प्रकार से विवाह का उत्तरांग है। पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रथम काण्ड की पूरी ग्यारहवीं कण्डिका चतुर्थी कर्म के विधि-विधान का ही प्रतिपादन करती है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह विवाह लग्न के चौथे दिन सम्पन्न होता है। विवाहित वर-वधू के अपने घर लौट आने पर वहां (वर के घर में) भी और कुछ वैवाहिक विधि विधान सम्पन्न करना होता है, आजकल प्रायः इसका ध्यान ही नहीं रखा जाता।

पारस्कर का कथन है कि घर के अन्दर ही (इसके लिए बाहर मण्डप बनाने की आव-श्यकता नहीं) यथाविधि यज्ञवेदी बनाई जाए और यदि आचार्य एवं ब्रह्मा आदि का पहले से वरण न किया गया हो तो उनका वरण किया जाए।

ॐ वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् । यथाविहितं कर्मकुर्विति वरेणोक्ते ॐ करवाणीति ब्राह्मणो वदेत् । ततोऽग्नेर्दक्षिणतःशुद्धमासनं दत्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिण-क्रमेणानीय ॐ अत्र त्वं मे ब्रह्म भवेत्यभिधाय ॐ भवानीति ब्राह्मणेनोक्ते कल्पितासने उदङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेशयेत् । ततः पृथूदकपात्रमग्नेरुत्तरतः प्रतिष्ठाप्य प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा सम्यक्परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ।

ततः परिस्तरणं बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वाय-व्यान्तमग्नितः प्रणीतापर्यंतम् । अग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्र-करणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली सम्मार्जनार्थं कुशत्रयम् । उपयमनार्थं वेणीरूपं कुशत्रयं समिधस्तिस्रः स्रुवआज्यं षट्पञ्चाशदुत्तरवरमुष्टिशतद्वया-वच्छिन्नतण्डुलपूर्णपात्रम् । एतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयानि । स्थालीपाकाय तण्डुलानामासादनं चरुपात्रस्य च ।

ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा प्रादेशमितपवित्रकरणं, ततः सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं प्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनं प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणं, ततः प्रोक्षणीजलेन यथासादितवस्तुसेचनं च कृत्वा ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रे निधाय आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापस्ततोऽधिश्रयणम् । चरोरप्यधिश्रयणम् । ततो ज्वलत्तृणादिना हविर्वेष्टयित्वा प्रदक्षिणक्रमेण पर्यग्निकरणं, ततः स्रुवं प्रतप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरंतरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवसम्मार्जनं कृत्वा प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्रुवं दक्षिणतो निदध्यात् । तत आज्यस्याग्नेरवतारणं चरोश्च तत आज्ये प्रोक्षणीव-दुत्पवनम् । अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं, पुनः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनं च कृत्वा उपयमनकु-शान्वामहस्तेनादाय उत्तिष्ठन्नप्रजापतिं मनसा ध्यात्वाग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्र आदध्यात् । तत उपविश्य प्रोक्षणीजलेनाग्निं प्रदक्षिणं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रोक्षणीपात्रे धृत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुर्जुहुयात् । तत्राघारादारभ्याहुतिचतुष्टये तत्तादाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थिताज्यं प्रोक्षण्यां क्षिपेत् ।

पूर्व स्थापित भगवान गणपति एवं नवग्रहादि का यथोपलब्ध उपचारों से पूजन कर कुशकण्डिका की विधि के पश्चात् आधाराज्यभाग घृताहुतियां दी जाएं । उसकी विधि यह है—

वर-वधू यज्ञवेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ जाएं और आचार्य सर्वप्रथम कर्मकलश का विधिवत् पूजन करवाकर प्रणीता पात्र और पवित्र तथा प्रोक्षणीपात्र और पूर्णपात्र आदि सभी यज्ञीय पदार्थ यथास्थान स्थापित कर ले और चरुपात्र भी चरु (चावल) से भरकर रख ले । कुशकण्डिका की सम्पूर्ण विधि सम्पन्न कर तीन समिधाओं की आहुति दे **ॐ प्रजापतये स्वाहा**, इदं प्रजापतये न मम इति और ॐ **इन्द्राय स्वाहा**, इदं इन्द्राय न मम, ये दोनों आघारा-हुतियां देवें । तत्पश्चात् ॐ **अग्नये स्वाहा**, इदं अग्नये न मम, **ॐ सोमाय स्वाहा**, इदं सोमाय न मम, ये दो आज्याहुतियां देवें । इसके पश्चात् **ॐ अग्ने प्रायश्चित्ते**...इत्यादि पांच मन्त्रों से पांच घृताहुतिया दें । उसके पश्चात् चरु में घृत मिलाकर **ॐ प्रजापतये स्वाहा** (मौन आहुति

ॐ प्रजापतये स्वाहा ।

इदं प्रजापतये न मम । (इति मनसा)

ॐ इन्द्राय स्वाहा ।

इदमिन्द्राय न मम । इत्याघारौ ।

ॐ अग्नये स्वाहा ।

इदमग्नये न मम ।

ॐ सोमाय स्वाहा ।

इदं सोमाय न मम । इत्याज्यभागौ ।

तत आज्याहुतिपञ्चके स्थालीपाकाहुतौ च प्रजापत्याहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । ततो ब्रह्मणान्वारम्भं विना पञ्चाज्याहुतीर्जुहुयात् । घृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ।

ॐ अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥

इदमग्नये न मम ।

ॐ वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥२॥

इदं वायवे न मम ।

ॐ सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥३॥

इदं सूर्याय न मम ।

ॐ चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥४॥

इदं चन्द्राय न मम ।

ॐ गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥ [२]

दे) चरु और घृत दोनों से स्विष्टकृत आहुति देने के पश्चात् महाव्याहृति की तीन तथा सर्वप्रायश्चित्त संज्ञक पांच आहुतियां ॐ त्वन्नोअग्ने इत्यादि मन्त्र से घृत की आहुतियां देवें और

स्थलीपाकस्य जुहोति ॐ प्रजापतये स्वाहा [३] तत आज्यस्थालीपाकाभ्यां स्विष्टकृद्धोमः। ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम। तत आज्येन ॐ भूः स्वाहा। इदमग्नये न मम। ॐ भुवः स्वाहा। इदं वायवे न मम। ॐ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय न मम। एता महाव्याहृतयः।

ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा॥

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्ठौ। अवयक्ष्व नो वरुणꣳरराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि स्वाहा॥

इदमग्नये न मम।

ॐ अयाश्चाऽग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमयाअसि। अया नो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजꣳस्वाहा॥

इदमग्नये न मम।

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्र यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोतविष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्य मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳश्रथाय। अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥

इदं वरुणायादित्यायादितये न मम।

एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञका आहुतयः। ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा। इदं प्राजापत्यम्। ततः संस्रवप्राशनम्। तत आचम्य ॐ अस्यां रात्रौ कृतैतच्चतुर्थी-होमकर्म्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे। इति दक्षिणां दद्यात्। स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः। ॐ सुमित्रिया न ओषधयः सन्तु। इति पवित्राभ्यां शिरःसमृज्य। ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। इत्यैशान्यां दिशि प्रणीतां न्युब्जीकुर्यात्। तत अस्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृताक्तं हस्तेनैव जुहुयात्।

ॐ देवागातुविदो गातुं वित्वा गातु मित। मनसस्पत इमं देवयज्ञꣳ स्वाहावातेधा-स्वाहा।

इदं वाताय न मम।

तत आम्रपल्लवेन जलमानीय वरो मूर्ध्नि वधूमभिषिञ्चति।

ॐ या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूः । जारघ्नीं तत एनां करोमि । सा जीर्य त्वं मया सह असौ ।। [४]

अमुक सुन्दरि……।

अथैनां स्थालीपाकं प्राशयति । मन्त्रो यथा—

(प्राणैस्त इति प्रजापतिर्यजुश्छन्दो वधूर्देवता वध्वा स्थालोपाक-प्राशने विनियोगः ।)

ॐ प्राणैस्ते प्राणान्त्सन्दधाम्यस्थिभिरस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचमिति ।। [५]

तस्मादेवंविच्छ्रोत्रियस्य दारेण नोपहासमिच्छेदुत ह्येवंवित्परो भवति । [६]

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे एकादशी कण्डिकायां चतुर्थीकर्म ।)

वरवध्वोः कङ्कणमोचनम्—

ततः वधू वरौ परस्परं कंकणं मोचयतः । अस्मिन्नेवावसरे समाचारात् वधूवरौ दुग्धपात्रे-पातितया कपर्दिकया द्यूतक्रीडामपि कुरुतः । कंकणविमोचने मन्त्रो यथा—

कङ्कणं मोचयाम्यद्य रक्षोघ्नं रक्षणं मम ।
मयि रक्षां स्थिरां कृत्वा स्वस्थानं गच्छ कङ्कण ।।

ततो आचार्याय अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च भूयसीं दक्षिणां दत्त्वाग्निं विसृज्य त्र्यायुषरक्षा-बन्धनघृतच्छायादर्शनाभिषेकतिलकमन्त्रपाठाशीर्ग्रहणादीनि विधाय आचम्य 'यस्य स्मृत्येति'

उसके पश्चात् आचमन कर ब्रह्मा को पूर्णपात्र एवं आचार्य आदि को दक्षिणा देकर ब्रह्मग्रन्थि खोल दी जाए । 'ॐ सुमित्रिया न ओषधयः सन्तु' मन्त्र पढ़कर पवित्रों के द्वारा प्रणीता के जाल से वर-वधू के सिर पर अभिषेक करें। तत्पश्चात् —

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वय द्विष्मः ।

मन्त्र पढ़कर प्रणीतापात्र को ईशान कोण में औंधा कर देवें। फिर जिस क्रम से यज्ञवेदी के चारों ओर कुशाओं का परिस्स्तरण किया गया था उसी क्रम से उन्हें वापिस उठाकर उनमें घी लगाकर 'ॐ देवागातु' आदि मन्त्र पढ़ते हुए उनकी आहुति दे दें ।

तब वर 'ॐ या ते पतिघ्नी' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए आम के पत्ते से पूर्व स्थापित कलश में से जल लेकर वधू के मस्तक का अभिषेक करे । तत्पश्चात् आहुति देने से बचा हुआ स्थालीपाक (खीर, मोहनभोग आदि) को वर-वधू को 'ॐ प्राणैस्ते प्राणान् संदधामि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते

पठित्वा ॐ अच्युताय नम इति त्रिरुच्चार्य द्विजान्प्रणम्य सर्वं कर्म ईश्वरार्पणं कृत्वा सूर्यं प्रणमेत्। ततो यथासुखं विहरेत्।

ततो वरपिता पूर्वस्थापितानां मातृणां ग्रहादीनां चोत्तरांगत्वेन पूजां कृत्वा—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्।
यजमानहितार्थाय पुनरागमनाय च॥

इति देवान् विसर्जयेत्।

कङ्गन खोलना—

इसके पश्चात् वर-वधू एक दूसरे के हाथ पर बधे हुए कङ्गन खोलते हैं[1]। इसी समय एक परात में दूध की लस्सी भरकर उसमें कौड़ी डालकर उसे ढूंढ निकालने जैसे अनुराग-वर्धक खेल भी वर-वधू को स्त्रियां खिलवाती हैं। कङ्गना खोलते समय **'कङ्कणं मोचयामि'** इत्यादि मन्त्र पढ़ा जाता है। यदि आचार्य आदि को पहले दक्षिणा न दी गई हो तो अब उन्हें दक्षिणा दी जाए और **यान्तु देवगणा सर्वे** इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए देवगणों का विसर्जन कर दिया जाए। साथ ही वर-वधू के ग्रन्थिबन्धन को जो वधू के दुकूल से बन्धा हुआ था, खोल दिया जाए, किन्तु इससे पूर्व गठजोड़े के साथ ही मन्दिर में अपने इष्टदेव भगवान् कुलदेवी और सती माता आदि के दर्शन के लिए वर-वधू को ले जाया जाए। और यथोचित भेंट चढ़ाई जाए।

इति चतुर्थीकर्माद्युत्तराङ्गसहितम्
विवाहसंस्कारविधिविधानम्
समाप्तम।

१. परम्परा यह है कि वधू वर के कङ्गन की गांठ दोनों हाथों से खोलती है, जबकि वर को

चतुर्थ मयूख

प्राग्जन्म एवं शैशव-संस्कार

स जातकर्मण्यखिले तपस्विना
तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते ।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः
प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ ॥

—रघुवंश, ३।१८

खान से निकाली गई मणि जैसे शाण पर चढ़ाई जाने से दमक उठती है, वैसे ही तपस्वी पुरोहित (महर्षि वसिष्ठ) के द्वारा जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार कर दिए जाने पर महाराज दिलीप का वह पुत्र रघु भी अपने गुण-गणों से अत्यधिक उद्भासित हो उठा ।

गर्भाधान

विवेचन

उद्देश्य एवं महत्त्व

चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम प्रमुख है। उसमें प्रवेश विवाह के द्वारा होता है तथा विवाह का प्रमुख उद्देश्य सन्तति-परम्परा को आगे चलाये रखना है ताकि पितृगणों को यथाकाल पिण्डादि की प्राप्ति होती रहे, उन्हें कभी उसका अभाव न खटके। जैसा कि महाराज दिलीप महर्षि वसिष्ठ से कहते हैं :—

> **नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डछेदविदर्शिनः।**
> **न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः॥**

अर्थात् मेरे सन्तान नहीं है, इसलिए मेरे बाद मुझे कोई पिण्ड देने वाला भी नहीं रहेगा। इसी दुःख से पितृगण भी मेरे द्वारा दिये हुए श्राद्धान्न को जी भर कर नहीं खा पा रहे हैं (कि इसके बाद तो हमें पिण्डदान मिलेगा ही नहीं)।

स्पष्ट है कि सन्तानोत्पादन और उसके द्वारा वंश-परम्परा को बनाये रखना मानव का प्रमुख कर्त्तव्य है। यह सन्तानोत्पादन विवाह एवं उसके उत्तरांग चतुर्थी-कर्म के पश्चात् विधिवत् ऋतुकाल में 'गर्भाधान' के द्वारा ही हो सकता है। इसीलिए आचार्य पारस्कर ने चतुर्थी-कर्म के अन्तर्गत पति-पत्नी के ऋतु-काल में समागम का सङ्केत दे दिया है।

प्रायः पति-पत्नी के प्रथम समागम में ही गर्भ-स्थिति हो जाती है, तथापि यदि न हो पाये तो आचार्य पारस्कर ने इसके लिए प्रयोग या तन्त्र भी यहीं बता दिया है।

इस प्रकार गर्भाधान का उद्देश्य परम पुनीत है और इसका महत्त्व भी उतना ही है, क्योंकि सृष्टिचक्र इसी के सहारे चल रहा है। आचार्य ने यहां यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यह एक नितान्त वैयक्तिक प्रक्रिया है और इसीलिए इसका चतुर्थी कर्म में उल्लेख मात्र किया गया है।

अथ चतुर्थीकर्मान्तर्गतम्—

गर्भाधानम्

पूर्वमाचार्येण 'चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय' इत्यादिनोपक्रम्यार्थैनां स्थालीपाकं प्राशयति। 'प्राणैस्ते प्राणान्त्संदधामी' त्यादिभिः षड्भिः सूत्रैश्चतुर्थीकर्मविषयको यज्ञादेर्विधिरुक्तः। ततश्च गर्भाधानमुपक्रमते। तद्यथा—[1]

तामुदुह्य यथर्तुप्रवेशनम्। (७) यथाकामी वा काममाविजनितोः संभवामेति वचनात्। (८) अथास्यै दक्षिणांऽऽसमधिहृदयमालभते। मन्त्रो यथा—यत्ते सुसीमे

विधि-विधान

गर्भाधान संस्कार के सम्बन्ध में आचार्य पारस्कर का कथन है कि विवाह के चौथे दिन चतुर्थी-कर्म की विधि में निर्दिष्ट सम्पूर्ण विधि-विधान यथा-समय सम्पादित करने के पश्चात् पति यज्ञशिष्ट स्थालीपाक नववधू को अपने हाथ से खिलाये। उस समय 'ॐ प्राणैस्ते प्राणान्त्सन्दधामि' इत्यादि मन्त्र पढ़े। इस मन्त्र के द्वारा वह अपनी पत्नी से कहता है कि अब मैं अपने प्राणों को तुम्हारे प्राणों के साथ, अपनी अस्थियों को तुम्हारी अस्थियों के साथ, मांस को मांस के साथ और त्वचा को तुम्हारी त्वचा के साथ एकाकार करता हूं, अर्थात् अत्र पति और पत्नी के शरीर और आत्मा तथा ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां आदि सब मिलकर एक हो गये। शरीरों के अलग-अलग रहते हुए भी उनमें सम्पूर्ण ऐक्य स्थापित हो गया है।

इस प्रकार पति-पत्नी में एकात्मता स्थापित हो जाने के पश्चात् आचार्य कहते हैं कि ऋतुकाल में वे यथा समय समागम कर सकते हैं।

समागम के पश्चात् पति को चाहिए कि वह अपनी पत्नी के हृदय पर हाथ रखकर 'यत्ते सुसीमे हृदयम्' इत्यादि मन्त्र पढ़े। इस मन्त्र का आशय यह है कि प्रिये मैं तेरे हृदय की बात जानता हूं, अतः तेरे हृदय की भावनाओं का मैं सदा आदर किया करूँगा। इस प्रकार एक दूसरे के मन की रखते हुए भगवान् करे हम दोनों सौ वर्ष तक सब कुछ देखते और सुनते हुए पूर्ण स्वस्थ रहकर जीते रहें। (यद्यपि पहले चतुर्थीकर्म में उक्त तीनों सूत्र और उनका अर्थ दिया जा चुका है, तथापि गर्भाधान प्रसंग से सम्बद्ध होने के कारण यहां पुनः दिये गये हैं)।

---

१. प्रथम छह सूत्र चतुर्थीकर्म में दे दिये गये हैं।

हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मा तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतमिति ।। (९)

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे एकादशी कण्डिका)

ततश्च द्वादश्यां कण्डिकायां पक्षादिकर्मोक्तम् ।

त्रयोदश्यां कण्डिकायां च केवलमेकमेवैतत् सूत्रमस्ति :—

सा यदि गर्भं न दधीत[1] सिꣳह्याः श्वेतपुष्प्या उपोष्य पुष्येण मूलमुत्थाप्य चतुर्थेऽहनि स्नातायां नासिकायामासिञ्चति । मन्त्रो यथा—

(त्रायमाणा इत्यस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः बृहती छन्दः ओषधी आसेचने विनियोगः) ।

ॐ इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभमिति ।। [१]

(इति पारस्कर गृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे त्रयोदशी कण्डिका) ।

किन्तु किसी कारणवश गर्भ स्थापित न हो पाये तो आगे तेरहवीं कण्डिका में 'सिꣳह्याः श्वेत पुष्प्या' इत्यादि के द्वारा आचार्य ने एक प्रयोग (तन्त्र) बताया है । कहा गया है कि श्वेत-पुष्पा कण्टकारी (सफेद फूलों वाली कटहली, सामान्यतया कटहली के नीले फूल होते हैं, किंतु कहीं-कहीं सफेद फूलों वाली कटहली भी मिल जाया करती है, अतः ढूंढकर सफेद पुष्पों वाली कण्टकारी—लक्ष्मणा—ही लाएं ।) को पुष्य नक्षत्र में जड़ सहित उखाड़ कर ले आयें । पति को चाहिए कि उस दिन वह व्रत रखे कुछ खाये-पीये नहीं । ऋतुकाल में स्नान कर शुद्ध हो जाने के पश्चात् रात्रि के समय उस कण्टकारी को बारीक पीस कर दो तीन बार कपड़छान कर उसकी दो एकबूंदें अपनी पत्नी की दांयी नाक में टपका दें । उस समय 'ॐ इयमोषधी त्रायमाणा'[2] इत्यादि मन्त्र पढ़े ।

इस मन्त्र का अर्थ यह है—सर्वविध अथवा त्रिदोषों का शमन कर गुणों का आधान करने वाली (ओषति दहति दोषान्, धत्ते गुणानित्योषधी) और विधिपूर्वक प्रयोग करने वालों की रक्षा करने वाली दोष के वेगों को सहकर उनका नाश कर देने वाली और कारण रूप से विद्यमान अथवा मेधावर्धक सरस्वती रूप बहुफलदायिनी अर्थात् अपने प्रभाव से पुत्र-पौत्रादि दायिनी इस त्रायमाणा ओषधी के प्रभाव से जिस प्रकार मुझे अपने पिता के पुत्र होने का नाम प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार मेरा यह उत्पन्न होने वाला पुत्र भी मेरे नाम को प्राप्त करे ।

निश्चित ही यह गर्भाधान प्रक्रिया अपने नाम के अनुरूप नितान्त वैयक्तिक एवं एकाकी करणीय है ।

---

१. आयुर्वेद में भी श्वेतपुष्पा कण्टकारी या लक्ष्मणा में सन्तानोत्पादन के गुण बताये गये हैं ।

१. जैसा कि आचार्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि गर्भस्थिति न हो पाये तो इस तन्त्र का प्रयोग किया जाय । गर्भस्थिति का निश्चित ज्ञान दूसरे-तीसरे मास में ही हो पाता है । अतः यदि गर्भस्थिति हो गयी तब तो उस समय (दूसरे-तीसरे मास में) पुंसवन संस्कार होगा, अन्यथा इस तन्त्र का प्रयोग किया जाय ।

पुंसवन-संस्कार

विवेचन

उद्देश्य एवं महत्त्व

गर्भाधान हो जाने के पश्चात् 'पुंसवन' की प्रथम संस्कार के रूप में गणना की जा सकती है। स्मरण रहे कि ये प्राग्जन्म संस्कार दो उद्देश्यों से किये जाते हैं। एक ओर तो ये क्षेत्र (पत्नी जिसने अपने गर्भ में भ्रूण को धारण किया हुआ है) का संस्कार है, दूसरी ओर यह स्वयं गर्भस्थ जीव का भी संस्कार है। जैसा कि आचार्य ने लिखा है, यह संस्कार—

मासे द्वितीये तृतीये वा

अर्थात् पुंसवन संस्कार दूसरे या तीसरे मास में किया जाय, जब कि भ्रूण आकृति ग्रहण कर लेता है। निश्चित ही इसी समय से माता के अपने संस्कार भी उस पर पड़ने लगते हैं।

इस समय तक गर्भधारण के लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं, अतः परिवार वालों को गर्भिणी महिला के आहार-विहार एवं आचार-विचार आदि का अब विशेष ध्यान रखना होता है। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही 'पुंसवन संस्कार' का विधान किया गया है।

आजकल यद्यपि पुंसवन सस्कार का प्रचलन प्रायः उठ-सा गया है, किन्तु पंजाब में अब भी 'छोटी रीतां के नाम से इस संस्कार का लौकिक रूप प्रचलित है।

अथ पुंसवनसंस्कारः

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे चतुर्दशी कण्डिका

अथ पुंसवनम्। [१] पुरा स्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा। [२] यदहः पुꣳसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युज्यते तदहरुपवास्याप्लाव्याहते वाससी परिधाप्य न्यग्रोधावरोहाञ्छुङ्गांश्च निशायामुदपेषं पिष्ट्वा पूर्ववदासेचनꣳहिरण्यगर्भोऽद्भ्यः संभृत इत्येताभ्याम्। [३] कुशकण्टकꣳसोमाꣳशुं चैके [४] कूर्मपित्तं चोपस्थे कृत्वा स यदि कामयेत वीर्यवान्त्स्यादिति विकृत्यैनामभिमन्त्रयते सुपर्णोऽसीति प्राग्विष्णुक्रमेभ्यः। [५]

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे चतुर्दशी कण्डिका)।

पुंसवन संस्कार गर्भ के दूसरे या तीसरे मास में किसी भी दिन तब किया जाता है, जब गर्भ के लक्षण तो दिखाई देने लगें, किन्तु अभी गर्भस्थ भ्रूण हिलने-डुलने न लगा हो, (पुरा स्पन्दते) अर्थात् भ्रूण के फड़कने या हिलने-डुलने से पहले यह संस्कार किया जाय।

पुंसवन संस्कार का उद्देश्य इसके नाम में ही निहित है। जैसे कि पुमान् सूयते इति पुंसवनम्। इसका आशय यह है कि पुरुष या पौरुषयुक्त सन्तान उत्पन्न हो न कि अशक्त और कमजोर।

विधि-विधान

इस संस्कार का विधि-विधान संक्षिप्त और सरल है। पुष्य, पुनर्वसु, श्रवण और हस्त आदि कोई पुरुष नक्षत्र हो तथा रिक्ता तिथि या भद्रा आदि न हो, ऐसा सुमुहूर्त देखकर पति-पत्नी दोनों स्नानादि नित्य कृत्य से निवृत्त हो लें। गर्भिणी पत्नी दिन भर उपवास रखे। तब धूप-दीप आदि प्रज्वलित कर 'कर्मकलश' की स्थापना के पश्चात् पति पूर्वाभिमुख बैठकर 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा' इत्यादि मन्त्र से पवित्रीकरण कर आचमन और प्राणायाम कर ले। सङ्कल्प में देशकाल आदि का उच्चारण कर—

मम अस्या पत्न्या उत्पत्स्यमान गर्भस्य बैजिकगार्भिकदोष परिहारार्थम् आदि उपर्युक्त सङ्कल्प कर गणपति गौर्यादि षोडशमातृगण एवं नवग्रहादि का विधिवत् पूजन करे।

अथ प्रयोग:

यस्मिन्दिने पुन्नक्षत्र (पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरो, हस्त, मूल श्रवण) युक्तश्चन्द्रस्तस्मिन्नहनि गर्भिणीमुपवासं कारयित्वा तां स्नापयित्वाऽहते वाससी परिधाप्य पूर्वाभिमुखीमुपवेशयेत्तत आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य ममास्याः पत्न्या उत्पत्स्यमानगर्भस्य बैजिकगार्भिकदोषपरिहारार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुंसवनं कर्माहं करिष्ये। आदौ गणपत्यादिपूजनञ्च करिष्ये, इति सङ्कल्प्य पुण्याहवाचनान्ते प्रजापतिः प्रीयतामिति वदेत्।

वटप्ररोहान्वटशुङ्गाश्च कुशकंटकं सोमलताखण्डं तदभावे गुडूचीलतां ब्राह्मीं वा शिशिरेण जलेन पिष्ट्वा वस्त्रेण च रसं निस्सार्य गर्भिणीवधूदक्षिणनासापुटे 'तद्रसं भर्ता हिरण्यगर्भ अदभ्यः सम्भृत इति मन्त्रद्वयेन दद्यात्। मन्त्रौ यथा—

(हिरण्यगर्भः, अद्भ्यः सम्भृतः इत्यनयोः क्रमेण प्रजापत्युत्तरनारायणौ ऋषी त्रिष्टुप्छन्दः प्रजापतिपुरुषौ देवते नासिकायां रसासेके विनियोगः)

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

ॐ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥२॥

यदि कामयेत वीर्यं वान् पुत्रः स्यात्तदा पत्न्या उत्संगे उदकपूर्णं कूर्मपित्त (शरावं) निधाय भर्ताऽनामिकाग्रेण पत्न्या उदरं स्पृशन् सुपर्णोऽसीति मन्त्रेण

विशेष तन्त्र—

सायंकाल के समय वटवृक्ष की जटाओं और कोमल कोंपलों, कुशा की जड़ और सोम लता (यदि सोमलता न मिले तो गिलोय और ब्राह्मी को) बारीक पीस कर कपड़छान कर उसकी दो-एक बूँद गर्भिणी की दायीं नाक में टपका दे। उस समय 'ॐ हिरण्यगर्भः' तथा 'ॐ अद्भ्यः सम्भृतः' इत्यादि दोनों मन्त्र पढ़े जायँ। इनका अर्थ यह है—सर्वप्रथम अर्थात् इस सृष्टि के उत्पन्न होने से पहले भी हिरण्यगर्भ विराट् ब्रह्म विद्यमान था। सृष्ट्युत्पत्ति हो जाने पर भी वही एकमात्र इस समस्त विश्व का अधिपति और पालक के रूप में विद्यमान है। उसी ने इस पृथ्वी और द्युलोक को भी धारण किया हुआ है। वह कैसा है—

उसका स्वरूप क्या है यह कोई नहीं बता सकता। उस सर्वव्यापक तथा सुखस्वरूप परब्रह्म के लिए हम हवि समर्पित करते हैं और उसकी उपासना करते हैं और उसकी उपासना

---

१८ 'कूर्मपित्तम्' का अर्थ विश्वनाथ ने 'कूर्मपृष्ठनिर्मितं पात्रम्' करते हुए भी 'उदकपूर्णशरावमित्यन्ये' भी कह दिया है।

गर्भमभिमन्त्रयेत। मन्त्रो यथा—

(सुपर्णोऽसीति प्रजापतिर्ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः गरुत्मान् देवता गर्भाभिमन्त्रणे विनियोगः)।

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोम आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञा यज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत।

करते हैं। 'ॐ अद्भ्यः' आदि मन्त्र का अर्थ यह है—

वह सर्वव्यापक विष्णु प्रथम अर्थात् इस सृष्टि की उत्पत्ति के समय, पृथ्वी जल आदि पञ्च महाभूतों के रूप में व्यक्त हुआ था। उसकी सृष्ट्युत्पत्ति की कामना, (एकोऽहं बहु स्याम्, इस सङ्कल्प या सृष्टि-सिसृक्षा) से ही यह सृष्टि व्यक्त हुई है। यह त्वष्टा अर्थात् सूर्य भी उसी का व्यक्त स्वरूप धारण किये हुए हमारे समक्ष प्रकट होता है। उसी के द्वारा मनुष्य को देवत्व रूप प्राप्त होता है।

यदि यह कामना हो कि मेरा पुत्र अत्यन्त पराक्रमी हो तो पत्नी की गोद में एक जल-पूर्ण करवा रखकर अनामिका अंगुली से उसके पेट का स्पर्श करते हुए 'ॐ सुपर्णोऽसि' इत्यादि मन्त्र पढ़े। इस मन्त्र का अर्थ यह है—हे अग्निदेव, आप सुपर्ण (सदा ऊपर की ओर उठने वाले तथा गरुत्मान् (दूर-दूर तक पहुंचने वाले) हैं। इसीलिए आप आकाश की ओर ऊपर उठकर स्वर्ग तक पहुंच जायँ या पहुंच जाते हैं। आगे वेदों को उसके पक्ष, नेत्र और आत्मा आदि अंग बताया गया है।

यहाँ 'सुपर्णत्वादि' गरुड़ के धर्मों का अग्नि में आरोप कर वेदरूप से अग्नि की स्तुति की गयी है। अग्नि और उसके कार्य जल के अभेद होने से यहाँ उससे गर्भ के पोषण की कामना की गई है।

अथ सीमन्तोन्नयनसंस्कारः

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे पञ्चदशी कण्डिका

अथ सीमन्तोन्नयनम् [१] पुंसवनवत् [२] प्रथमे गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा [३] तिलमुद्गमिश्रꣳस्थालीपाकꣳश्रपयित्वा प्रजापतेर्हुत्वा पश्चादग्नेर्भद्रपीठ उपविष्टाया युग्मेन सटालुग्रप्सेनौदम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जुलैः स्त्रैण्या शलल्या वीरतरशङ्कुना पूर्णचात्रेण च सीमन्तमूर्ध्वं विनयति। भूर्भुवः स्वरिति [४] (ॐ भूर्विनयामि ॐ भुवर्विनयामि ॐ स्वर्विनयामि इति)। प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा। [५] (ततः मालारूपेण निबद्धमौदुम्बरपञ्चकं तस्या वेण्यां) त्रिवृतमाबध्नाति। (मन्त्रो यथा)—

(अयमूर्जावत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुश्छन्दः फलिनीदेवता वेणीबन्धने विनियोगः)।

ॐ अयमूर्जावतो वृक्षऽऊर्जीव फलिनी भव। [६]

अथाह वीणागाथिनौ राजानꣳसङ्गायेतां यो वाप्यन्यो वीरतर इति। [७] नियुक्तामप्येके गाथामुपोदाहरन्ति।

(सोममित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः गायत्री छन्दः सोमो देवता गाथागाने विनियोगः)।

ॐ सोम एव नो राजेमा मानुषिः प्रजा। अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यमसाविति ॥

यां नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति, यथा तुभ्यं यमुने इति। [८] ततो ब्राह्मणभोजनम्। [९]

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे पञ्चदशी कण्डिका)।

यह गर्भ-संस्कार है, इसका विवेचन पहले किया जा चुका है। पारस्कर का कथन है कि यह संस्कार पहली बार गर्भ धारण करने के समय ही किया जाना चाहिए। यह छठे या आठवें महीने में तब किया जाता है जबकि पुष्य आदि पुंनक्षत्र हो और गर्भिणी को ४थे, ८वें, १२वें चन्द्रमा न हो तथा सब प्रकार से शुभमुहूर्त और शुभ दिन हो। यह संस्कार भी घर के अन्दर छत के नीचे नहीं अपितु बाहर मण्डप बनाकर किया जाता है।

अथ प्रयोगः

सपत्नीको यजमानः शुचिः स्नातः आचम्य प्राणानायम्य कर्मकलशं संस्थाप्य दीपकं प्रज्वाल्य स्वस्तिवाचनं गणेशपूजनञ्च कृत्वा प्रधानसङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा—

अद्यामुकविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकशर्मावर्मागुप्तोदासोवाऽहं-अस्यां मम भार्यायां गर्भाभिवृद्धिपरिपन्थिपिशितप्रियाऽलक्ष्मीभूतराक्षसगणनिरसन-क्षम—सकलसौभाग्यनिदान—महालक्ष्मीसमावेशनद्वारा प्रतिगर्भं बीजगर्भ-समुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा च श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सीमन्तोन्नयनाख्यं कर्म करिष्ये।

तत्र निर्विघ्नता सिद्ध्यर्थं गौरीगणपतिपूजनं स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धादिकञ्च करिष्ये।

तत्र बहिःशालायां होमवेद्यां पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं मङ्गलनामाग्नेः स्थापनम्। ततो दक्षिणतो ब्रह्मासनादि—आज्यासादनान्तरं तिलतण्डुलमुद्गानामासादनम्। आज्यनिर्वापणानन्तरं चरुपात्रे तिलतण्डुलमुद्गमिश्रितचरोः श्रपणम्। पर्यग्नि-करणान्ते समिद्धतमेऽग्नौ घृतेन जुहुयात्। पूर्वमाघाराज्यभागौ। तत्राहुतिचतुष्टये प्रत्याहुत्यनन्तरं हुतशेषस्य घृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः।

अथ होमः

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।

(इति मनसा)

विधि-विधान

सर्वप्रथम स्नान, सन्ध्या आदि नित्यकृत्य से निवृत्त हो यजमान (गर्भिणी का पति) देशकाल आदि के उल्लेख के पश्चात् 'अद्यामुकोऽहं मम भार्याया सीमन्तोन्नयनाख्यसंस्कारे गण-पत्यादि पूजनं नान्दीश्राद्धादिकञ्च करिष्ये' आदि सङ्कल्प करे। स्वस्तिवाचन, गणपति, मातृका तथा नवग्रहादि पूजन, आचार्य-ब्रह्मा आदि का वरण, यज्ञवेदी का निर्माण एवं कुशकण्डिका आदि सर्वसंस्कारोपयोगी सभी पूर्वाङ्ग सम्पादित कर लिये जायँ। गणपत्यादि के पूजन के बाद मण्डप में बनायी गयी यज्ञवेदी पर पंचभूसंस्कारपूर्वक मङ्गल नामक अग्नि की प्रतिष्ठा करे। फिर खड़े होकर घृताक्त तीन समिधाओं की आहुति दे। तदनन्तर दाहिने घुटने को भूमि पर टेक कर ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ यजमान घृत की आघार तथा आज्यभाग नामक चार आहुतियां प्रज्वलित अग्नि में देने के पश्चात् 'ॐ प्रजापतये स्वाहा' तथा ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इन मन्त्रों से घृत चरु-स्थालीपाक की आहुति दे। तत्र महाव्याहृति आदि १४ आहुतियां देवे।

'सुमित्रिया' आदि मन्त्र से यजमानाभिषेक तथा 'दुर्मित्रिया' आदि से प्रणीता को उलटने के बाद परिस्तरण कुशाओं की आहुति देने के बाद पूर्णाहुति दे। ब्रह्मा और आचार्य को पूर्ण-

ॐ इन्द्रायस्वाहा । इदमिन्द्राय न मम (इत्याघारौ) ।
ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम ।
ॐ सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम ।
(इत्याज्यभागौ)
ततो ब्रह्मणाऽन्वारम्भे कृते चरुमभिधार्य स्रुवेण होमः—
ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ।
(इति मनसा)

ततोऽनन्वारब्धो जुहुयात् । तत्रैवाज्यस्थालीपाकाभ्यां स्विष्टकृद्धोमः

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।
ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये न मम । ॐ भुवः स्वाहा । इदं वायवे न मम ।
ॐ स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय न मम । (एता महाव्याहृतयः) ।

पात्र व दक्षिणा आदि देकर 'यान्तु देवगणाः सर्वे' इत्यादि से देव-विसर्जन कर 'त्र्यायुषं जमदग्ने' इत्यादि मन्त्रों से यज्ञभस्म का तिलक किया जाय । तब वधू के मांग निकालने तथा गाथा-गान आदि के कार्य इस प्रकार सम्पन्न किए जायँ—

मांग निकालना

इसके पश्चात् गूलर के दो कच्चे फलों का एक वृन्त या गुच्छा, सेही का कांटा, तीन कुशाग्रों का गुच्छा और चर्खे का सूतभरा तकुवा और पीपल या शिरीष की लकड़ी की बनी पतली-सी खूँटी को एक लड़ी में बांध लिया जाय ।

तब गर्भिणी पत्नी को एकान्त मे ले जाके चौकी पर बिछे कोमल आसन पर बैठा कर पति (या कोई सधवा स्त्री) '**ॐ** भूर्भुवः स्वः' मन्त्र पढ़ते हुए कंघी के साथ उक्त पांचों वस्तुओं को स्पर्श कराते हुए उसकी नीचे (ललाट) से ऊपर की ओर) मांग निकाल[1] दे । इसके बाद—

'**ॐ अयमूर्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनी भव,** मन्त्र पढ़ कर गूलर की शाखा और कुशा

---

१. प्राचीन युग में स्त्री पुरुष में कोई भेद-भाव नहीं समझा जाता था । इसीलिए आचार्य पारस्कर ने सभामण्डप में सबके समक्ष पति के द्वारा पत्नी की मांग निकालने का विधान किया है । किन्तु वर्तमान सन्दर्भ में सास जेठानी आदि घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाएं मांग निकालने की यह विधि सम्पन्न करती हैं । वर्तमान में सीमन्तोन्नयन संस्कार का प्रचलन नागर, औदीच्य ब्राह्मण समाज में 'अगरणी' के नाम से है तथा पंजाब में 'रीता चढ़ना' भी सीमन्तोन्नयन ही है ।

ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवया सिसीष्ठाः। यजिष्ठो वन्हितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाᳫंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमोभवोती नेदिष्टो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणᳫंरराणो वीहि मृडीकᳫंसुहवो न एधि स्वाहा ॥

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम '।

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्य नभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाअसि। अया नो वहास्यया नो धेहि भेषजᳫंस्वाहा। इदमग्नये अयसे न मम ॥

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳫंश्रथाय। अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणाय न मम ॥

(इति सर्वप्रायश्चित्तम्)

ततो यजमानयजमानपत्नीशिरसोरुपरि—

ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु।

इति मन्त्रेण प्रणीताजलेनाभिषिञ्च्य 'ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः इति मन्त्रेण प्रणीतामीशान्यां न्युब्जी कुर्यात्। ततः परिस्तरक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य 'ॐ देवागातुविदो' इत्यादि मन्त्रेण जुहुयात्।

आदि पांचों वस्तुओं की लड़ी को गर्भिणी की वेणी में बांध दिया जाय। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—

जैसे यह गूलर का उर्जस्वी वृक्ष खूब फलता है, वैसे ही प्रभु-कृपा से हे सुभगे, तुम भी खब फलो-फलो।

तत् उपर्युक्तेनाधो हिन्द्यां व्याख्यातेन च पारस्करप्रदर्शितविधानेन सीमन्तोन्नयनस्य सर्वं विधानजातं सम्यक् सम्पादनीयम् ।

'ॐ दिवोमूर्धानम्' इत्यनेन मन्त्रेणोत्थाय पूर्णाहुतिं दद्यात्। ब्रह्मणे सदक्षिणं पूर्णपात्रमाचार्याय च दक्षिणां दद्यात्। उपस्थितांश्च ब्राह्मणान् गन्धादिभिः सम्पूज्य—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् ।
इष्टकामस्य सिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥

इति पठित्वा देवगणं विसर्जयेत् ।

ततः स्रुवमूलेन होमभस्मादाय त्र्यायुषीकरणं कुर्यात्—

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः । (इति ललाटे) । कश्यपस्य त्र्यायुषम् । (इति ग्रीवायाम्) । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् । (इति दक्षिणबाहुमूले) । ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् (इति हृदि) ।

अनेनैव क्रमेण भार्याया अपि त्र्यायुषं कार्यम् । ततो ब्राह्मणभोजनम् ।

वीणा वादन और गायन

तत्पश्चात् वहां पहले से उपस्थित दो वीणा वादक गायकों से कहे कि आप लोग अपने समय के श्रेष्ठ राजा का अथवा किसी अन्य वीर का स्तुतिगान करें, और यदि किसी श्रेष्ठ वीर का स्मरण न आता हो तो—

'सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः ।'

इत्यादि मन्त्र का गान कीजिये ।

यहां 'असौ" के स्थान पर निकटवर्ती नदी का नाम ले । इसके पश्चात् उपस्थित विद्वानों का गन्धताम्बूल दक्षिणा आदि से सम्मान कर देवगण का विसर्जन कर दे । फिर ब्राह्मण भोजन करे ।

जातकर्म संस्कार

कर्त्तव्य विधियां

क. पूर्वाङ्ग—१. प्रसूति-गृह एवं प्रसव के लिए आवश्यक उपयुक्त सभी वस्तुओं एवं सामग्री आदि को सुसज्जित रखना।

२. प्रसव-वेदना होने पर 'ॐ एजतु' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए वधू पर जल के छींटे देना तथा 'ॐ अवेतु पृष्णि' इत्यादि मन्त्र पढ़ना।

ख. मुख्य कर्त्तव्य—१. शिशु के उत्पन्न हो जाने पर स्नान तथा गणपत्यादि पूजन।

२. नवजात शिशु को सोने की सलाई से शहद और घी चटाना।

३. शिशु के कान में आयुष्यकरण-मन्त्र सुनाना।

४. शिशु को स्तनपान करवाना।

५. जलपूर्ण कलश रखना, दीपक जलाना। (वह दीपक दस दिन तक जलता रहे)।

६. सरसों और चावल की धूनी प्रातः सायं (दस दिन तक) देना।

७. प्रतिदिन बालक के हृदय का स्पर्श करना।

ग. उत्तराङ्ग—१. सूतक-निवृत्ति वाले (ग्यारहवे) दिन प्रसूति गृह-का पञ्चगव्य एवं गङ्गाजल से प्रक्षालन तथा सूतिका व शिशु को पञ्चगव्य व गङ्गाजल पिलाना एवं ब्राह्मण भोजन आदि।

विशेष—निश्चित ही इनमें से पूर्वाङ्ग की विधि और मुख्य कर्त्तव्य के क्रम ४, ५, ६ उन्हीं दिनों सम्पन्न करने होंगे। शेष विधियां यदि समय पर सम्पन्न न हो सके तो सूतक-निवृत्ति के पश्चात् नामकरण वाले दिन सम्पन्न कर दी जायँ।

विवेचन—

गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन इन तीन प्राग्जन्म संस्कारों के पश्चात् जब बच्चे का जन्म हो जाता है तो शैशव के संस्कारों का क्रम आरम्भ होता है। इनमें से सर्वप्रथम जात-कर्म तो बच्चे के जन्म लेते ही तत्काल सम्पन्न किया जाता है। जातकर्म संस्कार का विधि-विधान पारस्कर ने अपने गृह्यसूत्र के प्रथम काण्ड की सोलहवी कण्डिका के २५ सूत्रों में किया है। इस पूरी कण्डिका में बच्चे के उत्पन्न होते ही नवजात शिशु तथा प्रसूतिका या जच्चा और

बच्चा दोनों के बारे में जिन विधि-विधानों का वर्णन किया गया है, उनमें से अनेक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की दृष्टि से हितावह हैं, तथा कुछ का सम्बन्ध बालक के आध्यात्मिक विकास से है।

कांसे की थाली बजाना—

परम्परा यह है कि बच्चे के उत्पन्न होते ही उसके कानों के पास कांसे की थाली बजायी जाती है। इसके दो उद्देश्य हैं। प्रथम तो यह कि पांचों ज्ञानेन्द्रियों में से शिशु की श्रवण शक्ति ही सर्वप्रथम सचेष्ट एवं उद्‌बुद्ध होती है। और दूसरे यह कि शब्द को सुनकर ही वालक सबसे अधिक चौंकता है। वह किसी प्रकार के शब्द को सुनकर चौंके नहीं और उसकी श्रवण-शक्ति भली-भांति उद्‌बुद्ध हो जाये, इसीलिए कांसे की थाली बजायी जाती है। चरक में बच्चे के कानों के पास कांसे की थाली के स्थान पर दो पत्थर बजाने का विधान है।

"अश्मनो: संघट्टनं कर्णमूले।"

यह तो हुआ शिशु के उत्पन्न हो जाने के पश्चात् किया जाने वाला प्रारम्भिक विधि-विधान।

किन्तु जातकर्म संस्कार का आरम्भ तो प्रसव के समय के उपस्थित होते ही आरम्भ हो जाता है और "एजतु दशमास्यो गर्भो" इत्यादि दो मन्त्रों से 'शोष्यन्ती' अथवा प्रसवशूलवती के शरीर पर जल से मार्जन किया जाता है। इन मन्त्रों में यह कामना की गई है कि जरायु जेर या ओवरी के साथ शिशु गर्भ से सकुशल बाहर आ जाय और उसमें किसी प्रकार का कोई विघ्न उपस्थित न हो तथा गर्भ का कोई अंश बाहर न आये।

इस प्रकार यहां सर्वप्रथम प्रजनन कार्य में कुशल उपचारिका या धात्री (Midwife) की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। प्रसव के समय कुशल दाई की उपस्थिति कितनी आवश्यक है, यह इन मन्त्रों में स्पष्ट बता दिया गया है।

मेधाजनन संस्कार—

शिशु के उत्पन्न होते ही उसे तत्काल नहला-धुलाकर तथा कोमल तौलिये आदि से पोंछकर पहले से तैयार रखे गए सुन्दर-स्वच्छ वस्त्र पहना दिये जाते हैं और तब सबसे पहले जो संस्कार नवजात शिशु का किया जाता है, ऋषियों ने उसका नाम रखा है 'मेधाजनन संस्कार'। हमारे ऋषियों को सबसे पहली और प्रमुख चिन्ता यह रहती थी कि बालक मेधावी हो। मेधावी बालक ही सुसंस्कार-सम्पन्न बन जायगा। इसके लिए विधान यह किया गया है कि "ओ३म् भू: ओ३म् भुव: ओ३म् स्व:" इन तीन महाव्याहृतियों के उच्चारण के साथ बालक को सोने की सलाई या सोने के वर्क के साथ अनामिका अंगुलि से शहद और घी चटाया जाता है। शहद और घी बालक के गले में फंसे हुए कफ और पित्तादि का निराकरण तो करते ही हैं, यह आयुष्य के भी प्रतीक हैं। इसके पश्चात् वालक के कान में कहा जाता है कि अग्नि, सोम, ब्रह्मा-तथा दूसरे देवगण और ऋषि, पितर, यज्ञ एवं समुद्र, ये सब आयुष्मान् लम्बी आयु वाले दीर्घ-जीवी हैं। हे बालक ! तुम भी ऐसी ही लम्बी आयु वाला बनना। साथ ही जमदग्नि व कश्यप आदि ऋषियों के जैसी बाल्य, यौवन और वार्धक्य, ये तीनों परिपूर्ण अवस्थाएं तुझे प्राप्त हों।

इनके पश्चात् जीवन-निर्माणकारी कुछ ऋचाओं का पाठ किया जाता है तथा जन्मभूमि की महिमा एवं स्वयं बालक की माता का गौरवगान किया जाता है। यह कामना की जाती है कि बालक वज्र के समान दृढ़ अंगों वाला हो। इसी बीच शिशु स्तनपान के योग्य हो जाता है और जच्चा में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह स्वयं शिशु को अपनी छाती से लगाकर दूध पिला सके इसलिए विधान किया गया है कि पहली बार धात्री जच्चा-बच्चा को साथ लिटाकर दूध पिलाने की व्यवस्था करे।

'दिवस्परि' आदि ऋचाओं के पाठ के पश्चात् सूतिकागृह की सुरक्षा और स्वच्छता की दृष्टि से कुछ विधान किए गए हैं। पहली बात तो यह बताई गई है कि सूतिका के सरहाने के पास एक जलपात्र रखा जाता है, जो सूतक निकलने (दस दिन) तक निरन्तर वहां भरा रहता है। साथ ही सूतिकागृह के द्वार के बाहर हवनकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित की जाती है। यह अग्नि भी दस दिन तक निरन्तर प्रज्वलित रहती है और इसमें प्रातः सायं सरसों तथा चावल की दो-दो आहुतियाँ प्रतिदिन दी जाती हैं। इसके साथ ही यदि शिशु कुछ सुस्त दिखाई दे तो उसके लिए तन्त्र-प्रयोग का विधान भी किया गया है।

अथ जातकर्मसंस्कारः

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे षोडषी कण्डिका

तत्र तावत्सुखप्रसवार्थं सोष्यन्तीकर्म। सोष्यन्तीं (प्रसवशूलवतीं प्रसवोन्मुखी स्त्रियम्) अद्भिरभ्युक्षति।

(एजत्विति प्रजापतिऋर्षि महापंक्तिश्छन्द गर्भोदेवता अभ्युक्षणे विनियोगः)।

ॐ एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा

विधि-विधान

गर्भवती स्त्री को जब प्रसव-वेदना होने लगे तो "एजतु दशमास्यो गर्भो" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उसके शरीर पर मार्जन किया जाय।

इस मन्त्र का अर्थ यह है :—

जैसे यह पवन अनायास ही प्रवाहित हो रहा है और जैसे समुद्र में लहरें अनायास ही आगे चलती रहती हैं, वैसे ही दसवें मास में यह गर्भ जरायु के साथ आगे या नीचे की ओर खिसककर अनायास बाहर आ जाए।

इसके पश्चात् 'अवैतु' आदि मन्त्र पढ़ा जाय। इसका अर्थ यह है—

तुम्हारी यह पीली जरायु गर्भ से बाहर आकर शिशु से अलग हो जाय ताकि उसे कुत्तों को खाने के लिए दे दिया जाय (या धरती में गाड़ दिया जाय)। और शिशु के गर्भ से बाहर आने में किसी प्रकार की कोई रुकावट या बाधा न हो।

शिशु के उत्पन्न हो जाने पर उसका पिता अपने कुलदेवता एवं गुरुजनों को प्रणाम कर नदी के जल में अथवा घर ही में स्नान कर ले (यदि गण्डमूल नक्षत्र अथवा व्यतिपात आदि हो तो पुत्र का मुख देखे बिना ही स्नान कर लिया जाय)।

तब शुद्ध पवित्र वस्त्र पहनकर तिलक आदि लगाकर पवित्र आसन पर बैठ कर आचमन और प्राणायाम आदि के पश्चात् जातकर्म संस्कार के लिए उपर्युक्त सङ्कल्प करे। गणपत्यादि पूजन और स्वस्तिवाचन आदि भी यथाविधि कर लिया जाय।

तदनन्तर नवजात शिशु को कवोष्ण जल से स्नान करवा के उसके अङ्गों को भलीभांति पोंछ कर वस्त्र में लपेट दिया जाय अथवा वस्त्र पहना दिये जायँ।

समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ [१]

इति मन्त्रेण । ततो वधूसमीपे पतिर्जपति—

(अवेत्विति प्रजापतिः ऋषिः बृहतीछन्दः अग्निर्देवता अवपाते विनियोगः)।

ॐ अवैतु पृश्निशेवलꣳशुने जराय्वत्तवे । नैव माꣳसेन पीवरी । न कस्मिश्चनायतनमव जरायु पद्यताम् ॥ [२]

पुत्रे जाते पिता कुलदेवतां वृद्धांश्च प्रणम्य पुत्रमुखं दृष्ट्वा नद्यादावनुष्ण-वारिणोदङ्मुखः स्नायात् । मूलज्येष्ठाव्यतिपातादावुत्पन्ने मुखमदृष्ट्वैव स्नायात् । नद्यादौ स्नानासंभवे सुवर्णयुतजलेन स्नानं कुर्यात् ।

स्नात्वा शुभे अहते वाससी परिधाय धृतकुङ्कुमतिलकः शुभासन उप-वश्याचम्य प्राणानायम्य देशकालसंकीर्तनान्ते 'ममास्यात्मजस्य गर्भवासजनित-सकलदोषनिवृत्तिपुरस्सरमायुर्मेधाभिवृद्धये बीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणद्वारा श्रीपर-मेश्वरप्रीत्यर्थं जातकर्म करिष्ये । तत्र निर्विघ्नार्थं गणपतिपूजनं स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनमायुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं च हेम्नैव करिष्ये इति सङ्कल्प्य स्वस्ति-वाचनादिकं गणपत्यादीनाञ्च पूजनं कुर्यात् । तदनन्तरम्—

जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्याम् । मेधाजननायुष्ये करोति । [३]

अनामिकया स्वर्णान्तर्हितया मधुघृते एकीकृते घृतमेव वा कुमारं वक्ष्यमाणमन्त्रैः प्राशयति—

ॐ भूस्त्वयि दधामि । ॐ भुवस्त्वयि दधामि । ॐ स्वस्त्वयि दधामि । ॐ भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि ॥ [४]

अथायुष्यं करोति । [५]

इसके पश्चात् सोने का वर्क लगी हुई अनामिका (छिगुनी के साथ वाली) अंगुली से नवजात शिशु को घी और शहद चटाया जाय । उस समय 'ॐ भूस्त्वयि दधामि' आदि मन्त्र पढ़े जायँ । इनका आशय यह है कि—हे शिशु तुम्हारे मेधाजनन के लिए इस शहद और घृत के रूप में 'भूः भुवः स्वः' ये तीनों लोक तीनों वेद और तीनों प्राण शक्तियों का तुममें आधान किया जा रहा है ।'

---

१. यद्यपि इसका विधान नालच्छेदन से पूर्व किया जाता है, किन्तु यह व्यवहार्य और सम्भव नहीं है । क्योंकि नालच्छेदन तो शिशु के जन्म के साथ ही तत्काल कर देना होता है । अतः शिशु को घृत-मधु आदि चटाने की विधियां नालच्छेदन एवं शिशु के स्नान आदि के पश्चात् ही की जा सकती हैं । इस समय सूतिकागार में पिता आदि

कुमारस्य दक्षिणकर्णे नाभ्यां वा त्रिर्जपति ।

(अग्निरायुष्मानित्यादीनां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः लिङ्गोक्ता देवता आयुष्करणे विनियोगः) ।

ॐ अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषायुष्मन्तं करोमि ॥ (१)

ॐ सोमआयुष्मान्त्स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ (२)

ॐ देवाआयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ (३)

ॐ ऋषयआयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ (४)

ॐ पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि । (५)

ॐ यज्ञआयुष्मान्त्सदक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ (६)

आयुष्यकरण

तदनन्तर निम्न प्रकार से 'आयुष्यकरण' की विधि सम्पन्न की जाय—नवजात शिशु के दाहिने कान या नाभि के समीप मुख लेजाकर 'ॐ अग्निरायुष्मान्' इत्यादि सात मन्त्र पढ़े जायँ । और 'त्र्यायुषं जमदग्ने' इत्यादि मन्त्र तीन बार पढ़ा जाय । तदनन्तर शिशु की पूर्णायु की कामना से "ॐ दिवसस्परि" इत्यादि ग्यारह मन्त्र पढ़े जायँ ।

किसी पुरुष का प्रवेश तो हो ही नहीं सकता, अतः यह कार्य महिलाओं के द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है ।

सम्भवतः गृह्यसूत्र-निर्माणकाल तक स्त्रियां धातृकर्म या प्रजनन कार्य में दक्ष न हो पायी हों, और पुरुष 'प्रसव' कार्य करवाते हों । तभी आचार्य ने मेधाजनन आदि कार्य पुरुष (पिता) के द्वारा सम्पन्न किये जाने का विधान किया है, किन्तु आजकल तो किसी पुरुष को प्रसव के समय सूतिकागृह में फटकने भी नहीं दिया जाता । अतः स्वभावतः मेधाजननादि जातकर्म संस्कार सम्बन्धी सभी विधियां महिलाओं के द्वारा हीं सम्पन्न की जा सकती है, न कि किसी पुरुष के हाथों ।

ॐ समुद्रआयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ।। (७)

(त्र्यायुषमितिनारायणऋषिरुष्णिक्छन्दः शिवो देवतायुष्यकरणे विनियोगः) ।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ।। (७)

इति त्रिर्जपेत् ।

स यदि कामयेत सर्वमायुरीयादितिवात्सप्रेणैनमभिमृशेत् ।(८)
दिवस्परीत्यस्यानुवाकस्योत्तमामृचं परिशिनिष्टि । (९)

(दिवस्परीतिमन्त्राणां वात्सप्रीभालन्दन ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता सुताभिस्पर्शने विनियोगः) ।

ॐ दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृम्णा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ।।१।।

ॐ विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम बिभ्रता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुतं यत आजगन्थ ।।२।।

ॐ समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षाईधे दिवो अग्नऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाँसमपामुपस्थे महिषा अवर्द्धन् ।।३।।

ॐ अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ।।४।।

ॐ श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसामिधानः ।।५।।

ॐ विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽऽआरोदसीऽअपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत्परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ।।६।।

तदनन्तर बच्चे के चारों ओर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर इन चार दिशाओं में चार ब्राह्मणों को और पांचवें ब्राह्मण को बीच में बैठा के (बीच वाला ब्राह्मण ऊपर को देखता हो तब) पिता कहे 'इममनुप्राणित' तदनन्तर पूर्व वाला ब्राह्मण कहे 'प्राण' दक्षिणा वाला कहे 'व्यान' पश्चिम वाला कहे 'अपान उत्तर वाला कहे 'उदान' और बीच वाला पांचवां ऊपर को देखता

ॐ उशिक्पावकोऽअरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि। इयर्त्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७॥

ॐ दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥८॥

ॐ यस्तेअद्य कृणवद्भद्रशोचे पूषन्देव घृतमंतमग्ने। प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९॥

ॐ आ तं भज सौश्रवसेष्वग्नउक्थउक्थ आ भज शस्यमाने। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०॥

ॐ त्वामग्ने यजमाना अनुद्यून् विश्वावसु दधिरे वार्याणि। त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥११॥

प्रतिदिशं पञ्चब्राह्मणानवस्थाप्य ब्रूयादिममनुप्राणितेति ॥१२॥

पूर्वो ब्रूयात् प्राणेति ॥१३॥

व्यानेति दक्षिणः ॥१४॥

अपानेत्यपरः ॥१५॥

उदानेत्युत्तरः ॥१६॥

समानेति पञ्चम उपरिष्टादवेक्षमाणो ब्रूयात् ॥१७॥

स्वयं वा कुर्यादनुपरिक्रामनविद्यमानेषु ॥१८॥

हुआ कहे 'समान' यदि उस समय पांच ब्राह्मण न मिलें तो पिता उसके पास चारों ओर की दिशाओं में बैठकर 'प्राण' आदि शब्द बोल लेवे। अब इसके पश्चात् जहां बच्चे का जन्म हुआ हो उस स्थान को देखता हुआ 'ओं वेद ते भूमि०' मन्त्र को पढ़े। इसके पश्चात् 'अश्मा भव०' मन्त्र से बच्चे का स्पर्श करे फिर बच्चे की माता की ओर देखता हुआ 'इडासि०' इत्यादि मन्त्र पढ़े।

इसके पश्चात् 'ॐ इम ७ स्तनमूर्जस्वन्तं' आदि मन्त्र पढ़ते हुए माता के दायें स्तन को भली भांति धोकर नवजात शिशु के मुख के साथ लगा दे ताकि वह उससे दूध पीने लगे। फिर 'ॐ यस्तेस्तनः शशयो' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए माता के बायें स्तन को धोकर शिशु को उससे दूध पीने के लिए उसका मुख स्तन के साथ लगा दे।

स यस्मिन्देशे जातो भवति तमभिमन्त्रयते। मन्त्रो यथा—

(वेद ते इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता अभिमर्शने विनियोगः)।

ॐ वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतम्-इति ॥१९॥

अथैनमभिमृशति। मन्त्रो यथा—

(अश्मा भवेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता अभिमर्शने विनियोगः)।

ॐ अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्रुतं भव। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥२०॥

(इडासीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः इडा देवता अभिमन्त्रेण विनियोगः)।

इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः। सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरत् ॥२१॥

अथास्याः दक्षिणस्तनं प्रक्षाल्य इयमिति मन्त्रेण कुमाराय प्रयच्छति।

(इमं स्तनमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता स्तनप्रदाने विनियोगः)।

ॐ इमꣳस्तनमूर्ज्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्नेसरिरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वंत्समुद्रियꣳसदनमाविशस्व ॥२२॥

तता वामस्तनं प्रक्षाल्य इमं स्तनं यस्ते स्तन इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां प्रयच्छति।

(यस्ते स्तन इति दीर्घतमाऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वाग्देवता स्तनदाने विनियोगः)।

जलपूर्ण कलश रखना

'ॐ आपो देवेषु जागृथ' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए प्रसूतिका (जच्चा) के सिर के पास ज़लपूर्ण कलश रख दिया जाए। यह जलकलश सूतक-निवृत्ति (ग्यारह दिन) तक वहीं रखा रहे।

सरसों और चावल की धूनी

प्रसूतिगृह के दरवाजे के बाहर लेपनोल्लेखन आदि पंचभू संस्कार कर हवनकुण्ड में **'ॐ शुण्डामर्का'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर प्रातः-सायं चावल और सरसों के दानों की दो-दो आहुतियां दस दिन तक दिया करे। इस प्रकार यह कुल मिलाकर सरसों और चावलों की ४० आहु-

ॐ यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति ! तमिह धातवेऽकः ॥२१॥

उदपात्रं शिरसो निदधाति, मन्त्रो यथा—

(आपोदेवेष्वित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपोदेवता सूतिकायाः शिरः प्रदेशे रक्षोदककुम्भस्थापने विनियोगः)।

ॐ आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ। एवमस्याᳬं सूतिकाया ᳬंसपुत्रिकायां जाग्रथ ॥२२॥

तच्च सूतिकोत्थापनपर्यन्तं तत्रैव धर्त्तव्यम्।

द्वारदेशे सूतिकाग्निमुपसमाधायोत्थानात्सन्धिवेलयोः फलीकरणमिश्रान्सर्षपानग्नावावपति। मन्त्रो यथा—

(शण्डा मर्का इति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता सूतिकाद्वारेऽग्नौ सर्षपावपने विनियोगः)।

ॐ शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदमग्नये न मम।

ॐ आलिखन्ननिमिषः किवदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः कुम्भीशत्रु पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदमग्नये न मम ॥२३॥

तियां हो जायँगी। शुण्डामर्कादि मन्त्र का अर्थ है—

नवजात शिशु को सताने वाले शुण्डमर्का आदि विघ्नकारी तत्त्व यहां से दूर हो जायँ।

हृदय का स्पर्श

यदि नवजात शिशु के शरीर में किसी प्रकार का कोई कुमारग्रह-कृत उपद्रव का चिह्न दिखायी दे तो शिशु के शरीर को वस्त्र से (या जाल से) ढककर बालक का पिता **'कुर्कुरः सुकूर्कुरः'** इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए प्रतिदिन बालक के हृदय पर हाथ फेरा करे (इसका उद्देश्य यह है कि नवजात शिशु के हृदय-धड़कन की परीक्षा की जाती रहे)।

ब्राह्मण भोजन

सूतक की समाप्ति (नामकरण संस्कार) वाले दिन दस ब्राह्मणों के भोजन का संकल्प करे और उस समय उपस्थित ब्राह्मणों को गन्धाक्षत ताम्बूल दक्षिणा आदि समर्पित कर 'यान्तु

यदि कुमार उपद्रवेत्तदा तं बालं अङ्क आधाय हृदि स्पृशन् पिता उत्तरीयेणाच्छाद्यजपति —

कूर्कुरः सुकूर्कुरः कूर्कुरो बालबन्धनः। चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वर। तत्सत्यम् यत्ते देवा वरमदुः स त्वं कुमारमेव वावृणीथाः। चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वर तत्सत्यम्। यत्ते सरमा माता सीसरः पिता श्यामशबलौ भ्रातरौ चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वर॥ (२४)

एवं रक्षां विधाय न नामयतीति मन्त्रं पठन् बालस्य सर्वं शरीरमभिमृशति।

ॐ न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति यत्र वयं वदामो यत्र चाभिमृशामसि॥ (२५)

कृतस्य कर्मणः सांगतासिद्ध्यर्थं सूतकान्ते दशब्राह्मणान्भोजयिष्य इति संकल्पं कुर्यात्।

इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे षोडशी कण्डिका।

मातृगणाः सर्वे' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए मातृगणों का विसर्जन कर दे।

'प्रथमेऽह्नि तथा षष्ठे दाता नाप्नोति सूतकम्।'

इस प्रमाण से बालक के जन्म लेने के पश्चात् पहले और छठे दिन दाता (संस्कार कर्ता) को सूतक का दोष नहीं लगता। अतः यह कथन ठीक नहीं है कि नालच्छेदन से पूर्व सूतक नहीं लगता ओर नालच्छेदन के तत्काल बाद सूतक लग जाता है।

पारस्करगृह्यसूत्र के प्रथम काण्ड की सोलहवीं कण्डिका के अनुसार—

जातकर्मसंस्कार प्रयोग समाप्त॥

जातकर्मान्तर्गत—

अथ षष्ठीपूजनविधिः

सस्कारनृसिंहे यथा—

विघ्नेशजन्मदायाश्च जीवन्त्याश्च प्रपूजनम्।
जातादिपञ्चमे षष्ठे निशीथे बलिमाहरेत् ।।१।।

द्वारतृतीयभागे तु पुत्तलैश्चापि कज्जलैः।
दक्षिणोत्तरयोर्देशे लेख्यचत्वारि पूजयेत् ।।२।।

अर्चयेद्दशदिक्पालान् गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
कृत्वा जागरणं रात्रौ गीतैश्च शान्तिपाठकैः ।।३।।

दशाऽहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः ।
वह्निःसधूमः सलिलापूर्णकुम्भैश्च दीपकैः ।।४।।

मुसलादितथाशस्त्रैर्वर्णकैश्चित्रितेन च ।
विभूतिरक्षां कुर्वीत सर्षपान्विकिरेत्तथा ।।५।।

सूतिकावासनिलया जन्मदानामदेवताः ।
तासां यागनिमित्तन्तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्त्तिता ।।६।।

प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा ।
त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ।।७।।

छठी-पूजा

अब बालक के जन्म से छठे वा पांचवें दिन की छठी पूजा का व्याख्यान यहां दिखाते हैं। लोक व्यवहार में बहुधा स्त्रियां छठी करती हैं। गणेश जी, सूतिका गृहाभिमानी जन्मदाता देवता, जीवन्ती नाम षष्ठीदेवी और शस्त्रगर्भा भगवती देवी इन चारों के नाम से पांचवें या छठे दिन रात के पहले भाग में बलि देवे। द्वार के तीसरे भाग में दक्षिणोत्तर क्रम से गोबर का पुतला बना के वा कज्जल से चारों उक्त देवताओं को लिखकर पूजन करे। गाने बजाने शान्ति पाठ करने आदि द्वारा दश दिक्पालों का पूजन रात्रि में जागते हुए करे। दस दिन तक सुलगती हुई अग्नि, जल से भरा घड़ा, दीपक हथियार मूसल अन्य शस्त्र और अनेक चित्रों द्वारा सूतिका स्थान की विभूतियों द्वारा भी रक्षा करे और सरसों बिखेरे। सूतिकागार के अधिष्ठातृदेवता

तत्र पञ्चमे दिने षष्ठे दिने वा पूर्वरात्रौ पितादिर्द्विराचम्य प्राणानायम्य देशकालसंकीर्त्तनान्ते अनयोः सूतिकाबालकयोरायुरारोग्याभिवृद्ध्यर्थं सकलारिष्ट-शान्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विघ्नेशस्य जन्मदायाः जीवन्त्यपरनाम्न्याः षष्ठी देव्याः शस्त्रगर्भाभगवत्याश्च यथामिलितोपचारैः पूजनं करिष्ये इति सङ्कल्पयेत। एतत्प्रतिमाः पीठादौ वाऽक्षतपुञ्जेषु विनिवेश्याः। सर्वासामेकतन्त्रेण षोडशोपचारैः श्रीसूक्तमन्त्रैः पूजनम्। तद्यथा—

आयाहि वरदे देवि! षष्ठीदेवीति विश्रुता।
शक्तिभिःसह पुत्रं मे रक्षरक्ष वरानने॥

ततो मनोजूतितिति प्रतिष्ठापयेत्—

ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञᳬसमिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ।

अथ ध्यानम्

देवीमञ्जनसङ्काशां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।
सिंहारूढां जगद्धात्रीं कौमारीं भक्तवत्सलाम्॥१॥
खड्गं खेटं च बिभ्राणामभयां वरदां तथा।
तारकाहारभूषाढ्यां चिन्तयामि नवांशुकाम्॥२॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ-

---

तथा षष्ठी देवी का पूजन करने के लिए पहले दिन छठे दिन और दसवें दिन सूतक में अशुद्धि नहीं लगती किन्तु शुद्धि मानी जाती है। यह 'संस्कार नृसिंह' में लिखा है।

षष्ठीपूजन का विधान यह है कि पांचवें या छठे दिन और रात्रि के आरम्भ प्रहर में बालक का पितादि दो बार आचमन और प्राणायाम करके संकल्प सम्बन्धी देशकाल कथन के अन्त में कहे कि मैं इन सूतिका और बालक की नीरोगता-वृद्धि के लिए तथा सर्वविधक्लेश-निवृत्ति द्वारा श्री परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए गणेश जी जन्मदातादेवी, जीवन्ती नाम षष्ठीदेवी और भगवती शस्त्रगर्भादेवी इन चारों का सम्मिलित उपचारों द्वारा पूजन करूंगा, ऐसा संकल्प करके पट्टादि पर इन चारों की प्रतिमा स्थापित करे वा चावलों की छोटी-छोटी ढेरियों में स्थापना करे। सब देवों का एकतन्त्र से षोडशोपचार पूजन करे। प्रथम 'आयाहि०' मन्त्र से आवाहन करे 'मनोजूति०' मन्त्र से स्थापना करे।

'देवीमञ्जन०' इत्यादि पढ़के विघ्नेशादि को नमस्कार करता हुआ ध्यान करे। 'आगच्छ वरदे०' इत्यादि पढ़के प्रणामपूर्वक आवाहन करे, 'सन्ध्यारागनिभ०' इत्यादि से आसन

व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मइषाण सर्वलोकम्म इषाण ।

ॐ भूर्भुवःस्वः—विघ्नेशजन्मदाषष्ठीदेवीजीवन्तिकाशस्त्रगर्भादेवीभ्यो नमः ध्यायामि ।

आगच्छ वरदे देवि स्थाने चात्र स्थिरा भव ।
आराधयामि भक्त्या त्वां रक्ष बालं च सूतिकाम् ।।

श्रीसूक्तम्

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ।।१।।

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः आवाहयामि ।

सन्ध्यारागनिभं रक्तमासनं स्वर्णनिर्मितम् ।
गृहाण सुमुखी भूत्वा रक्ष बालं च सूतिकाम् ।।

ॐ तामावह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।।२।।

ॐ भूर्भुवःस्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः आसनं समर्पयामि ।

गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ।
पाद्यं गृहाण मे बालं सूतिकां चैव पालय ।।

ॐ अश्वपूर्णां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम् ।।३।।

ॐ भूर्भुवःस्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः पाद्यं समपर्ययामि ।

अक्षतपुष्पगन्धाढ्यमर्घार्थं निर्मलं जलम् ।
गृहाण पाहि मे पुत्रं सूतिकां भयहारिणि ।।

ॐ कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।४।।

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः अर्घ्यं समर्पयामि ।

गृहाणाचमनीयन्तु कर्पूरैलादिवासितम् ।
सबालां सूतिकां पाहि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ।।

व कुश दूर्वादि समर्पण, करे, 'गंगाजल इत्यादि से पाद्यजल समर्पण, 'अक्षतापुष्प०' इत्यादि से अर्घ्यजल समर्पण, 'गृहाणाचमनीयम्०' इत्यादि से आचमन समर्पण, 'पञ्चामृतं' इत्यादि से पञ्चामृत स्नान समर्पण 'दुकूलादिमयं' इत्यादि से वस्त्र या मौली-लच्छा समर्पण 'नानारत्नमयं' इत्यादि से यज्ञोपवीत और आभूषण 'कर्पूरागरु०' इत्यादि से चन्दन समर्पण 'सुमाल्यानि०' इत्यादि

ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
ताम्पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि ॥५॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः आचमनं समर्पयामि।

पञ्चामृतं गृहाणेदं पयोदधिघृतंमधु।
शर्करासहितं देवि ! पाहि बालं समातृकम्॥

ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥६॥

ॐ घृतेन सीतामधुनासमज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिम्बयामाऽस्मान्सीतेपयसाऽभ्याबवृत्स्य॥

ॐ भूर्भुव स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि।

दुकूलादिमयं देवी नानारत्नैः परिष्कृतम्।
परिधत्स्वामलं वासः रक्ष मे सुतसूतिके॥
ॐ ऊपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूताऽसि राष्ट्रेऽस्मिन्कीर्त्तिवृद्धि ददातु मे ॥७॥

ॐ भुर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः वासः समर्पयामि।

नानारत्नमयं दिव्यं मुक्ताहारमयं शुभम्।
गृहाण कालरात्रि त्वं रक्ष मे सूतसूतिके॥

ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धि च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥८॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः उपवीतमलङ्कारांश्च समर्पयामि।

कर्पूरागरुकस्तूरीकंकोलादिसमन्वितम्।
चंदनं स्वीकुरु त्व मे रक्ष बालं च सूतिकाम्॥

ॐ गंधद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥९॥

से पुष्प समर्पण, 'वनस्पत्युद्भव०' इत्यादि से धूप, 'आज्यवर्त्ति०' श्लोक मन्त्र पढ़के दीप, 'नैवेद्य०' इत्यादि से नैवेद्यार्पण, 'नागवल्लीदलं, इत्यादि पढ़के ताम्बूल, 'हिरण्यगर्भः', इत्यादि श्लोक मन्त्र से आर्ति करे। 'नानासुगन्ध' इत्यादि से पुष्पाञ्जलि समर्पण 'यानि कानि०' इत्यादि श्लोक मन्त्रों से प्रदक्षिणा करे।

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः चंदनं समर्पयामि।
सुमाल्यानि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ॥
गृहाण वरदे देवि ! रक्ष बालं च सूतिकाम् ॥

ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः पुष्पाणि समर्पयामि ॥

वनस्पत्युद्भवं धूपं दिव्यं स्वीकुरु देवि मे।
प्रसीद सुमुखीभूत्वा रक्ष मे सुतमीश्वरि ॥
ॐ कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभ्रम कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः धूपं समर्पयामि।

आज्यं वर्तिकृतं देवि ! ज्योतिषां ज्योतितं तथा।
जीवन्तिके गृहाणेमं रक्ष मे सुतसतिके ॥
ॐ आपःसृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
निचदेवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥

ॐ भुर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः दीपं समर्पयामि।

नैवेद्यं लेह्यपेयादि षड्रसैश्च समन्वितम्।
भुङ्क्ष्व देवि गणैर्युक्ता रक्ष मे सुतसतिके ॥
ॐ अर्द्रां यःकरिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जतवेदो ममावह ॥१३॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः नैवेद्यं समर्पयामि।

नागवल्लीदलं रम्यं पूगीफलसमन्वितम्।
भद्रे गृहाण ताम्बूलं पहि मे सुतसूतिके ॥

ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१४॥

तदनन्तर 'षष्ठीदेवि०' इत्यादि दश श्लोकों से षष्ठीदेवी से विशेषकर बालरक्षा की प्रार्थना करे। तत्पश्चात् कहे कि इस षोडशोपचार पूजन से विघ्नेश उनकी जन्मदा जीवन्ती नामक षष्ठीदेवी और शस्त्रगर्भा भगवती प्रसन्न हों। तदनन्तर दिक्पालों का पूजन और नीराजन करके सूतिकास्थान में पक्वान्न का एक बलि क्षेत्राधिपति देव के निमित्त देवे। फिर वहां से उठकर द्वार के दोनों ओर कज्जल से दो-दो मूर्त्ति धिषणादि देवियों की लिखकर ऊपर लिखे

ॐ भूर्भुवःस्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः ताम्बूलं समर्पयामि ।

ॐ हिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः दक्षिणां समर्पयामि ।

कदलीगर्भसंभूत कर्पूरं च प्रदीपितम् ।
आरार्त्तिकमहं कुर्वे रक्ष बालं च सूतिकाम् ॥

ॐ इदꣳहविःप्रजननं मेअस्तु दशवीरꣳस्वस्तये ।

आत्मसनिपशुसनिलोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो मेतो अस्मासु धत्त ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः कर्पूरनीराजनं समर्पयामि ॥

नानासुगंधपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिं गृहाणेमं रक्ष बालं च सूतिकाम् ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः विघ्नेशादिचतसृदेवताभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतान्यपि ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥

ॐ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्तसमिधःकृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥

इति प्रदाक्षिणां कुर्यात् ।

अथ प्रार्थना

षष्ठीदेवि नमस्तुभ्यं सूतिकागृहशालिनी ।
पूजिता परया भक्त्या दीर्घमायुःप्रयच्छ मे ॥१॥
जननी जन्मसौख्यानां वर्धिनीधनसम्पदाम् ।
साधिनी सर्वभूतानां जन्मदे त्वां नता वयम् ॥२॥

अनुसार गन्धादि पांच उपचारों द्वारा पूजन करे। तदनन्तर सुवासिनियों को खाद्य ताम्बूलादि तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद लेके दसवें दिन षष्ठीदेवी आदि का विसर्जन करे। सूतकसम्बन्धी अशौच में प्रथम छठे और दसवें दिन दान देने वा दान दक्षिणा लेने में कोई दोष नहीं माना जाता परन्तु अन्न का भोजन निषिद्ध है। पांचवें छठे दोनों दिन, विशेष-कर छठे दिन रात्रि के समय तलवार, बर्छा आदि शस्त्र हाथ में रखते हुए पुरुष और नाचने गाने

गौरीपुत्रो यथा स्कन्दः शिशुत्वे रक्षितः पुरा ।
तथा ममाप्यमुं बालं षष्ठि मे रक्षि ते नमः ॥३॥
यथा दाशरथींरामं चतुर्मूर्ति भवप्रदे ।
त्वया संरक्षितस्तद्वद् बालं पाहि शुभप्रदे ॥४॥
विष्णुनाभिस्थितो ब्रह्मा दैत्येभ्यो रक्षितस्त्वया ।
तथा मे बालकं पाहि योगनिद्रे नमोऽस्तु ते ॥५॥
रक्षितौ पूतनादिभ्यो नन्दगौपसुतौ यथा ।
तथा मे बालकं पाहि दुर्गेदेवि नमोऽस्तु ते ॥६॥
यथा वृत्रासुरादिन्द्रो रक्षितोऽदितिबालकः ।
त्वया तथा मे बालोऽयं रक्षणीयो महेश्वरि ॥७॥
यथा त्वयाञ्जनीपुत्रो हनुमान्रक्षितःशिशुः ।
तथा मे बालकं रक्ष दुर्गे दुर्गार्त्तिहारिणी ! ॥८॥
रुद्र स्वर्गाद्यथादेवि कश्यपादिसुतास्त्वया ।
मातस्त्राहि तथा बालं विष्णुमाये नमोऽस्तु ते ॥९॥
सर्वविघ्नानपाकृत्य सर्वसौख्यंप्रदायिनि !
जीवन्तिके जगन्मातः पाहि नः परमेश्वरि ॥१०॥

अनया पूजया विघ्नेशस्य जन्मदाजीवन्त्यपरनाम्नीषष्ठीदेवीशस्त्रगर्भा-भगवत्यः प्रीयन्ताम् । ततो दिक्पालपूजनं नीराजनं च कृत्वा सूतिकागृहे सोपस्करं बलिं दद्यात् । तस्य मंत्र :

क्षेत्रस्याधिपते देवि सर्वारिष्टाविनाशिनि ।
बलिं गृहाण मे रक्ष क्षेत्रं सूतीं च बालकम् ।

इमं सोपस्करबलिं क्षेत्राधिपत्यै देव्यै समर्पयामि । ततआगत्य द्वारस्योभयतः कज्जलेन द्वे द्वे मातरौ लिखेत् । तन्नामानि—

धिषणा वृद्धिमाता च तथा गौरी च पूतना ।
आयुदात्र्यो भवन्त्वेता अद्य बालस्य मे शिवाः ॥
ततः पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

ततः सुवासनीभ्यो भोजनं दत्त्वा विप्रेभ्यः खाद्यताम्बूलदक्षिणादिक दद्यात् । तेभ्य आशिषो गृहीत्वा दशमदिने षष्ठीदेवतादि विसर्जयेत् ।

इति षष्ठीपूजविधिः समाप्तः ॥

वाली स्त्रियां रात्रि भर जागरण करें । और धूप सहित अग्नि, दीपक, शस्त्र, मूसल, जल भरा पात्र और मन्त्रपूत भस्म ये सब सूतिका-घर के समीप रात्रिभर छठे दिन विशेष कर रखे जायँ सब ओर सरसों बिखेरी जाय । षष्ठीपूजन सम्बन्धी यह सारा कृत्य जातकर्म का ही अंगरूप है ।

यह षष्ठी पूजन का विधान समाप्त हुआ ।

नामकरण निष्क्रमण आदि संस्कार

विवेचन

शिशु के जन्म के ग्यारहवें दिन के पश्चात् पहली वर्षगांठ के दिन तक सुविधानुसार यह संस्कार किया जा सकता है। ये नाम पांच प्रकार के बताये गये हैं, किन्तु आजकल —१. जन्म नाम या राशि नाम २. प्रसिद्ध नाम तथा ३. (बच्चों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त कोई प्यार का नाम) ये तीन नाम ही प्रचलित हैं। यूं भी देवतानाम और मासनाम ये दोनों नाम गोप्य होते हैं। नामकरण जब ग्यारहवें दिन ही कर दिया जाय तो इससे पूर्व सूतिकाशुद्धि और निष्क्रमण-संस्कार भी किये जाते हैं। क्योंकि, सूतिकाशुद्धि के बिना तो कोई संस्कार होगा ही कैसे ? अस्तु।

प्रमख कर्त्तव्य-विधियां

१. ग्यारहवें दिन प्रातः शिशु एवं उसके माता-पिता को शुद्ध जल से (हो सके तो गंगा जल मिलाकर) स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहना दें।
२. स्वस्तिवाचन एवं गणपत्यादि पूजन।
३. हवन।
४. पञ्चगव्य का हवन।
५. हुतशेष पञ्चगव्य को सूतिका एवं शिशु को पिलाना तथा सूतिकागार में छिड़कना।
६. निष्क्रमण, सूर्यदर्शन।
७. नामकरण संस्कार।
८. भूम्युपवेशन।
९. जल-पूजन।
१०. पूर्णाहुति एवं ब्राह्मण भोजन आदि।

सामग्री

१. पूजन एवं यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री।
२. पञ्चगव्य।

अथ नामकरणनिष्क्रमणे भूम्युपवेशनं च

पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे सप्तदशी कण्डिका

दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति। [१] द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम्। [२] अयुजाक्षरमाकारान्तꣳस्त्रियै तद्धितम्। [३] शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य। [४] चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका। [५] सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति। [६]

इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे सप्तदशी कण्डिका।

अथ प्रयोगः

चतुर्विधानि नामानि धार्याणि—

१. देवतानाम २. मासनाम ३. नक्षत्रनाम ४. व्यवहारनाम अथवा प्रसिद्धनाम च। प्रसिद्धनाम्न्येव द्व्यक्षरत्र्यक्षरादि विचारः कर्तव्यः।

विधि-विधान

पारस्कर का कथन है कि बालक के जन्म से दस रात्रियां बीत जाने के पश्चात् ११वें दिन प्रसूतिका स्थान से सूतिका को लाकर (गोमूत्रादि से शुद्धि करके) तीन ब्राह्मणों को भोजन कराने का सङ्कल्प कर पिता नवजात शिशु का नामकरण संस्कार करे।

देवता नाम[1], मास नाम, नक्षत्र नाम और प्रसिद्ध नाम इन चार प्रकार के नामों में से प्रसिद्ध नाम के सम्बन्ध में पारस्कर का कथन है कि यह दो या चार अक्षरों वाला होना चाहिए।

---

१. देवतानाम,' मासनाम, नक्षत्रनाम और प्रसिद्धनाम इन चार प्रकार के नामों में से मास नाम के सम्बन्ध में कहा गया है कि उनके कृष्ण आदि विशिष्ट साङ्केतिक नाम रखने चाहिए। जैसे कि—

कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः।
उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः॥
योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात्।

जन्मतः एकादशदिने वा यथाचारं नियतदिने वा नामकरणसंस्कारः कार्यः। नियतकालेऽपि भद्रावैधृतिव्यतिपातग्रहणश्राद्धादि दिनं वर्जयेत्। नियतकाले क्रियमाणे गुरुशुक्रास्तबाल्यवार्धक्यवक्रातिचारमलमासादि निषेधो नास्ति। नियतकालातिक्रमे तु ज्योतिःशास्त्रोक्ते शुभदिने कार्यम्। यदि जन्मदिवसे समये च जातकर्मसंस्कारो नैव कृतस्तदा जातकर्माप्यनादिष्टप्रायश्चित्तहोमपूर्वकं नामकर्मणा सहैव कार्यम्।

अनुप्राणनवात्सप्राभिमर्शनानुमन्त्रणे ।
कालान्तरेऽपि कुर्वीत आयुष्यकरणं तथा ।।

—इति वृद्धोक्तेः।

'अशौचोपरमे कार्यम्' —इति विष्णधर्मोत्तरे च।

यदि एकादशे दिवसे नामकरणसंस्कारः कर्तुं न शक्यते तदा अष्टादशे, एकोनविंशे दिने, शतरात्रे व्युष्टे अयने, संवत्सरे गते वा नामकरणसंस्कारो भवति।

इस नाम के आदि में घोष अक्षर (ह, वर्गों के तृतीय चतुर्थ पंचम अक्षर) हों उनके मध्य में अन्तस्थ (य, र, ल, व) होने चाहिए और अन्त में दीर्घ स्वर होना चाहिए। पुत्री का नामकरण करते समय इस बात का ध्यान रहे कि उसका नाम विषमाक्षर (तीन या पांच) अक्षरों वाला होना चाहिए और आकारान्त या ईकारान्त हो। स्त्रियों का ताद्धित नाम रखा जा सकता है। ब्राह्मण अपने नाम के अन्त में 'शर्मा', क्षत्रिय 'वर्मा' और वैश्य 'गुप्त' जाति-सूचक संज्ञा का प्रयोग करें।

तदनुसार ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार किया जाता है, किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि उस दिन भद्रा, व्यतिपात या ग्रहण आदि कोई अशुभ दिन न हो। और यदि कोई ऐसा अशुभ दिन हो तो ज्योतिष के अनुसार जो शुभ मुहूर्त निकले उसी के अनुसार नामकरण संस्कार करे। यदि ग्यारहवें दिन के आसपास नामकरण संस्कार न किया जा सके तो १९वें दिन या १००वें दिन अथवा एक वर्ष के बाद अगले जन्मदिन वाले दिन कर दिया जाय। यदि जातकर्म

इस प्रकार चैत्र का नाम कृष्ण और वैशाख का नाम अनन्त और क्रमशः अगले मासों के नाम समझने चाहिए।

नक्षत्र नाम रखने की विधि उसके देवता के आधार पर भी है और अवकहड़ा चक्र के अनुसार प्रत्येक नक्षत्र के चारों चरणों के निश्चित अक्षरों जैसे अश्विनी के चु, चे, चो, ला; इन दोनों आधारों पर रखा जा सकता है। किन्तु वर्तमान में नक्षत्रनाम उसके चरणाक्षरों के नाम पर रखने की ही सार्वत्रिक प्रथा है। जैसे अश्विनी नक्षत्र वाले का चूड़ामणि, चेतराम, लाभशङ्कर, लक्ष्मण, लक्ष्मीदत्त और इसी प्रकार चो को आदि मानकर चोलेश आदि नाम रखे जा सकते हैं।

किन्तु सूतिकाशुद्धिस्तु तस्मिन्नेव दिने कर्तव्या।

यथा हि प्रचेताः—

सूतिका सर्ववर्णानां दशाहेन विशुद्धयति।
ऋतौ च न पृथक् धर्मः सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥

मनुनाप्युक्तम्—

नामधेयं दशम्यां च द्वादश्यां वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥
दशमे दिवसे स्नायाच्छुध्यर्थं सा सबालिका।

विधि :—

तत्र नामकरणसंस्कारदिवसे शिशोः पिता मङ्गलं स्नात्वाऽहृते वाससी परिधाय सबालां सूतिकाञ्च संस्नाप्य धृतमङ्गलतिलकः दीपं प्रज्वाल्य कर्मकलशं संस्थाप्य शुभासन उपविश्याचम्य प्रणानायम्य स्वस्तिवाचनं विधाय गणपत्यादीन् देवान् प्रणम्य देशकालौ सङ्कीर्त्यामुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्मा, वर्मागुप्तोवाहममुकराशेः पुत्रस्य पुत्र्याः वा करिष्यमाण नामकर्मणि संस्कारे निष्क्रमणादिकर्मणो निर्विघ्नता सिद्धये श्री भगवतो गणपतेः पूजनं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य विधिना गणपतिं सम्पूज्य प्रधानसङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा—'देशकालौ सङ्कीर्त्यामुकशर्माऽहं मम सुपुत्रस्य सुपुत्र्या वा आयुर्वृद्धि व्यवहारसिद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्री परमेश्वरप्रीतये नामकर्म, तथा मम पुत्रस्य श्रीवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्री परमेश्वरप्रीतये सूर्यावलोकनसहितं निष्क्रमणकर्म तथा मम पुत्रस्यायुर्वृद्धिधनप्राप्तिद्वारा श्री परमेश्वरप्रीतये भूम्युपवेशनञ्चैकतन्त्रेण करिष्ये। सूर्यावलोकनसहितनिष्क्रमणभूम्युपवेशनकर्मणां पूर्वाङ्गत्वेन नवग्रहादीनां पूजनं नान्दीश्राद्धादिकञ्च करिष्ये इति सङ्कल्प्य गणपतिपूजादिकं विधाय वेदीं कृत्वा तत्र पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य वेद्या ईशानदिग्भागे कलशविधिना रुद्रकलशं संस्थाप्य तत्र ब्रह्मवरुणसहितादित्यादि नवग्रहानावाह्य सम्पूज्य रक्षासूत्रम-

---

यथातमय न किया जा सका हो तो जातकर्म संस्कार भी इसी दिन नामकरण से पूर्व कर दिया जाय । ऐसा विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लिखा है।

सर्वप्रथम नामकरण संस्कार वाले दिन प्रातःकाल नवजात शिशु और उसकी माता, जच्चा-बच्चा को स्नान करवा दिया जाय और बालक का पिता स्वयं भी स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर सन्ध्या आदि दैनिक कृत्य सम्पादित कर ले। तत्पश्चात् कर्मकलश, यज्ञवेदी, प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र, नवग्रह, मातृका, रुद्रकलश, गणेश एवं ओंकार आदि की विधिवत् स्थापना कर दी जाय तथा ब्रह्मासन आदि पर कुशबटु या ब्रह्मा की स्थापना कर आचार्य एवं ब्रह्मा का वरण कर लिया जाय। तत्पश्चात् 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा' इत्यादि मन्त्र से पवित्रीकरण कर

भिमन्त्र्य ब्रह्मण आचार्यस्य च वरणं कुर्यात्। ब्रह्मासनास्तरणादि पुर्युक्षणान्तं कर्म कृत्वा होमार्थं, पानार्थं, प्रसूतिगृहे प्रोक्षणार्थञ्च निम्नप्रकारेण पञ्चगव्यं विदध्यात्।

पञ्चगव्याभिमन्त्रणम्—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

इति गायत्रीमन्त्रेण गोमूत्रं गृहीत्वा वरुणं ध्यायन् ताम्रपात्रे पलाशपत्रपुटे वा स्थापयेत्। तत :—

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

इति गोमयं संगृह्य अग्निं ध्यायन्स्तत्रैव निदध्यात्।

ॐ आप्यायस्व समेतु विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य सङ्गमे॥

इति दुग्धं संगृह्य सोमं ध्यायन्स्तत्रैव निदध्यात्।

ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूꣳषि तारिषत्॥

इति दधि संगृह्य वायु ध्यायन्स्तत्रैव निदध्यात्।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि।
प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥

इति घृतं संगृह्य रविं ध्यायन्स्तत्रैव निदध्यात्।

आचमन और प्राणायाम कर लेवे। तब दीपक प्रज्वलित कर तथा धूप अगरबत्ती आदि जला कर स्वस्तिवाचन किया जाय। स्वस्तिवाचन के पश्चात् 'हरि ॐ तत्सदद्य' इत्यादि से आरम्भ कर 'करिष्ये' तक सङ्कल्प कर नामकरण संस्कार, निष्क्रमण और भूम्युपवेशन इन तीनों कार्यों के एक साथ करने तथा तदंगभूत गणपत्यादिपूजन का सङ्कल्प करे और रुद्रकलश की विधिवत् स्थापना कर ली जाय। इस प्रकार विधिविधान के अनुसार स्वस्तिवाचन एवं नवग्रहादि-पूजनात्मक पूर्वाङ्ग का सम्पूर्ण विधिविधान यथाविधि सम्पादित कर कुशकण्डिका के पश्चात् यथाविधि अग्न्याधान कर ले।

पञ्चगव्य निर्माण

नामकरण संस्कार से पूर्व सूतकनिवृत्ति की विधि सम्पन्न करना आवश्यक है। तदर्थं

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।

इति कुशोदकं संगृह्य हरिं ध्यायन्स्तत्रैव निदध्यात् ।

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवः । ॐ ता न ऊर्जे दधातन ।

ॐ महे रणाय चक्षसे ॥१॥

ॐ यो वः शिवतमो रसः । ॐ तस्य भाजयतेह नः ।

ॐ उशतीरिव मातरः ॥२॥

ॐ तस्मा अरं गमाम वः । ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

ॐ आपो जनयथा च नः ॥३॥

इति तिस्त्रिभिरालोड्य ॐ कारेण कुशत्रयं साग्रं समूलं गृहीत्वा पुनरोंकारेण तदादाय जुहुयात् ।

ततो विधिनामानमग्निम् ॐ भूर्भुवः स्वः, विधिनामाग्ने इहागच्छेह तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव, इति प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा नाममन्त्रेण सम्पूज्य दक्षिण जान्वाच्य ब्रह्मणान्वारब्धो जुहुयात् —

ॐ प्रजापतये स्वाहा (इतिमनसा) इदं प्रजापतये न मम ।

सूतिका को यज्ञशेष पञ्चगव्य-पान कराना होता है । सूतिकागृह को भी पञ्चगव्य तथा गङ्गाजल से पवित्र करना चाहिए । अतः पूजा की अन्य सामग्री के साथ इस संस्कार में पञ्चगव्य विशेष रूप से बनाकर रख लेना चाहिए । पञ्चगव्य के लिए कहा गया है कि गोमय से दुगना गोमूत्र और गोमूत्र का तिगुना दही तथा सात गुना दूध और गोमूत्र के बराबर घी और उतना ही कुश-जल मिलाकर पञ्चगव्य बना लिया जाय । इनको मिलाते समय अलग-अलग मन्त्र पढ़े जाते हैं, जैसे कि—**'ॐ गन्धद्वारां'** इत्यादि के द्वारा गोमय, **'ॐ आप्यायस्व'** के द्वारा दुग्ध, **'ॐ दधिक्राव्णो'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर दही, **'ॐ तेजोऽसि'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर घृत और गायत्री मन्त्र से गोमूत्र डाले । सबसे अन्त में **ॐ देवस्य त्वा'** इत्यादि मन्त्र से कुशोदक डालकर **'ॐ आपो हि ष्ठा'** इत्यादि मन्त्रों से पञ्चगव्य के इन सब पदार्थों को भली-भांति मिला ले ।

कुशकण्डिका के पश्चात् विधि नामक अग्नि की यज्ञवेदी में स्थापना कर ली जाय । उस समय **'ॐ एतन्ते'** इत्यादि मन्त्र पढ़ा जाय और अग्नि का ध्यान किया जाय । तीन समिधाओं की आहुति के पश्चात् **'ॐ प्रजापतये स्वाहा'** और **'ॐ इन्द्राय स्वाहा'** ये दो आघार तथा **'ॐ अग्नये स्वाहा'**, **'ॐ सोमाय स्वाहा'** ये दो आज्यभागाहुतियां दे देने के पश्चात् सात से अधिक हरी कुशा के गुच्छे से **'ॐ इरावती'** इत्यादि मन्त्रों से पञ्चगव्य की पांच आहुतियां दे । पुनः **'ॐ अग्नये स्वाहा'** इत्यादि मन्त्रों से आहुतियां दे ।

महाव्याहृति, पंच वारुणी या सर्वप्रायश्चित्त की पांच आहुतियां एवं स्विष्टकृत् होम के पश्चात् संस्रवप्राशन करे । स्विष्टकृत् होम में भी घृताहुति के साथ पंचगव्य की आहुति भी दे ।

ॐ इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम ।

ॐ अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये न मम ।

ॐ सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय न मम ।

इत्याज्येन हुत्वा अन्वारम्भं त्यक्त्वा सप्ताधिक हरितदर्भतरुणैः पञ्चगव्य-होमं कुर्यात् । तत्र मन्त्राः

(इरावतीधेनुमती इत्यस्य वसिष्ठऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवता पञ्चगव्यहोमे विनियोगः) ।

ॐ इरावती धेनुमती हि भूतँ सूयवसिनी मनवे दशस्या ।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः । स्वाहा ।।

इदं विष्णवे न मम ।

(इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिऋर्षिः गायत्री छन्दः विष्णुर्देवता पञ्चगव्यहोमे विनियोगः) ।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाँसुरे । स्वाहा ।।

इदं विष्णवे न मम ।

(मा नस्तोके इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिर्जगती छन्दः रुद्रो देवता पञ्चगव्यहोमे विनियोगः) ।

उसके बाद आचार्य तथा ब्रह्मा को होम की दक्षिणा एवं पूर्णपात्र आदि प्रदान करें ।

सूतिका और बालक को पंचगव्य पिलाना

इसके पश्चात् हवन से बचे हुए पंचगव्य को जच्चा-बच्चा को पिला दे तथा सूतिकागृह में उसके छींटे लगा दे । तब यदि सामर्थ्य हो तो नवजात शिशु को गोद में लिए हुए उसकी माता को यज्ञवेदी के समीप लाया जाय और वेदी की परिक्रमा कर वह पति के वायें बैठ जाये और भगवान् गणपति आदि देवताओं पर पुष्पांजलि चढ़ाये ।

नाम-श्रावण

तदनन्तर नवजात शिशु को नाम सुनाने का विधान यह है कि किसी लकड़ी के पाटे पर वस्त्र बिछा कर उस पर कुंकुम से नवजात शिशु के निर्धारित चारों नाम लिख दिए जायें । नाम लिखते समय 'ॐ एतन्ते देव' इत्यादि मन्त्र पढ़ा जाये और भगवान् से प्रार्थना की जाये कि ये नाम सुप्रतिष्ठित हो । तब बालक के दायें कान में ये चारों नाम इस प्रकार सुनायें जायें— पिता पहले कहे कि हे पुत्र ! तू देव-नाम से इस नाम वाला है, प्रभु कृपा से तू चिरायु हो । मास

ओ३म् मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे । स्वाहा ॥ इदं रुद्राय न मम ।

उदकस्पर्शः ।

(शन्नोदेवीरित्यस्य वध्यङ्ङ्थर्वण ऋषिर्गायत्री छन्दः आपो देवताः पञ्चगव्यहोमे विनियोगः) ।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः । स्वाहा ।

इदमद्भ्यो न मम ।

(तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता पञ्चगव्यहोमे विनियोगः) ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । स्वाहा ॥

इदं सवित्रे न मम ।

(प्रजापते नत्वेत्यस्य हिरण्यगर्भऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रजापतिर्देवता पञ्चगव्यहोमे विनियोगः) ।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयँ स्याम पतयो रयीणम् ॥ स्वाहा ।

इदं प्रजापतये न मम ।

इति पञ्चगव्यहोमं विधाय ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आज्येन भूराद्या नवाहुतीर्हुत्वा पञ्चगव्यमिश्राज्येन स्विष्टकृद्धोमं च कृत्वा संस्रवप्राशनादिपूर्णपात्रदानान्तं कर्म समापयेत् ।

नाम से तेरा यह नाम है और नक्षत्र नाम से यह नाम तथा व्यवहार या प्रसिद्ध नाम से तेरा यह नाम है । इस प्रकार बालक के दायें कान में उसका नाम सुनाने के पश्चात् पिता नवजात शिशु को अपनी गोद में ले ले और उसे उपस्थित विद्वानों तथा बड़े-बूढ़ों को चरण स्पर्श कराते हुए कहे कि हे पुत्र तेरा यह नाम है और तू इन आदरणीय जनों को णाम कर । तथा बालक की ओर से स्वयं उन सबका चरण स्पर्श करे । तब सब उपस्थित विद्वान् "ओ३म् वेदोऽसि" आदि मन्त्र पढ़कर नवजात शिशु को आशीर्वाद दे । अन्त में आचार्य आदि को दक्षिणा और दूसरे अधिकारी व्यक्तियों को भूयसी दक्षिणा प्रदान करे तथा त्र्यायुषीकरण आदि की विधि के पश्चात् अग्नि का विसर्जन कर दे ।

ततो हुतशेषपञ्चगव्यं गङ्गाजलं च सूतिकायै ससुतायै दद्यात् प्रसूतिगृहञ्च प्रोक्षेत। सा च ब्रह्मतीर्थेन त्रिःप्राश्नाति आचारात्। सूतिकां भर्तुः समीपमानयन्ति। सा च शिशुम गृहीत्वा अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य उपविशेत्। श्रीमन्महागणपतये नवग्रहादिभ्यश्च प्रणम्य पुष्पाञ्जलिं च समर्पयेत्।

ततो नववस्त्रे कुंकुमपिष्टातकेन हरिद्रया वा कुलदेवतासम्बद्धं प्रथमं नाम यथा—शिवदत्तः। मासनाम यथा—कृष्णः। नक्षत्रनाम यथा—गुरुप्रसादः। व्यवहारनाम आनन्द शर्मा तथा पञ्चममपि यत्किमपि प्रसिद्धं नाम इति शिशोः पञ्चनामानि लिखित्वा—

'ॐ भूर्भुवः स्वः'

शिशोर्नामानि सुप्रतिष्ठानि भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य नामदेवताः सम्पूज्य शिशोर्दक्षिणकर्णे अमुकशर्माऽसि चिरायुर्भव इति क्रमेण नामानि श्रावयेत्। ततो ब्रह्मणे पूर्णपात्रं आचार्याय दक्षिणामन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्येश्च भूयसीदक्षिणां च दत्त्वा —

कृतस्यास्य नामकर्माख्यसंस्कारकर्मणः साद्गुण्यार्थं यथासंख्यकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये इति संङ्कल्प्य पूर्णाहुतिं कृत्वाग्निं सम्पूज्य त्र्यायुषीकरणान्ते अग्निं देवगणांश्च विसर्जयेत्।

अथ निक्रमणं भूम्यूपवेशनं च

पारस्करेण चतुर्थे मासे विहितं निष्क्रमणमप्यत्रैव विधीयते। अत्र च तच्चक्षुरित्यादि मन्त्रेण सूतिकागृहाद् बहिरागतां ससुतां मातरं सूर्यदर्शनं कारयन्ति।

पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्।

इति विष्णुधर्मोत्तरवचनेन पञ्चममासे विहितमपि भूम्युपवेशनं नामकर्म दिवस एवाचरन्ति।

निष्क्रमण

यद्यपि पारस्कर ने कहा है कि निष्क्रमणसंस्कार जन्म के चौथे मास में किया जाय, किन्तु निष्क्रमणसंस्कार एवं भूम्युपवेशन ये दोनों विधियां भी नामकरण के साथ ही सम्पन्न की जाती हैं। भविष्योत्तर पुराण में इसी दिन यह विधि सम्पन्न करने का विधान भी है। तत्पश्चात् इसके लिए "इस बालक के निष्क्रमण संस्कार में पूर्वांग के रूप में दिक्पालों का पूजन करूंगा" इस प्रकार संकल्प करे और मां की गोद में बैठे हुए शिशु को सूर्य के दर्शन कराये। उस समय् सूर्यपूजन का संकल्प करे और "ध्येयस्दा सवितृमण्डलमध्यवर्ती" इत्यादि मन्त्रों से भगवान् सूर्य का ध्यान, आवाहन आदि कर अर्घ्य देवे और "तच्चक्षु" इत्यादि मन्त्र पढ़े। राजस्थान आदि प्रान्तों में 'सूरज पूजा' के नाम से यही विधि लौकिक रूप में आज भी सम्पन्न की जाती हैं।

भम्युपवेशन

यद्यपि बालक को भूमि पर बैठाने के समय भी विभिन्न बताये गये हैं, तथापि भूम्युपवेशन की यह विधि भी इसी दिन सम्पन्न की जाती है। उसकी विधि यह है कि यज्ञवेदी के

तद्यथा—गोमयेन संलिप्तायां भूमौ मृदा मण्डलं कृत्वा आचम्य कर्मकलशं संस्थाप्य अद्येह भूम्युपवेशनकर्मणि पूर्वाङ्गत्वेन भूम्यादीनां पूजनं करिष्ये इति सङ्कल्प्य 'ॐ एतन्ते' इति प्रतिष्ठाप्य। ॐ पृथिव्यै नमः ॐ वराहाय नमः ॐ कुलदेवतायै नमः इति नाममन्त्रैर्भूमौ पृथिवीं वराह कुलदेवतां च गन्धाद्युपचारैः सम्पूज्य —

रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगते शुभ।
आयुष्प्रमाणं निखिलं निक्षिपस्व हरिप्रिये॥
अचिरादायुषस्तस्य ये केचित् परिपन्थिनः।
जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान्॥
धारिण्यशेषभूतानां मातस्त्वमधिका ह्यसि।
अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृते॥
त्वमेवाशेषजगतां प्रतिष्ठा प्राश्रयो ह्यसि।
कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम्॥

इति भूमिं सम्प्रार्थ्य शङ्खघण्टानादपूर्वकं बालकं भूमावुपवेशयेत्। दक्षिणा दत्वा तेन बालेन देवब्राह्मणान् प्रणम्य तैराशीर्वादादिभिरभिनन्दितं प्रदक्षिण-मार्गेण गृहाभ्यन्तरमानयेत्।

जीवमातृणां पूजनम्

आचम्य पूजसङ्कल्पं कुर्यात् अद्येहेत्यादि सङ्कीर्त्य अमुकराशेरमुकनाम्नः पुत्रस्य नामकर्मादिकर्मणामुत्तराङ्गत्वेन भित्तौ पट्टे वा लिखितानां कल्याण्यादि-जीवमातृणां पूजनं करिष्ये।

ॐ भूर्भुवः स्वः

इत्यादि मन्त्रं पठित्वा—ॐ भूर्भुवः स्वः कल्याण्यादिसप्तजीवमातरः इहा-गच्छन्तु इह तिष्ठन्तु सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु इति प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत् —

कल्याणी मङ्गला भद्रा पुण्या पुण्यमुखी तथा।
जया च विजया चैव वरदाभयपाणयः॥

पास की भूमि को गोबर से लीपकर कर्णिका सहित अष्टदल कमल बना लिया जाय। तथा "ॐ एतन्ते०" इत्यादि मन्त्र से भूमि की प्रतिष्ठा कर "ॐ पृथिव्यै नमः" इत्यादि मन्त्रों से पञ्चोपचार पूजन किया जाय। जन्मभूमि एवं धरती माता की महिमा एवं उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए—

"रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगते शुभे।"

इत्यादि मन्त्रों से प्रार्थना की जाय कि हे भूमि माता तू ही सबकी परमाधार है और इसीलिए इस नवजात शिशु को हम तेरी गोद में लेटा रहे हैं, तेरी धूल में लोट-लोटकर यह बड़ा होगा, तू इसे सदा सब स्थानों में सुरक्षित रखना और सदा इसकी रक्षा करती रहना। इस मन्त्र को पढते समय भूमि से प्रार्थना करते हुए बालक को भूमि पर लेटा दें।

ॐ कल्याण्यै नमः ॐ मङ्गलायै नमः ॐ भद्रायै नमः ॐ पुण्यायै नमः ॐ पुण्यमुख्यै नमः ॐ जयायै नमः ॐ विजयायै नमः—

इति नाममन्त्रैरावाहनादिनीराजनान्तं सम्पूज्य घृतेन वसोर्धाराः पातयेत्।

ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।

इति मन्त्रेण। ततः प्रार्थयेत —

ब्रह्माणी कमलेन्दु सौम्यवदना माहेश्वरी लीलया
कौमारी रिपुदर्पनाशनकारी चक्रायुधा वैष्णवी।
वाराही घनघोरघर्घरमुखी चैन्द्री च वज्रायुधा
चामुण्डा गणनाथरुद्रसहिता रक्षन्तु नो मातरः॥

इति।

दक्षिणा —

अद्येहेत्याद्युच्चार्य अमुकोऽहममुकराशेरमुकनाम्नोऽस्य बालकस्य दीर्घायुरारोग्याप्तिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हण द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं कृतानां नामकरणसूर्यावलोकनसहितनिष्क्रमणभूम्युपवेशनजीवमातृकापूजनकर्मणां साद्गुण्यार्थं, कलशे आवाहितानां ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहाणां पूजायाः साद्गुण्यार्थञ्च इमां दक्षिणां भूयसीदक्षिणां च नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्येभ्यो दीनानाथेभ्यो विभज्य दास्यामि। ॐ तत्सत्। दक्षिणां दत्त्वा आचारान्महानीराजनादिं कारयित्वा अभिषेकतिलकरक्षाबन्धनमन्त्रपाठादिकं कारयेत्। आवाहितदेवता विसृज्य कृतं कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्। ब्राह्मणान् स्वष्टेबन्धुवर्गादींश्च भोजयित्वा स्वयं भुञ्जीत। इति।

जल-पूजन

उस समय उपस्थित सब लोग शिशु को दीर्घजीवी, आयुष्मान् होने का तथा उसकी माता को (सौभाग्यवती होने का) आशीर्वाद देकर शिशु को माता की गोद में दे दें।

नामकरण, निष्क्रमण और भूम्युपवेशन के विधि-विधान के साथ ही जल-पूजन की विधि भी वहीं उसी समय कर ली जाती है। राजस्थान आदि में इसी को 'जलवा पूजन' कहते हैं। यदि कोई चाहे तो चालीस दिन के पश्चात् या आगे भी किसी अन्य दिन जब प्रसूतिका भली-भांति बाहर चलने-फिरने योग्य हो जाय तो समीपवर्ती नदी या तालाब पर जाकर जल-पूजन की विधि सम्पन्न की जा सकती है।

अथ जलपूजनम्

आचारप्राप्तं नद्यादौ जलपूजनञ्च गुरुशुक्रास्तचैत्रपौषाधिमासांस्त्यक्त्वा बुधचन्द्रगुरुवारेषु अरिक्तयां तिथौ श्रवणपुष्यपुनर्वसुमृगहस्तमूलानुराधासु मासान्ते विहितमपि नामकर्मदिवसे एवाचरन्ति।

इति सूतिकाशुद्धिपूर्वकनिष्क्रमणसूर्यावलोकनभूम्यूपवेशनजलपूजन-
सहितो नामकरणसंस्कारः ।

इस प्रकार नामकरण आदि का विधिविधान सम्पन्न हो जाने के पश्चात् आचार्य आदि को दक्षिणा एवं दीन-अनाथ, आदि को भूयसी दक्षिणा भी एक साथ ही समर्पित की जाय। तथा बहन बेटी नवजात शिशु के माता-पिता की आरती करें। एवं देवताओं के विसर्जन आदि की सम्पूर्ण विधि के पश्चात्—

"यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतामेति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।"

मन्त्र पढ़कर सम्पूर्ण कर्म को ईश्वरार्पण कर दे।

निष्क्रमण नामकरण आदि संस्कारों का विधि विधान समाप्त।

अन्नप्राशन-संस्कार

कर्त्तव्य विधियां

पूर्वाङ्ग—शिशु एवं उसके माता-पिता स्नानादि नित्यकृत्य से निवृत्त हो शुद्ध नवीन वस्त्र धारण कर समग्र आवश्यक सामग्री को यज्ञवेदी के समीप जमा दें और माता शिशु को अपनी गोदी में लेकर यजमान के दायें (यज्ञवेदी के पश्चिम में) बैठ जाय।

मुख्य कर्त्तव्य—(क) गणपत्यादिपूजन एवं यज्ञ। आधाराज्यभागाहुतियों के पश्चात् अन्नप्राशन संस्कार में 'देवीं वाचम्' इत्यादि मन्त्र से लेकर 'श्रोत्रेण यशोऽशीय' तक की विशेष आहुतियां दी जाती हैं। तत्पश्चात् स्विष्टकृत् एवं सर्वप्रायश्चित्तादि नौ आहुतियां देने के बाद संस्रवप्राशनादि किया जाय।

(ख) बालक को षड्रसयुक्त अन्न खिलाना।

(ग) शिशु के आस-पास पुस्तकादि वस्तुएं रखना।

(घ) अग्न्यादि देवों का विसर्जन एवं त्र्यायुषीकरण आदि।

(ङ) ब्राह्मण भोजन।

उद्देश्य एवं महत्त्व

अन्नप्राशन-संस्कार का उद्देश्य एवं महत्त्व प्रत्यक्ष सिद्ध है, तथापि इस सम्बन्ध में प्रथम मयूख में और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। वहीं देखें।

अन्नप्राशनसंस्कारः

पारस्कर गृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे एकोनविंशी कण्डिका

षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् । [१] स्थालीपाकं श्रपयित्वा आज्यभागाविष्ट्वाज्याहुती जुहोति ।

ॐ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनूर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ।। स्वाहेति । [२]

वाजो नो अद्येति च द्वितीयाम् । [३]

स्थालीपाकस्य जुहेति—

प्राणेनान्नमशीय स्वाहाऽपानेन गन्धानशीय स्वाहा चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा । श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहेति । ।।४।।

प्राशनान्ते सर्वान् रसान्त्सर्वमन्नमेकत उद्धृत्याथैनं प्राशयेत् ।।५।।

तूष्णीँहन्तेति वा हन्तकारं मनुष्यां इति श्रुतेः । [६]

अन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मणभोजनमन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मणभोजनम् । [१३]

इति पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डे एकोनविंशी कंडिका समाप्ता ।

अथ प्रयोगः

सपत्नीक कर्ता स्नानं सन्ध्यादिकं च नित्यकृत्यं विधाय पवित्रासन उपविश्य दीपं प्रज्वाल्य स्वस्तिवाचनं कृत्वा कर्मकलशं संस्थाप्याचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य अमुकगोत्रोत्पन्नो अमुक शर्माहं मम सुपुत्रस्य सुपुत्र्यावा अन्नप्राशन-

---

विधि-विधान

बालक-बालिका का पिता (अथवा जो भी कोई संस्कार करवा रहा हो) स्नान-सन्ध्या आदि नित्य-कृत्य से निवृत्त हो यज्ञवेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख पवित्र आसन पर बैठ जाय और

संस्कारकर्मणि निर्विघ्नता-सिद्धये श्रीमन्महागणपातेः पूजनं करिष्ये। इति द्वितीय-मयूखे निर्दिष्ट प्रकारेण गणपतिं सम्पूज्य प्रधानसङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा —

अद्येत्यादि देशकालौ सङ्कीर्त्यामुकोऽहम् मम अमुकराशेः अस्य बालकस्य बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वाराः श्रीपरमेश्वरप्रीतये अन्नप्राशनाख्यं कर्म करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन गणपतिसहितगौर्यादि षोडशमातॄणां पूजनं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये इति सङ्कल्प्य द्वितीयमयूखोक्तविधिना मातृपूजनं-नान्दीश्राद्धं च विधाय होमार्थं वेदीं कृत्वा तत्र पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं शुचिनामानमग्निं संस्थाप्य आचार्यब्रह्मणोर्वरणं कुर्यात्।

वेद्याः ईशाने रुद्रकलशं संस्थाप्य तत्र ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहानाहवाह्य सम्पूज्य रक्षासूत्रमभिमन्त्र्य बालकस्यहस्ते कङ्कणबन्धन कुर्यात्।

तत्र विशेषोपकल्पनीयानि द्रव्याणि —

भोज्यान्नोद्धरणपात्रम्। मधुरादि षड्रसयुक्तानि भोज्यलेह्यचोष्यद्रव्याणि। मधु, घृतंसुवर्णञ्च पुस्तकं, शस्त्रं लेखिनी, वस्त्रं, रजतं, च संस्थापयेत्।

उसके दायीं ओर उसकी पत्नी शिशु को गोद में लेकर बैठ जाए। धूप, दीप इत्यादि प्रज्वलित कर प्रथम मयूख में प्रदर्शित विधि के अनुसार कर्म-कलश की स्थापना कर गणपति पूजनादि सम्पूर्ण पूर्वांग विधिवत् सम्पादित किया जाय। जैसे कि—आचार्य, ब्रह्मा आदि का वरण रक्षा-सूत्र बंधन, मुख्य संकल्प, गणपति सहित गौर्यादि षोडशमातृगणों का पूजन, वसोर्धारा, नान्दी-श्राद्ध, होमवेदी के ईशान कोण मे रुद्रकलश की स्थापना, ब्रह्मा वरुणादि सहित नवग्रहों का आवाहन पूजन आदि किया जाए। संस्कार्य शिशु एवं उसके माता-पिता के हाथों में 'रक्षा सूत्र' अथवा कंकण बन्धन एव दिग्-रक्षण आदि विधियां भी निर्दिष्ट विधिविधान के अनुसार सम्पन्न की जायँ।

यज्ञारम्भ

इसके पश्चात् अन्नप्राशन संस्कार के लिए आवश्यक हवन आरम्भ होता है।

सर्वप्रथम कुशकण्डिका की विधि सम्पन्न की जाय। यजमान के बायें हाथ प्रणीता पात्र और वेदी तथा प्रणीतापात्र के मध्य प्रोक्षणी पात्र जल से भरकर रख दिया जाय और 'शुचि' नामक अग्नि स्थापित कर १२ अंगुल लम्बी अंगूठे जैसी मोटी पलाश की तीन समिधाओं की खड़े होकर आहुति दी जाए। ईशान कोण से लेकर उत्तर तक यज्ञवेदी का पर्युक्षण करने के पश्चात् ब्रह्मा के द्वारा अन्वारब्ध यजमान निम्न विधि से हवन करे—

पहले अग्नि में सर्वयज्ञोपयोगी 'ॐ प्रजापतये स्वाहा' से लेकर 'ॐ सोमाय स्वाहा' तक चार घृताहुतियां दी जाय।

इन चार आघाराज्यभागाहुतियों के पश्चात् अन्नप्राशन संस्कार में विशेष रूप से दी जाने वाली दो घृताहुतियां बिना अन्वारम्भ के दी जाती हैं।

ततः कुशकण्डिकां विधाय शुचिनामानमग्निं संस्थापयेत् ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः शुचिनामाग्ने ! इहागच्छ इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव इति प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा च शुचिनामाग्नये नमः इति नाममन्त्रेणावाहनादि नीराजनान्तं सम्पूज्य तिष्ठन् घृताक्ताः तिस्रःसमिधो जुहुयात् ।

ततः इशानाद्युत्तरपर्यन्तं पर्युक्षेत् ।

ततः जाम्ववाच्यब्रह्मणान्वारब्धो जुहुयात् ।

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम (इति मनसा)

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम ।

ओ३म् अग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम ।

ओ३म् सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम । (इत्याज्यभागौ)

ततोऽन्वारम्भं त्यक्त्वा द्वे आज्याहुती जुहोति ।

(देवीं वाचमिति भार्गवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वाग्देवता आज्यहोमे विनियोगः)

ओ३म् देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु । स्वाहा । इदं वाचे न मम ।

(वाजो न इति देवा ऋषयस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्न देवता आज्यहोमे विनियोगः) ।

'ओ३म् देवी वाचं' इत्याद्युपर्युक्तं मन्त्रं पुनः पठित्वा—

ओ३म् वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ । ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् । स्वाहा ।

इन दो आहुतियों में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि **'ओ३म् देवीं वाचमजनयन्त'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर पहली आहुति दी जाती है तथा दूसरी आहुति में भी पहले इसी मन्त्र को दुबारा पढ़ा जाता है और उसके पश्चात् 'ओ३म् वाजो नो अद्य' इत्यादि मन्त्र पढ़कर दूसरी घृताहुति दी जाती है । अर्थात् दूसरी आहुति में आहुति तो एक है, किन्तु मन्त्र दो पढ़े जाते हैं ।

इन दोनों मन्त्रों के अर्थ ये हैं—

देवीं वाचं—प्राणादि वायुरूप देवताओं ने इस देवी अर्थात् द्योतमान वाक् या वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान की है उस वैखरी वाणी को अनेक रंग रूप वाले मनुष्यरूपी पशु बोलते हैं। अन्नादि पदार्थ एवं ओज तथा बल को प्रदान करने वाली परम आनन्ददायिनी गौ के समान वह वाक् हमारे लिए सदा सुलभ हो और हम वेद मन्त्रों से उसकी सदा स्तुति किया करें। (यहां पश्यति इति पशुः) पशु शब्द का यह यौगिक अर्थ है । वेद में प्रायः शब्दों के रूढार्थ न

इदं वाचे वाजाय च न मम ।

ततः स्रुवेण चरुमभिधार्यं आज्यप्लुतेन स्थालीपाकेन जुहोति ।

(प्राणेनेत्यादीनां चतुर्णां प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः अन्नं देवता होमे विनियोगः) ।

ओ३म् प्राणेनान्नमशीय स्वाहा ।। इदं प्राणाय न मम ।

ओ३म् अपानेन गन्धानशीय स्वाहा ।। इदमपानाय न मम ।

ओ३म् चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा ।। इदं चक्षुषे न मम ।

ओ३म् श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा ।। इदं श्रोत्राय न मम ।

ततश्च २४४-२४५ पृष्ठयोः प्रदत्ता आघाराद्यास्त्रयोदशाहुतीर्जुहुयात् ।

ततश्च स्विष्टकृद्धोमः —

ओ३म् अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।

लेकर यौगिक अर्थ ही ग्रहण किये जाते हैं । यूं भी "पशुरेव स देवानाम्" इस श्रुति में मनुष्य को भी पशु कहा भी गया है ।

"वाजो नो अद्य" अन्न (अन्नाधिष्ठातृ देवता) हमें सदा दान देने के लिए प्रेरित करते रहें । यह अन्न ही ऋत्वनुकूल देवताओं के प्रीतिदायक यज्ञादि का मुख्य साधन है और यह अन्न ही मुझे वीर अर्थात् पुत्र-पौत्रादि से युक्त बनाने वाला है । इस प्रकार अन्न का स्वामी बनकर मैं सब दिशाओं—दिग् दिगन्तों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ बनूं (हे भगवन् ! मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये) ।

'प्राणेनान्नमशीय' इत्यादि मन्त्रों के अर्थ ये हैं—

हे अग्नि देव ! आपकी कृपा से मैं अपने प्राणवायु के द्वारा सदा अन्न का उपभोग करता रहूं । अपानवायु से सुगन्ध या दुर्गन्ध को पचालूं अर्थात् मेरे पेट में से अपान वायु की दुर्गन्ध न निकले । मैं अपने नेत्रों से विश्व के नानाविध रूपों का दर्शन कर सकूं और मेरे कान सदा इतने स्वस्थ और नीरोग रहें कि उनके द्वारा मैं यशस्वी पुरुषों की यशोगाथाओं तथा अपने यश को भी सदा सुनता रहूं । भाव यह कि मेरे प्राणापान आदि पञ्चप्राण और पांचों कर्मेन्द्रियां सदा ठीक कार्य करती रहें ।

इसके पश्चात् ओ३म् भूः स्वाहा इदम् अग्नये न मम । ओ३म् भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम । ओ३म् स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम । इन तीन मन्त्रों से घृताहुतियां देने के पश्चात्—

१. ओ३म् त्वन्नो अग्ने, २. ओ३म् स त्वन्नो अग्ने ३. ओ३म् अयश्चाग्ने, ४. ओ३म् ये ते शतं ५. ओ३म् उदुत्तमम् ।

इत्यादि पांच मन्त्रों से सर्वप्रायश्चित्त संज्ञक ५ घृताहुतियां दे ।

ततः संस्रवप्राशनम्। पवित्रप्रतिपत्तिः। प्रणीताविमोकः। ब्रह्मणे पूर्णपात्र-प्रदानम्।

ततः त्र्यायुषीकरणं कुर्यात् । मध्वाज्यसहितमन्नमेकस्मिन् रजतादिपात्रे मातुः स्वस्य वा क्रोडे स्थितं बालकं देवतापुरतोऽनामिकया प्राशयेत् । मन्त्रो यथा —

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।। हन्त ।

ततस्तूष्णीं पञ्चवारं पुनः प्राशयेत्। ततो जलेन त्रिवार मुखं शोधयेत्।

ततो बालकं स्वाङ्कात् पुस्तकादिवस्तुमध्ये उत्सृजेत् । तदा स बालको वस्त्रशस्त्रलेखिनीपुस्तकादिषु यत्प्रथमं गृह्णाति तेन तस्य जीविका भवेदिति ज्ञातव्यम्। ततः सङ्कल्प्य आचार्यादिभ्यो दक्षिणां भूयसीं दक्षिणाञ्च दद्यात्।

तदनन्तर —

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

मन्त्र मन में पढ़कर प्राजापत्याहुति दे। उसके बाद—

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।

मन्त्र से स्विष्टकृद्होम करके संश्रव प्राशन करें (आहुति देने के पश्चात् 'न मम' कहते हुए प्रोक्षणीपात्र में टपकायी हुई घृतविन्दुओं को अपनी दोनों हथेलियों में मसलकर सूंघ लेवे)।

तत्पश्चात् पवित्र का अग्नि में होम तथा प्रणीतापात्र को उलट दे और ब्रह्मा को पूर्ण-पात्र प्रदान करे।

बालक को अन्न खिलाना

तब सभी रसों से युक्त लेह्य, चोष्य और खाद्य तीनों प्रकार के पदार्थों को किसी चांदी आदि की कटोरी में भर लें और उसे चांदी के चम्मच, आचमनी या अनामिका आदि से पिता या माता की गोद में बैठे हुए बालक को खिलाये। उस समय पठनीय 'अन्नपते' इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है- —

हे अन्न के पति भगवन्, हमें अमीवा जैसे सूक्ष्म कीटाणुओं या रोगाणुओं से मुक्त बल-दायक अन्न प्रदान करते रहिये और अन्न का दान करने वाले को इस भवसागर से पार कर दीजिये अथवा दुःखों से दूर कर दीजिये तथा हमारे दुपायों (मनुष्यों) व चौपायों को बल प्रदान करते रहिये। तदनन्तर बिना मन्त्र के ही पांच बार और खिलाएं।

इसके पश्चात् बालक के आस पास पुस्तक आदि वस्तुएँ रख दी जायँ। इनमें से जिस वस्तु

देवान् विसृज्य त्र्यायुषीकरणं कृत्वाशीर्वादं गृहीत्वा महानीराजनं च कृत्वा ईश्वरार्पणं विधाय ब्राह्मणान् भोजयित्वा इष्टबन्धुभिःसह स्वयं भुञ्जीत।

इति पारस्करोक्तोऽन्नप्राशनसंस्कारप्रयोगः समाप्तः।

को वह पहले पकड़े या छुए उसीसे उसकी जीविका चलेगी ऐसा समझा जाता है। इसके पश्चात् सङ्कल्प करके आचार्य आदि को दक्षिणा तथा भूयसी दक्षिणा देवे और अग्न्यादि देवताओं की पूजा कर उनका विसर्जन कर दे।

अन्त में 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इत्यादि मन्त्रों से स्रुवे से यज्ञभस्म लेकर उससे अपने तथा शिशु के मस्तक, गर्दन, दायीं भुजा तथा हृदय पर तिलक कर ले। इसके पश्चात् कोई सौभाग्यवती बहन, बेटी संस्कार्य बालक के माता-पिता की आरती करे और उपस्थित विद्वान्—

त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः।

हे बालक! तुम अन्न के स्वामी बनकर अपने जीवन में अन्न का खूब उपभोग करते रहो, यह आशीर्वाद दें। तथा—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

मन्त्र पढ़कर यज्ञफल ईश्वरार्पण कर ब्राह्मण भोजन के पश्चात् स्वयं भी अपने बन्धु-बान्धवों एवं इष्टमित्रों के साथ भोजन करे।

—पारस्करोक्त अन्नप्राशन-संस्कार समाप्त—

चूडाकरण संस्कार

विवेचन

हिन्दी का 'चोटी' शब्द सं० चूड़ा से ही बना है। अतएव 'चूड़ा' इस नाम से ही स्पष्ट सिद्ध एवं प्रमाणित होता है कि यह 'मुण्डन' संस्कार न होकर शिखा या चोटी रखने का संस्कार है। 'चौल' एवं 'मुण्डन' संस्कार इसके नामान्तर भले ही हों। यह बात दूसरी है कि आजकल 'चौल' और 'चूड़ाकरण' इन दोनों शब्दों की अपेक्षा 'मुण्डन संस्कार' यह शब्द अधिक चल निकला है। चूड़ाकरण संस्कार एक वर्ष की आयु का जब बालक हो जाता है, तब उस समय किया जाता है, जबकि उसकी चूड़ा या चोटी रखने के लिए लम्बे बाल उग आए हों और वह चोटी ऐसी हो जिसमें शिखा-बन्धन किया जा सके। क्योंकि कहा गया है कि—

'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।'

इस प्रकार एक वर्ष में शिशु के इतने लम्बे बाल हो जाते हैं कि बाकी सारे सिर के बालों के मुण्डन हो जाने पर रखी गयी शिखा में ग्रन्थि लगाई जा सके।

इस शास्त्रीय महत्त्व के सिवा लौकिक दृष्टि से भी चूड़ाकरण संस्कार का अन्य महत्त्व भी है। एक दो बार सिर के जन्मजात बाल यदि काट दिए जायें तो दुबारा नए सुन्दर-स्वस्थ बाल उगते हैं और इससे खुजली आदि चर्म-रोगों की भी आशंका नहीं रहती।

प्रमुख कर्त्तव्य

पूर्वाङ्ग—१. पूजा और हवन सामग्री जुटाना।

२. मुण्डन के लिए विशेष रूप से गर्म जल और उसमें मिलाने के लिए घी, मक्खन और दही।

३. कुशाएं तथा सेही का कांटा (यदि उपलब्ध हो सके तो)।

४. गोबर।

५. बाल रखने के लिए नवीन पीला वस्त्र।

६. शिशु के मुण्डित सिर पर लगाने के लिए हल्दी स्वस्तिक बनाने के लिए कुकुम (केसर या रोली)।

मुख्य विधि

१. सङ्कल्प, स्वस्तिवाचन एवं गणपत्यादि पूजन हवन आदि।

२. शिशु के सिर के बालों की तीन जूटिकाएं बनाना और उन्हें क्रमशः विधिपूर्वक काटना।

३ शिखा को बचा कर सारे सिर का मुण्डन।

४. शिशु का स्नान एवं नवीन वस्त्र तथा सिर पर हल्दी आदि लगाना।

६. आशीर्वाद एवं ब्राह्मण भोजन आदि।

पूर्वाङ्ग

ज्योतिष शास्त्रोक्त शुभमुहूर्त के समय जिस दिन शिशु का चूड़ाकरण (मुण्डन) संस्कार करना हो उस दिन बालक के माता-पिता स्नान-सन्ध्यादि नित्यकृत्य से निवृत्त हो शुद्ध पवित्र अहत वस्त्र पहनकर यज्ञ-मण्डप में यज्ञवेदी के पश्चिम में आकर यथास्थान बैठ जायँ और शिशु को माता अपनी गोद में ले ले।

देश-काल आदि के संकीर्तन के पश्चात् इस शिशु की शुद्धि, एवं परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए 'इसका आज चूड़ाकरण संस्कार करूंगा' यह सङ्कल्प करे। तत्पश्चात् निर्विघ्न कर्म समाप्ति के लिए स्वस्ति-वाचन एवं गणपत्यादि का पूजन करे।

यज्ञादि

तदनन्तर तीन ब्राह्मणों के भोजन का सङ्कल्प कर यज्ञवेदी में अग्नि-स्थापन से पूर्व निम्न प्रकार से कुशकण्डिका करे—

पहले वेदी में इस प्रकार भू-संस्कार करे :—तीन कुशों से वेदी-भूमि को साफ कर उन कुशों को ईशान कोण में फेंक दें। फिर गोबर व जल से लीपकर स्रुवा के मूल में उत्तराग्र वेदी में तीन रेखाएं खींचे। अनामिका व अंगूठें से इन रेखाओं में से मिट्टी उठा कर फेंके और जल सिंचन करे। तब कांसे के पात्र में सभ्य नामक अग्नि लाकर पश्चिमाभिमुख उस अग्नि की स्थापना करे।

तत्पश्चात् पुष्प, चन्दन, ताम्बूल और वस्त्रों को लेकर 'ॐ अद्य' इत्यादि वाक्य पढ़ के यजमान ब्रह्मा एवं आचार्य का वरण करे और इनके हाथ में पुष्प द्रव्य दे। आचार्य व ब्रह्मा उन्हें लेकर 'ॐ वृतोऽस्मि' कहे। तब यजमान 'यथाविहितं कर्म कुरु' कहे और आचार्य प्रत्युत्तर मे कहे 'करवाणि'। तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन बिछा कर उस पर पूर्व की ओर अग्रभाग रखते हुए कुश बिछाकर आचार्यादि को अग्नि की प्रदक्षिणा कराके 'अस्मिन् कर्मणि त्वं मे आचार्य, ब्रह्मा भव' ऐसा कहकर आचार्य और ब्रह्मा के 'भवानि कहने के बाद आचार्य व ब्रह्मा को आसन पर उत्तराभिमुख बैठाकर जल से भरे प्रणीतापात्र को सामने रख के कुशों

से आच्छादन कर आचार्य व ब्रह्मा का मुखावलोकन करके अग्नि से उत्तर में कुशों पर प्रणीता-पात्र को पूर्वाग्र रखे।

तत्पश्चात् चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के चारों ओर इस प्रकार परिस्तरण करे—एक चौथाई भाग अग्निकोण से ईशान दिशा तक, एक चौथाई भाग ब्रह्मा के आसन से अग्नि तक एक चौथाई नैऋत्य कोण से वायुकोण तक और शेष चौथाई भाग अग्नि से प्रणीता तक बिछा दे। फिर अग्नि से उत्तर में पात्रासादन करे। पवित्र छेदनार्थ तीन कुश, पवित्रकरणार्थ दो कुश, प्रोक्षणी पात्र, आज्यस्थाली, सम्मार्जन-कुश, उपयमन-कुश, पलाश की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, पूर्णपात्र आदि को यथास्थान रखे। इनके उत्तर की ओर जल. घी या दही अथवा मक्खन, सेही का कांटा, बारह अंगुल लम्बे २७ कुश. ताम्बा लोहा मिश्रित धातु का बना छुरा, बैल का गोबर, व दक्षिणा आदि को यथास्थान रखकर नाई को भी पहले से बुलाकर बैठा दे। तत्पश्चात् प्रणीता के जल को प्रोक्षणीपात्र में डालकर उससे पवित्रों से तीन बार प्रोक्षणीस्थ जल का उत्पवन करे तथा आज्यस्थाली आदि पदार्थों का प्रोक्षण कर प्रोक्षणीपात्र को अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में रख दे। तब आज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत डाले। स्रुव तपन, आज्योत्पवन आदि विधि सम्पादित कर बायें हाथ में उपयमन कुशाएं लेकर बारह अंगुल लम्बी घृताक्त पलाश-समिधाओं का अग्नि में आधान करे। तदनन्तर यज्ञवेदी के चारों ओर ईशानकोण से लेकर उत्तर तक जल-सिंचन करे।

अथ चूडाकरण संस्कारः

पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे प्रथमा कण्डिका

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्। [१] तृतीये वाऽप्रतिहते। [२] षोडशवर्षस्य केशान्तः। [३] यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्। [४] ब्राह्मणान्भोजयित्वा माता कुमारमादायाहते वाससी परिधायाङ्क आन्वारब्ध आज्याहुतीर्हुत्वा प्राशनान्ते शीतास्वप्सूष्णा आसिञ्चति वक्ष्यमाणमन्त्रेण —

(उष्णेनेति परमेष्ठी ऋषिः प्रतिष्ठाछन्दः लिङ्गोक्ता देवता उष्णोदकासेके विनियोगः)।

ॐ उष्णेन वायऽउदकेनेह्यदिते केशान्वप ॥ [६]

केशश्मश्रिवति च केशान्तो। [७]

अथात्र नवनीतपिण्डं घृतपिण्डं दध्नो वा प्रास्यति। [८]

तत आदाय दक्षिणं गोदानमुन्दति वक्ष्यमाणमन्त्रेण—

(सवित्रेति प्रजापतिर्ऋषिः गायत्री छन्दः आपो देवता उन्दने विनियोगः)।

ॐ सवित्रा प्रसूता दैव्याऽआपा उन्दन्तु ते तनूम्। [९]

तदनन्तर ब्रह्मा से अन्वारब्ध यजमान प्राजापत्यादि १४ आहुतियां देकर संस्रवप्राशन कर ले। तब हाथ धोकर आचमन कर ब्रह्मा को पूर्णपात्र एवं आचार्यादि को दक्षिणा दे। तथा आचार्य 'ॐ सुमित्रिया' इत्यादि मन्त्र पढ़कर प्रणीता के जल से यजमान व शिशु के सिर पर छींटे देकर 'ॐ दुर्मित्रिया' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए प्रणीतापात्र को उलट दे तथा यज्ञवेदी के चारों ओर जिस क्रम से बर्हि (कुशा) बिछायी गयी थी उसी क्रम से उन्हें वापिस उठाकर 'देवागातुविदो' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उनका अग्नि में होम कर दे।

गर्म जल में ठण्डा जल मिलाना

तब पहले से गर्म किए हुए जल में 'उष्णेन वा य' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उचित मात्रा में ठण्डा पानी तथा मक्खन, दही व थोड़ा सा घी भी डाल दे। इस समय संस्कार्य बालक के सिर के बालों की दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर में जूड़े की भांति बांध दे।

यजमान के दक्षिण में बैठी उसकी पत्नी (बालक की माता) की गोद में बैठे शिशु के दाहिने जूड़े को 'सवित्रा प्रसूता' इत्यादि मन्त्र पढ़कर उस गर्म जल से भली-भांति भिगो दे और फिर यदि उपलब्ध हो तो सेही के कांटे से या अंगुलियों से उस जूड़े के बालो को अलग-अलग तीन भागों में बांट दे।

त्र्येण्या शलल्या विनीय त्रीणि कुशतरुणान्यन्तर्दधाति। मन्त्रो यथा —

(ओषधे इति प्रजापतिर्ऋषिः यजुश्छन्दः ओषधिर्देवता कुशतरुणान्तर्धाने विनियोगः)।

ॐ ओषधे त्रायस्व (स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः) ॥ [१०]

ततः सकुशतरुणान्केशान्वामकरे गृहीत्वा दक्षिणकरेण क्षुरं गृह्णाति। मन्त्रो यथा —

(शिवो नामेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुश्छन्दः क्षुरो देवता क्षुरग्रहणे विनियोगः)।

ॐ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥

ततः क्षुरमादाय कुशतरुणान्तर्हितेषु केशेषु निदधाति वक्ष्यमाणमन्त्रेण —

(निवर्तयामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुश्छन्दः क्षुरो देवता केशेषु क्षुरनिधाने विनियोगः)।

ॐ निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥

ततः सकेशानि कुशतरुणानि क्षुरेण प्रछिनत्ति। मन्त्रो यथा —

(येनावपदित्यस्य आलम्भायनऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः सविता देवता केशच्छेदने विनियोगः)।

कुश-संयोजन

इसके पश्चात् उन बालों के पहले भाग में **'ॐ ओषधे त्रायस्वैनम्'** मन्त्र पढ़कर तीन कुशाएं लगा दे।

उस्तरे से मुण्डन

इस प्रकार जब बालों के साथ कुशा लगा दी जाय तो 'शिवो नामासि' आदि मन्त्र पढ़ते हुए उस्तरा हाथ में लेकर 'निवर्तयामि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उस उस्तरे को सिर के साथ लगाकर 'येनावपत्सविता' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए दाहिने केशों के तीन भागों में से पश्चिम भाग को कुश सहित काट दे।

कटे हुए बालों को गोबर में रखना

उन कुश सहित कटे हुए बालों को गोबर में रख कर दबा दे (ताकि वे इधर-उधर उड़ें नहीं)।

ॐ यनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्यं जरदष्टिर्यथाऽसत् ।। [११]

सकेशानि प्रच्छिद्यानडुहे गोमयपिण्डे प्रास्यत्युत्तरतो ध्रियमाणे। [१२] एवं द्विरपरं तूष्णीम् । [१३] इतरयोश्चोन्दनादि । [१४]

छेदने मन्त्रविशेषः —

(त्र्यायुषमित्यस्य नारायणऋषिरुष्णिक्छन्दोऽग्निर्देवता केशच्छेदने विनियोगः)।

ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ।। [१५]

अथोत्तरतो। छेदने मन्त्रविशेषः —

(येनेति वामदेव ऋषिर्यजुश्छन्दः क्षुरो देवता केशच्छेदन विनियोगः) ।

ॐ येन भूरिश्चरा दिवञ्ज्योक्च पश्चाद्धि सूर्यम् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ।। [१६]

इति मन्त्रेण छित्वा गोमयप्रसनम्पूर्ववत् । जलस्पर्शः । त्रिः क्षुरेण शिरः प्रदक्षिणं परिहरति समुखं केशान्ते । [१७] मन्त्रो यथा —

(यत्क्षुरेणेति वामदेवऋषिर्यजुश्छन्दः क्षुरो देवता क्षुरपरिहरणे विनियोगः) ।

ॐ यत्क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्त्रा वा वपति केशांच्छिन्धि, शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीः ।। [१८]

इसके पश्चात् दाहिने भाग के बचे हुए बालों के शेष दो भागों को भी इसी प्रकार बिना मन्त्र के कुश सहित काट दे ।

तदनन्तर पश्चिम के जूड़े को भी उसी प्रकार भिगोकर उसके तीन भाग कर तीनों को इस प्रकार काटना चाहिए—

उसकी पहली (पश्चिम) जूटिका को काटते समय 'त्र्यायुषं जमदग्ने' इत्यादि मन्त्र पढ़ा जाय और शेष दो जूटिकाओं को पूर्ववत् काट लिया जाय ।

उसके पश्चात् सिर के उत्तर भाग के जूड़े को भिगोकर उसके प्रथम भाग को 'येन भूरिश्चरा दिवम्' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए काट लिया जाय ।

तदनन्तर शिशु को स्नान करवाकर नवीन वस्त्र पहना दें। उसके सिर पर हल्दी लगा कर केसर, कुङ्कुम से स्वस्तिक बना दें और पुष्प-माला से अलंकृत कर माता की गोद में बैठा दें ।

मुखमिति च केशान्ते । [१६]
ताभिरद्भिः शिरः समुद्य नापिताय क्षुरं प्रयच्छति । वक्ष्यमाण मन्त्रेण —

(अक्षण्वन्नित्यस्य वामदेवऋषिर्यजुश्छन्दः क्षुरो देवता क्षुरप्रदाने विनियोगः) ।

ॐ अक्षण्वन् परिवप ।। [२०] इति

यथामङ्गलं केशशेषकरणम् । [२१] अनुगुप्तमेतꣳसकेशं गोमयपिण्ड निधाय गोष्ठे पल्वल उदकान्ते वाऽऽचार्याय वरं ददाति । [२२] गां केशान्ते । [२३] संवत्सरं ब्रह्मचर्यमवपनं च केशान्ते द्वादशरात्रꣳषड्रात्रं त्रिरात्रमन्तः । [२४]

ततः पर्युप्तशिरसं सुस्नातं नवीनवस्त्रपिहितं पुष्पमालादिभिश्चालङ्कृतं शिशुं पित्रादिसमीपमानीयाग्नेः पश्चादवस्थापयेत् ।

ॐ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतआजातमग्निम् ।
कविꣳसम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः ।। स्वाहा ।

इति मन्त्रेण पूर्णाहुतिः । तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना त्र्यायुषं कुर्यात् ।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः ।। इति ललाटे ।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।। इति ग्रीवायाम् ।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् ।। इति दक्षिणबाहुमूले ।

ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ।। इति हृदि ।

अनेनैव क्रमेण शिशोर्ललाटादावपि । तत्र तत्ते अस्तु इति विशेषः । ततः संस्कारकर्ता स्वाचार्याय गोनिष्क्रयीभूतां दक्षिणां दत्वा मातृविसर्जनं च कृत्वा दशब्राह्मणान् भोजयेत् । स्वयञ्च भुञ्जीत ।

इति चूडाकरण संस्कारः ।

इसके पश्चात्—

ॐ मूर्धानं दिवो अरतिम् ।

इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए यज्ञाग्नि में पूर्णाहुति दे और स्रुवे से यज्ञभस्म लेकर त्र्यायुषीकरण करे । आचार्य, ब्रह्मा एवं अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणा एवं भूयासी दक्षिणा देकर ब्राह्मणभोजन के पश्चात् स्वयं भी सानन्द भोजन करे ।

---

१. पूर्णाहुति में यह मन्त्र भी प्रयुक्त होता है—

ॐ पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जꣳ शतक्रतो ।।

अन्त में ॐ सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा मन्त्र बोलकर तीन बार पूर्णाहुति और **'वसो पवित्रमसि'** इत्यादि मन्त्र से यज्ञाग्नि में घृतधारा दी जाती है ।

अथ कर्णवेधः

स च तृतीये पञ्चमे वा वर्षे ज्योतिःशास्त्रोक्तशुभमासे शुक्लपक्षे पुष्य-चित्रारेवत्यादिनक्षत्रान्वितशुभवासरे शुभमुहूर्त्ते कार्यः । मङ्गलद्रव्ययुक्तजलेन कृतस्नानोऽहते वाससी परिधाय कृतमङ्गलतिलकः कुमारपिता तस्मिन्नसन्निहिते पितृव्यादिर्वा शुभासनउपविश्याचम्य प्राणानायम्य देशकालकीर्त्तनान्ते—अस्य कुमारस्यायुरभिवृद्धिव्यवहारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं कर्णवेधं करिष्ये । तदङ्गत्वेन निर्विघ्नार्थं गणपतिपूजनं करिष्ये—इति संकल्पपुरस्सरं गणेशपूजां विधाय (गणेशसरस्वतीब्रह्मविष्णुशिवान्नवग्रहांल्लोकपालान् विशेषेण कुलदेवतां ब्राह्मणांश्च प्रणम्य) शुभासने प्राङ्मुखस्थस्य भूषणवासोभिरलंकृतस्य कुमारस्य हस्ते मधुरं दत्वा—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

इति मन्त्रेण दक्षिणकर्णमभिमन्त्र्य—

ॐवक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णं प्रियꣳसखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वञ्ज्या इयꣳसमने पारयन्ती ॥

कर्णवेध संस्कार तीसरे वा पाँचवें वर्ष ज्योतिःशास्त्रोक्त शुभमास में शुक्लपक्ष में पुष्य चित्रा रेवती आदि नक्षत्र युक्त शुभ दिन शुभ महूर्त्त में करना चाहिये । मङ्गल द्रव्य युक्त जल से स्नान कर चीरेदार शुद्ध दो वस्त्र धारण करके माङ्गलिक तिलक लगाके बालक का पिता या चाचा आदि शुभासनपर बैठ प्राणायाम करके देशकाल कीर्त्तन के अन्त में इस कुमार की आयुवृद्धि और व्यवहारसिद्धि द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के अर्थ कर्णवेध संस्कार मैं करूंगा, ऐसे संकल्प पूर्वक निर्विघ्नार्थं गणेश जी का पूजन करके गणेश, सरस्वती तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह, लोक-पाल, और विशेष कर कुलदेवता को तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करके वस्त्राभूषणों से शोभित बालक को शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठावे ॥

तदनन्तर बालक के हाथ में खाने के लिए मिठाई देकर (भद्रं कर्णेभिः०) मन्त्र से दाहिने कान का अभिमन्त्रण करके वक्ष्यन्ती० मन्त्र से बांयें कान का अभिमन्त्रण करे अर्थात् दहिने बायें

इति मन्त्रेण वामकर्णमभिमन्त्रयेत्। ततो बालस्य कर्णवेधस्थलं मङ्गलसूत्रोपेतया सुवर्णरजतादिसूच्या सुभगस्त्रिया, चिकित्सकेन स्वर्णकारादिना वा वेधयेत्। कुमारस्य दक्षिणकर्णं पूर्वम्, कुमार्यास्तु वामकर्णं पूर्वं वेधयेत्। तस्मिन् समये मधुरादिदानम्। ततो ब्राह्मणान् भोजयित्वा तेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा तेभ्य आशिषो गृहीत्वा सुवासिन्यै च कुङ्कुमताम्बूलादि दत्वा गणपतिं विसृजेत्। पुंसः सूर्यरश्मिप्रवेशयोग्यं स्त्रीणां च यथेच्छं रन्ध्रं वेधयेत्।

इति कर्णवेधः ॥६॥

कान की ओर देखता हुआ उस २ मन्त्र को पढ़े। माङ्गलिक सूत से युक्त सुवर्ण या चांदी की बनवाई हुई सुई से सौभाग्यवती चतुर स्त्री के द्वारा या सुवर्णकारादि द्वारा बालक के बेधन योग्य कान के स्थल को बेधन करावे। बालक का दाहिना और कन्या का बांया कान पहिले छिदावे। उस समय बालक को कुछ उसकी प्रिय मीठी वस्तु खिलाए। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराके उन्हें दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद लेके और सुवासिनी स्त्री को केशर पानादि देकर गणेश जी का विसर्जन करे। बालक के कान में सूर्य की किरण प्रवेश हो सकने योग्य और कन्या के छिद्र को आभूषण के योग्य बढ़ावे॥

पञ्चम मयूख

शैक्षणिक-संस्कार

(यज्ञोपवीत आदि)

अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा ।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ॥

—कुमारसम्भवम ५-३०

विद्यारम्भ संस्कार

विवेचन

आज कल तो नगरों में प्रायः माता और पिता दोनो ही प्रातः ही काम पर निकलते हैं। और अपने बच्चों को तीन वर्ष का होते ही वे पढ़ने के लिये नर्सरी स्कूल में प्रविष्ट करवा देते हैं। तीन वर्ष का बालक पढ़ेगा तो क्या, स्कूल या नर्सरी में ५-६ घण्टे तक बालक की देख भाल हो जाती है। अभी वह वहाँ कुछ खिलौनों से खेलता रहता है।

ये नर्सरी स्कूल भी मा बाप की विवशता का लाभ उठा कर मन मानी फीस वसूल करते हैं। कम से कम पचीस तीस रुपये मासिक से लेकर सौ दो सौ रुपये मासिक तक तो फीस और ऊपर से नाना विध चन्दे यूनीफार्म आदि के व्यय अलग।

किन्तु पहले ऐसा नहीं होता था। 'पञ्चमे वर्षे विद्यारंभं कारयेत्' इस नियम के अनुसार पांचवे वर्ष में बालक की पढ़ाई आरम्भ होती थी। सो भी यूंही नहीं होती, मुहूर्त देख कर विधि-पूर्वक विद्यारम्भ होता था। बालक को पाठशाला में लेजाकर या घर पर ही गणेश सरस्वतीआदि के पूजन के पश्चात् पाटी पर कुङ्कुम आदि बिछा कर अंगुली से लिखना सिखाया जाता था। पहले 'ॐ नमः सिद्धम' लिखाया और बुलाया जाता था। फिर प्रायः गिनती तथा ब्राह्मण बालक को शब्द रूपावली, अष्टाध्यायी आदि के सूत्र मौखिक रूप से कण्ठस्थ कराये जाते थे। इसी बीच बालक लिखना पढ़ना भी सीख लेता था। बालक का जब विद्यारम्भ किया जाता था तो गुरुजी का पूजन कर उन्हें साफा और दक्षिणा आदि भेंट किये जाते थे तथा गणेश जी के प्रसाद स्वरूप लड्डू बाँटे जाते थे। बस इसके बाद कोई फीस आदि नहीं देनी पड़ती थी। हाँ गुरुजी तथा उनके परिवार के पालन-पोषण का दायित्व समाज अपने ऊपर ले लेता था। आज भी यत्र-तत्र गावो में और कहीं कहीं शहरों में भी यह प्राचीन परिपाटी सुरक्षित दिखाई देती है। इस प्रकार धनी हो या निर्धन सभी लोग समान रूप से पढ़ लिख जाते थे और निरक्षरता का तो कहीं नाम भी नहीं था। किन्तु आज पाश्चात्य शिक्षा के कारण बहुसंख्यक जन निरक्षर हैं। इसके विपरीत अब बड़े बूढ़ो को पढ़ाने के लिये प्रौढ़ पाठशालाएं खोली जाती हैं। बूढ़े तोते पढ़ेंगे तो क्या उनके नाम पर सरकार का लाखों रुपया व्यय अवश्य हो जाता है।

आवश्यक सामग्री—विद्यारम्भ संस्कार के लिए कुछ विशेष सामग्री अपेक्षित नहीं है। केवल यज्ञ व पूजन द्रव्य और गुरुजी को देने के लिये साफा एक लकड़ी की पाटी (तख्ती) और उस पर बिछाने के लिये कुकुम आदि तथा गुरुजी के गले में डालने के लिए हार आदि।

विद्यारम्भ संस्कार।

अथ प्रयोगः

शुभमुहूर्ते शिशुना सहितो यजमानो मङ्गल स्नात्वाऽहते वाससी परिधाय ललाटे कृततिलकः शुभासनउपविश्याचम्य प्राणायामं विधाय देशकालकीर्त्तनान्ते अस्य कुमारस्य लेखनवाचनादिविपुलविद्याज्ञानप्राप्तये विद्यारम्भं करिष्ये-इति सकल्पपुरस्सरं निर्बिध्नार्थं गणपतिपूजनं कुर्यात्। ततस्तण्डुलाष्टदले गणेशं सरस्वतीं कुलदेवतां गुरुं लक्ष्मीनारायणौ चावाह्य पंक्तिरूपेण स्थापितेष्वक्षतपुञ्जेषु नारदं पारस्करं यास्कं कपिञ्जलं गोभिलं व्यासं जैमिनिं विश्वकर्माणमाचार्यं पाणिनिं कात्यायनं पतञ्जलिं चावाह्य स्वविद्यासूत्रं व्याकरणं भाष्यादिपुस्तकं च संस्थाप्य षोडशोपचारैर्नाममन्त्रेण संपूज्य प्रार्थयेत्—

सर्वविद्ये त्वमाधारः स्मृतिज्ञानप्रदायिके।
प्रसन्ना वरदा भूत्वा देहि विद्यां स्मृतिं यशः॥

पश्चात् स्थण्डिले पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं लौकिकमग्निं प्रतिष्ठाप्य संपूज्य

विधि विधान

शुभ मुहूर्त में बालक के सहित पितादि यजमान माङ्गल्य स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर मस्तक पर तिलक लगाकर शुभासन पर बैठ आचमन प्राणायाम करके देश काल-कीर्त्तन के अन्त में संकल्प करे। इस कुमार का लिखने पढ़ने आदि के द्वारा अधिक विद्या विज्ञान प्राप्त होने के लिये विद्यारम्भ संस्कार मैं करूंगा, ऐसा संकल्प करने पश्चात् निर्विघ्न कर्म समाप्ति के लिए संकल्प पूर्वक गणेश जी का पूजन करे।

तदनन्तर अष्टदल कमलाकार बिछाये चाँवलो पर गणेश जी, सरस्वती, कुलदेवता गुरु और लक्ष्मीनारायण का आवाहन करके पंक्तिरूप से स्थापित किये अक्षत पुञ्जों पर नारद, पाणिनि, पतञ्जलि, सांख्याचार्य, कात्यायन, पारस्कर यास्क, कपिञ्जल, गोभिल, जैमिनि, विश्वकर्मा और आचार्य व्यास जी का आवाहन करके तथा दर्शनसूत्रों सहित व्याकरण मूल और महाभाष्यादि पुस्तकों को स्थापित करके षोड़श उपचारो द्वारा नाम मंत्रो से सम्यक् पूजन करके प्रार्थना करे कि हे विद्याभिमानिनी देवते ! तुम विश्व का आधार हो स्मृति और ज्ञान देने वाली हो इससे प्रसन्न होके वर देने वाली होकर इस बालक को विद्या और स्मरण, शक्ति तथा कीर्ति दीजिए। इस मेरी की हुई पूजा से आवाहन किये सब देवता प्रसन्न हों, यह प्रार्थना करे।

ब्रह्मवरणोपवेशनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा आज्येनावाहितदेवताभ्योऽष्टाष्टसंख्याहुतीर्जुहुयात् । ततो महाव्याहृत्यादिस्विष्टकृदन्ता दशाहुतयः कार्याः । संस्रवप्राशनादिकं कृत्वा बालक आवाहित देवता अध्यापकगुरुं च नमस्कृत्य (अध्यापकगुरोः समीपे प्रत्यङ्मुखमुपविश्य पाटिकायां मङ्गलार्थं कुंकुमादिलेपनं कृत्वा तदुपरि) शलाकया—श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। श्रीकुलदेवतायै नमः। श्रीगुरुभ्यो नमः। श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। ओं नमः सिद्धम्।

इति लिखेत् ततो निम्न मन्त्रेण षोडशोपचारैः सरस्वतीं पूजयेत् —

ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥

ओं लिखितसरस्वत्यै नमः। अध्यापको बालहस्तेन त्रिवारं लेखनवाचने कारयित्वा सकृत्पूजनं कारयेत्। ततः कुमारो गुरुं संपूज्य तस्मै चोष्णीषं समर्प्य प्रणमेत्। ततः कर्माचार्यं गन्धादिभिः सम्पूज्य तस्मै शिष्टब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां दत्त्वा तदाशिषः स्वीकुर्यात्। तदा सुवासिनी कापि स्त्री बालकं नीराजयेत्। ततो देवता अग्निं च विसृज्य दर्शनार्थमागतेभ्यो मोदकादिकं दद्यात् ॥

इत्यक्षरविद्यारम्भविधिः समाप्ता ॥

तत्पश्चात् स्थण्डिलरूप वेदिका पर पञ्चभूसंस्कार पूर्वक लौकिक अग्नि को स्थापित कर पूजन करके ब्रह्मा के वरण उपवेशन से लेकर आज्यभागाहुति पर्यन्त पूर्वनिर्दिष्ट विधि करके अवाहन किये गए गणेशादि देवताओं के लिये (ओं गणेशाय स्वाहा) इत्यादि प्रकार से आठ २ आहुति देकर महाव्याहृतियों की तीन सर्वप्रायश्चित्तकी पाँच प्राजापत्य और स्विष्टकृत की दो ये दश आहुति घृत की देवे । उसके बाद संस्रव प्राशन, प्रवित्रों द्वारा मार्जन परिस्तरण किये कुश का अग्नि प्रवेश, ब्रह्मा को पूर्णपात्र का दान और प्रणीता का विमोचन करे। फिर बालक आवाहन किये देवताओं और गुरु को नमस्कार कर के अध्यापक के समीप पश्चिमाभिमुख बैठकर पट्टी पर मङ्गलार्थ केशरादि का लेपन करके उस पर श्रीगणेशाय नमः इत्यादि छः वाक्य लिखकर (ओं पावका०) मन्त्र से षोड़शोपचारों द्वारा सरस्वती पूजन करे।

अध्यापक बालक का हाथ पकड़ कर तीन बार लिखावे और पढ़ावे एक बार पूजन करावे गुरु का पूजन करे और पगड़ी समर्पित कर प्रणाम करे फिर कर्म कराने वाले आचार्य का गन्धादि द्वारा पूजन कर उनको तथा शिष्ट ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर आशीर्वाद लेवे। तब सौभाग्यवती कोई स्त्री बालक की आरती करे। तदनन्तर देवताओं का और अग्नि का विसर्जन कर उपस्थित सज्जनों का मोदक आदि से यथोचित सत्कार करे ।।

अक्षराध्ययनारम्भविधि समाप्त ॥

उपनयन-संस्कार

विवेचन

यज्ञोपवीत, वेदारम्भ और समावर्तन ये तीन शैक्षणिक संस्कार हैं। इनमें से प्रमुख यज्ञोपवीत है।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम्॥

आचार्य कात्यायन ने उक्त आदेश देते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा है कि द्विजमात्र को सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहना चाहिए और शिखा (चोटी) रखनी चाहिए। छन्दोग परिशिष्ट एवं स्मृत्यर्थसार में भी आदेश दिया गया है:—

सदा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः।

अन्यत्र कहा गया है कि वेदाध्ययन के बिना मनुष्य शूद्र के समान है:—

शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न योजितः।

और वेदाध्ययन का अधिकार मनुष्य को यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् ही प्राप्त होता है यह तत्त्व भी अनेकत्र स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित है। याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया हैं कि गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार करने के पश्चात् गायत्री मन्त्र सिखाए और उसके पश्चात् उसे वेदों का अध्यापन करवाए तथा शौचाचार आदि की विधि समझाए:—

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥

उक्त तथा ऐसे ही अन्य अनेक शास्त्रीय प्रमाणों से द्विजमात्र के लिए यज्ञोपवीत-धारण की अनिवार्यता स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है।

महत्त्व एवं उद्देश्य

यज्ञोपवीत के महत्त्व एवं आवश्यकता व उपयोगिता के सम्बन्ध में विचार करते हुए प्रत्येक विज्ञ व्यक्ति के समक्ष अनेक तथ्य एवं रहस्य स्वतः उद्भासित होने लगते है। इनमें से अनेक का प्रतिपादन स्वयं शास्त्रकारों ने भी यथाप्रसङ्ग किया है।

आचार्य पारस्कर ने कहा है कि द्विजों का उपनयन संस्कार आठ वर्ष तक हो जाना चाहिए। इस 'उपनयन' शब्द की परिभाषा पारस्कर सूत्र के व्याख्याकार गदाधर ने इस प्रकार

दी है—

'आचार्यस्य उप-समीपे माणवकस्य नयनं 'उपनयन' शब्देनोच्यते।' उपनयनञ्च विधिना आचार्यसमीपनयनम्, अग्निसमीपनयनं वा, साविीवाचनं वा अन्यदङ्गमिति स्मृत्यर्थसारे।

इसी प्रकार 'उपवीत' 'यज्ञोपवीत' और 'ब्रह्मसूत्र' ये तीनों पर्यायवाचक हैं। 'मोञ्जी-बधन' भी यज्ञोपवीत-संस्कार का दूसरा नाम है, क्योंकि यज्ञोपवीत-धरण करते समय पहले बटुक की कमर में मौञ्जी-बन्धन किया जाता है।

यज्ञोपवीत और विवाह ये दोनों हमारे जीवन में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं, क्योंकि ये दोनों दो प्रमुख आश्रमों में प्रवेश के द्वार हैं। यज्ञोपवीत के द्वारा ब्रह्मचर्याश्रम में और विवाह के द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश होता है।

जन्मना ब्राह्मणो जातः संस्काराद् द्विज उच्यते।

के द्वारा मनु ने स्पष्ट कहा है कि जन्म से ब्राह्मण उत्पन्न होता है फिर यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने पर 'द्विज' कहलाता है, क्योंकि यज्ञोपवीत संस्कार के द्वारा बटुक का दूसरा जन्म ही होता है, इसीलिये उसे 'द्विज' (दो बार जन्म लेनेवाला पहला माता के गर्भ से और दूरा आचार्य के द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार से) कहलाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

यज्ञोपवीत-निर्माण एवं परिमाण—

यज्ञोपवीत कैसे बनाया जाए इस कि विधि बताते हुए लिखा गया है कि—

आवेष्ट्य षण्णवत्यातस्त्रिगणीकृत्य मानतः ।

अथांत् ९६ चप्पे (चार अंगुल) लम्बा हाथ का कता सूत माप लिया जाए। यहाँ इस बात का ध्यान रखा जाए कि यज्ञोपवीत जिसे धारण करना है, उसके ९६ चप्पे हों। यदि बटुक के लिए बनाना है तो उसी के परिमाण से या किसी बड़े व्यक्ति के लिए हो तो उसके हिसाब से सूत मापना चाहिए (इसका आशय यह बताया जाता है कि जीवन (मनुष्य की आयु) के सौ वर्षो में से ८० कर्मकाण्ड तथा १६ उपासनाकाण्ड एवं शेष अन्तिम चार ज्ञानकाण्ड के लिए हैं।

इस यज्ञोपवीत के लिए अनेक निर्देश दिए गये हैं। जैसे कि—

पृष्ठवंशे च नाभ्याञ्च धृतं यद्विदन्दते कटिम्।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिनीचं नचोच्छ्रितम् ॥
स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथञ्चन ।

अर्थात्—यज्ञोपवीत कन्धे से लेकर हृदय और नाभि को स्पर्श करता हुआ कमर तक पहुँच जाए इतना ही लम्बा होना चाहिए। इससे अधिक लम्बा या छोटा नहीं होना चाहिए। ब्रह्मचारी को एक तथा गृहस्थ को दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहिए। जैसे कि

ब्रह्मचरिण एकं स्याद् द्वे तथेतरयोः स्मृते ।

उपवीति, प्राचीनावीति तथा निवीति—

ये तीनों पारिभाषिक शब्द है। समान्यतया यज्ञोपवीत बाएं कन्धे पर धारण किया जाता है, किन्तु पितृकर्म में उसे दाएं कधे पर तथा मनुष्यकर्म में गले में माला के समान धारण कर लिया जाता है । इसके लिए ही उक्त तीनों पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त होते हैं। जैसा कि कहा गया है—

ब्रह्मसूत्रे तु सव्येंऽसे स्थिते यज्ञोपवीतिता ।
प्राचीनावीतिताऽसव्ये कण्ठस्थे हि निवीतिता ।।

इस प्रकार हम देखते है कि यज्ञोपवीत एक बहुद्देशीय संस्कार है। जैसे कि—

१. यज्ञोपवीत हो जाने के बाद ही गायी मन्त्र के जप का अधिकारी होता हैं। २. वेदाध्ययन का अधिकार भी तभी मिलता है। ३. पञ्चमहायज्ञ आदि श्रौत स्मार्त कर्म भी यज्ञोपवीत धारण कर ही कर सकता है। ४. यज्ञोपवीत इस बात का प्रमाण है कि बालक में अब इतनी योग्यता आ गई है कि उसे वेद वेदाङ्गो का अध्ययन कराया जा सकता है। जैसा कि कहा गया है—

श्रौतस्मार्ताधिकारी स्यान्नोपनायनिकं विना ।

यज्ञोपवीतसंस्कार दूसरा जन्म ही है—

यज्ञोपवीत संस्कार के समय न केवल बटु को ही अपितु उसके माता पिता को भी त्रिरात्र कृच्छ-प्राजापत्य व्रत रखना होता है। यह पहली दैहिक और आत्मिक शुद्धि है। इससे शरीर और आत्मा या मन दोनों शुद्ध पवित्र और निर्मल हो जाते हैं। बटुक को और (सति सम्भवे) उसके माता पिता को भी पञ्चगव्य पाना कराया जाता है। यह दूसरी शुद्धि है। इससे उसके सब प्रकार के शारीरिक दोष नष्ट हो जाते है। उसका वपन (मुण्डन) करवाया जाता है और उबटन आदि मलकर स्नान करवाया जाता है। इस प्रकार सर्वदोषविनिर्मुक्त बटुक की देहयष्टि ऐसे देदीप्यमान होती है, जैसे सचमुच उसका नया अथवा दूसरा जम हुआ है। और उपनयन के पश्चात् वेदवेदांगो के अध्ययन के द्वारा वह निरा पशु न रहकर मानव बन जाएगा, इस प्रकार वास्तव में उसका दूसरा जन्म हो जाएगा।

अथ उपनयनसंस्कारः

पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे द्वितीयकण्डिका

सरोजद्वन्द्वाभे चरणयुगले पादुकयुगम्
सुकट्यां कौपीनाजिनविलसितां मुञ्जरशनाम् ।
त्रिपुण्ड्रञ्चाषाढं विषदमुपवीतं शशिनिभम्
दधानो माङ्गल्यं वितरतु समेषां शिवबटुः ॥[1]

अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वा । [१] एकादशवर्षꣳ राजन्यम् । [२] द्वादशवर्षं वैश्यम् । [३] यथामङ्गलं वा सर्वेषाम् । [४]

अथ प्रयोगः

द्वितीयकाण्डस्य प्रथमकण्डिकायां तावदाचार्येण चौलसंस्कारो विहितः । अधुनोपनयनसंस्कारोपक्रम्यते ।

ज्योतिःशास्त्रोक्तशुभमुहूर्तदिने बालस्योपनयनं चिकीर्षुर्यजमानः पत्नीकुमाराभ्यां सह मङ्गलं स्नात्वाहते वाससी परिधाय धृततिलको बहिःशालायां शुभासने प्राङ्मुख उपविश्याचम्य प्राणानायम्य देशकालसङ्कीर्तनान्तेऽस्य मम पुत्रस्य······द्विजत्वसिद्धिद्वारा वेदाध्ययनाधिकारसिद्ध्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं

विधि-विधान

संस्कार्य बालक के पिता और माता स्नान सन्ध्यादि से निवृत्त हो यज्ञ-वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख यथास्थान बैठ जाएं और द्वितीय मयूख में प्रदर्शित विधि के अनुसार धूपदीपादि प्रज्वलित कर कर्म-कलश की स्थापना एवं पवित्रीकरण के पश्चात् आचमन एवं प्राणायाम आदि कर संकल्प करने के बाद स्वस्ति-वाचन तथा गणपत्यादि पूजनात्मक सम्पूर्ण पूर्वाङ्ग शास्त्रीय विधि के अनुसार सम्पादित कर लें । पात्रासादन एवं सर्व-संस्कारोपयोगी कुशा, घृत समिधा आदि यज्ञीय सामग्री के अतिरिक्त यज्ञोपवीत-संस्कार के लिए विशेष उपयोगी निम्न सामग्री भी उपलब्ध कर ली जाए ।

सामग्री —

१. संस्कार्य बालक की मेखला के लिए मूंज आदि की ३-४ मीटर लम्बी रस्सी,

---

१. श्रीरविशर्मणः सुपुत्रस्य (मम पौत्रस्य) चि० विजयकृष्णस्य यज्ञोपवीतसंस्कारावसरे सं० २०३७ तमे वैक्रमाब्दे रचितमिदं पद्यम् ।

चोपनयनमद्य श्वो वा करिष्ये, तदादौकृच्छ्त्रयात्मकं प्रायश्चित्तं करिष्ये कुमारोऽपि देशकालकीर्तनान्ते 'मम कामाचारकामभक्षण-कामवादादिदोषपरिहारार्थं कृच्छ्त्रयात्मकप्रायश्चित्तं करिष्ये यथाशक्तिद्रव्यदानपूर्वक गायत्र्या द्वादशसहस्रं जपं च स्वयं करिष्ये ब्राह्मणद्वारा वा कारयिष्ये, तत्र च निर्विघ्नतार्थं गणपति-पूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं ग्रहयागं नान्दीश्राद्धादिकं च करिष्ये इति संकल्पं कुर्यात् ।

उपनयनदिने चोपनयनाङ्गभूतं वपनं करिष्य इति संकल्प्य चूड़ाकरण-संस्कारोक्तविधिना वपनं कारयेत् । वटु पञ्चगव्यं प्राशयेत् । मन्त्रो यथा—

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके ।
प्राशनात्पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनात् ।।

ब्राह्मणान्भोजयेत्तं च पर्युप्तशिरसमलंकृतमानयन्ति । [५]

बहिः शालायां पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं समुद्भवनामानमग्निं स्थापयित्वा मातुः दक्षिणतः अग्नेः पश्चिमभागे आचार्यपुरुषाः वटुमुपवेशयन्ति ।

---

२. कौपीन-वस्त्र एवं धोती अंगोछा, ३. कटि-सूत्र, ४. मृग चर्म का छोटा-सा टुकड़ा, ५. बटुक के सिर तक ऊंचा पलाश आदि का दण्ड, ६. भिक्षा-पात्र, ७. हाथ से कते—बुने सूत का यज्ञोपवीत, ८. पंच-गव्य, ९. बटुक के ओढ़ने के लिए उत्तरीय वस्त्र; १०. खड़ाऊ, ११. ताम्बे या पीतल के चॉवल से भरे हुए आठ पात्र (लोटे) तथा उन पर रखने के लिए यज्ञोपवीत के जोड़ें व दक्षिणा द्रव्य, १२. यज्ञोपवीत से पूर्व बटुक एवं तीन ब्राह्मणों को खिलाने के लिए खीर आदि हविष्यान्न १३. नापित (नाई) बटुक का मुण्डन कराने के लिए ।

उपर्युक्तप्रकार से संकल्प करने के पश्चात् —

आचार्य, ब्रह्मा एवं अन्य ऋत्विजों का वरण, रक्षा-बन्धन एवं तिलक आदि की विधि द्वितीय मयूख में प्रदर्शित विधि के अनुसार सम्पन्न कर ली जाए । तब मुण्डितशिर वाले शिखा-धारी बटुक को हल्दी छैल-छबीला आदि माङ्गलिक सुगन्धित द्रव्यों से उबटन कर स्नान करवाया जाय और उसके घुटे हुए शिर पर हल्दी का लेपन कर कुङ्कुम आदि से स्वस्तिक बना दिया जाए । (हल्दी रोगाणुनाशक आदि अनेक स्वास्थ्यकारी तत्त्वों से युक्त है, वह बालक के शिर की सब प्रकार के रोगाणु आदि से रक्षा करती है) ।

तत्पश्चात् बटुक को 'यत्त्वगस्थिगतं पापम्' इत्यादि मन्त्र बालते हुए पञ्चगव्य का प्राशन करवाएं । फिर बटुक और उसके साथ तीन ब्राह्मण (बालकों) को खीर आदि का भोजन करवाएँ मिष्टान्न आदि प्रदान करें । स्नान के पश्चात् स्वाभाविक है कि बटुक के कटिसूत्र में कौपीन धारण करवा दी जाएगी और कमर में शुभ्र शुद्ध नया अहत वस्त्र लपेट दिया जाय, ठीक वैसे ही जैसे साधु महात्मा लपटे रहते हैं । आचार्य व अन्य पुरुष बटुक को यज्ञ वेदी की एक परिक्रमा करवा कर यज्ञ वेदी के पश्चिम में पहले से बैठे यजमान-दम्पती के दक्षिण में बिछे हुए कुशा आदि के आसन पर बैठा दें । अनन्तर आचार्य बटुक से कहे—

आचार्यः—ब्रह्मचर्यमगाम्। (इति प्रैषं ददाति)।

बटुकः — ब्रह्मचर्यमगाम्। (इति वदति)।

आचार्यः—ब्रह्मचर्यासानि।

बटुकः — ब्रह्मचर्यासानि। इति। [६]

(आचार्यः) अथैनं वासः परिधापयति। मन्त्रो यथा —

(येनेन्द्रायेति अङ्गिराऋषिर्बृहतीछन्दो बृहस्पतिर्देवता वासः परिधापने विनियोगः)।

ॐ येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतं तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥ [७]

(ततो बटुकस्य द्विराचमनम्)।

(तत आचार्यः बटुकस्य कटिप्रदेशे प्रवरसंख्याग्रन्थियुतां त्रिवृतां मौञ्ज्यादिकां) मेखलां बध्नीते। मन्त्रो यथा —

(इयं दुरुक्तमिति वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो मेखला देवता मेखलाबन्धने विनियोगः)।

'ब्रह्मचर्यमगाम्' मैं ब्रह्म अर्थात् वेद एवं ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रस्तुत या उपस्थित हूं। यह कहो।

बटुक — ब्रह्मचर्यमगाम्।

आचार्य—ब्रह्मचर्यासानि (मैं वेदज्ञान एवं यज्ञादि शुभ कार्य करने के लिये तत्पर हूं)।

बटुक —ब्रह्मचर्यासनि।

तदनन्तर आचार्य 'येनेन्द्राय' इत्यादि मन्त्र बोलते हुए बटुक को उत्तीरीय आदि अहत वस्त्र ओढ़ाए। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

हे बटुक, जिस विधि के द्वारा आचार्य बृहस्पति ने देवराज इन्द्र को (यज्ञोपवीत संस्कार के समय) वस्त्र धारण करवाए थे, उसी विधि से मैं तुम्हें ये शुद्ध-पवित्र अहत वस्त्र धारण करवा रहा हूं। इन वस्त्रों को धारण कर तुम्हें दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो, तुम बलवान् बनों और तुम्हें ब्रह्म-तेज प्राप्त हो। तुम सदा ब्रह्मतेज से तेजस्वी बने रहो।

इसके पश्चात् बटुक दो बार आचमन करे।

मेखला-बन्धन —

तदनन्तर—'इयं दुरुक्तम्' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए आचार्य बटुक की कमर में मेखला की तीन लड़ियाँ लपेट कर उस पर बटुक के प्रवर के अनुसार एक, तीन, या पांच ग्रन्थियाँ लगा दे।

(ब्राह्मण की मेखला मूज की, क्षत्रिय की धनुष की डोरी की और वैश्य की मौर्वी घास की बनी होनी चाहिए)।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात् ।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ।। [८]

(युवा सुवासाः इति मन्त्रस्याङ्गिराऋषिर्बृहतीछन्दो बृहस्पतिर्देवता मेखलाबन्धने विनियोगः)

ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त ।। [९]

तूष्णीं वा । [१०]

अत्रावसरे प्रणवपूर्वकं बटोः शिखाबन्धनम् आचार्यः कुर्यात् ।

(अत्र समाचाराद् यज्ञोपवीतसहितं सदक्षिणं भाण्डाष्टकं सङ्कल्प्य ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्) ।

ॐ तत्सदद्यामुकगोत्रोऽमुकशर्माहं स्वकीयोपनयकर्मविषयकसत्संस्कार प्राप्त्यर्थमिदं भाण्डाष्टकं सयज्ञोपवीतं सदक्षिणं नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सम्प्रददे । इति सङ्कल्पः ।

ततः कलशानामुपरि यज्ञोपवीतं 'ॐ भूर्भुवः स्वरोम्' इति मन्त्रेण प्रतिष्ठापयेत् । ततश्च —

ओंकारश्चाग्निर्नागा (भग) श्च सोम इन्द्रः प्रजापतिः ।
वायुः सूर्यो सर्वदेवा इत्येते नव तन्तवः ।।

'इयं दुरुक्तं' इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है —

अब तक बाल्यावस्था में मैंने जो अभक्ष्य भक्षणादि अपवित्र कार्य किये हों, अथवा असत्य भाषण, कटुवचन या दुर्वचन बोले हों, उसके दोषों का परिमार्जन करने वाली तथा पवित्र वर्ण (द्विजत्व) को प्रदान करती हुई यह मेखला आज मुझे धारण करने के लिए मिली है। इस मेखला को धारण करने से मेरे प्राण, अपान आदि पंच-प्राण बलवान् बनेंगे। यह देदीप्यमान मेखला बहिन के समान मेरी हितकारिणी है और मुझे इसके द्वारा सर्व-विध सौभाग्य प्राप्त होगा ।

अथवा 'युवा सुवासाः' आदि मन्त्र या दोनों ही मन्त्र पढ़े जाए । इसका अर्थ यह है —

युवा (गुणो को एकत्रित करने वाला) माल्याभरणादि से अलंकृत कल्याण करनेवाला वस्त्र बटुक को प्राप्त हुआ है । विद्वान् लोग इस बटुक को वेदार्थ का बोध कराते हुए उत्कर्ष की ओर ले जाए ।

(इसी समय चॉवलों से भरे हुए यज्ञोपवीत और दक्षिणा से युक्त आठ पात्र विभिन्न ब्राह्मणों को प्रदान किए जाते हैं) ।

इत्युक्त्या नवसु तन्तुषु देवान् विन्यस्य निम्नमन्त्रैः सम्पूजयेत् —

ॐ कारदैवत्याय प्रथमतन्तवे नमः। अग्निदैवत्याय द्वितीयतन्तवे नमः। भगदैवत्याय तृतीयतन्तवे नमः। सोमदैवत्याय चतुर्थतन्तवे नमः। इन्द्रदैवत्याय पञ्चमतन्तवे नमः। प्रजापतिदैवत्याय षष्ठतन्तवे नमः। वायुदैवत्याय सप्तमतन्तवे नमः। सूर्यदैवत्यायायाष्टमतन्तवे नमः। विश्वेदेवदैवत्याय नवमतन्तवे नमः।

इति तन्तुदेवताः सम्पूज्य ग्रन्थित्रयाधिपान्हरिब्रह्मेश्वरान् सम्पूजयेत् —

ॐ हरये नमः ॐ ब्रह्मणे नमः ॐ ईश्वराय नम.। ॐ यज्ञोपवीतस्याकाराय परब्रह्मणे नमः। इति सम्पूज्य तदादादाय —

ॐ आकृष्णेनेत्यादिना मन्त्रेण आदित्यं प्रदर्शयेत्। पुनः कलशोपरि संस्थाप्य अनामिकया स्पृशन् अष्टोत्तरशतं प्रणवं दशगायत्रीं च जपेत्। ततः प्राणानायम्य त्र्यम्बकमन्त्रं गायत्रीमन्त्रं च जपित्वा 'आपो हि ष्ठा' इत्यादिभिस्तिसृभिःऋग्भिरभिमन्त्रिताभिरद्भिः सिञ्चेत्

एवं संस्कृतं यज्ञोपवीतं शाखान्तरीय वक्ष्यमाणमन्त्रेण धारयेत्।

ततः समाचारात् बटुकस्य आचार्यादीनाञ्चोभयहस्तयोरङ्गुष्ठकनिष्टिक-

---

यज्ञोपवीत-धारण —

मेखला-बन्धन के पश्चात् यज्ञोपवीत धारण करने की विधि निम्न प्रकार से सम्पन्न की जाए।

सर्वप्रथम आचार्य यज्ञोपवीत को रुद्र-कलश पर प्रतिष्ठापित कर गायत्री व त्र्यम्बक मन्त्र जपकर 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन मन्त्रों से उसपर जल के छींटे दे।

इसके पश्चात् यज्ञोपवीत के ९ तन्तुओं में ॐ कारादि ९ देवताओं का 'ॐ ॐकार दैवत्याय प्रथम तन्तवे नमः ॐकारं प्रथमे तन्तौ विन्यसामि' आदि मन्त्र पढ़कर विन्यास करे।

तत्पश्चात् यज्ञोपवीत की तीनों ग्रन्थियों के स्वामि या देवता ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर या शंकर का पूजन 'ॐ ब्रह्मजज्ञानम् इत्यादि मन्त्रों से करे।

इसके पश्चात् यज्ञोपवीत को अपने हाथ में लेकर दस बार गायत्री मन्त्र का जप करे- 'आकृष्णेन' इत्यादि या 'ॐ उपयाम गृहीतोऽसि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए यज्ञोपवीत सूर्य को दखाए।

तब उपस्थित पांच विद्वान् ब्राह्मणों को स्पर्श करा के उनके सहित बटुक के अंगुष्ठ और अनामिका के बीच में से घुमाते हुए 'ॐ यज्ञोपवीतं' इत्यादि मन्त्र पढ़े। और यही मन्त्र पढ़ते हुए बटुक अपनी दाहिनी भुजा उठा कर बायें कन्धे से यज्ञोपवीत धारण कर ले।

इस मन्त्र का अर्थ यह है—हे आचार्य जी मैं इस ब्रह्मसूत्र को धारण कर रहा हूँ। यज्ञादि कार्यों के सम्पादन के लिए ही इसका निर्माण हुआ है, इसीलिए इसका नाम यज्ञोपवीत है।

योर्मध्ये कृत्वा यज्ञोपवीतं परममिति' मन्त्रं पठन्तः सर्वे यज्ञोपवीतं भ्रामयन्ति। पश्चात् मन्त्रं पठतो बटो दक्षिणबाहुमुद्धृत्य वामांसोपरि निदध्यात्। अथवा बटुः स्वयं यज्ञोपवीतं परिदधीत। मन्त्रो यथा —

(यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठानसिद्धये यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः। यज्ञोपवीतमसीति-मन्त्रस्य च प्रजापतिर्ऋषियजुश्छन्दो यज्ञोपवीतं देवता यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः)।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्य-मग्र्यं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥

यद्यप्यत्राजिनधारणमप्याचार्येण पारस्करेण नोपात्तं तथापि बटुकाय निम्न-मन्त्रेणाजिनं प्रदीयते। (पारस्करानुक्तत्वादजिनधारणं वैकल्पिकमेवेति स्पष्टम्)।

मन्त्रो यथा —

'मित्रस्य चक्षुरिति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽजिनं देवताजिनधारणे विनियोगः)।

ॐ मित्रस्य चक्षुर्वरुणं बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविरꣳसमिद्धम्। अनाहनस्यं वसनं जयिष्णु परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम्॥

आचार्यः बटुकं दण्डं प्रयच्छति। [११]

यह परमश्रेष्ठ तत्त्व ब्रह्मज्ञान अथवा आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाला है और इसीलिए पवित्र है। यह स्वभाव से ही शुद्ध यज्ञोपवीत ब्रह्मदेव के साथ ही प्रकट हुआ है और आयुष्य-कारक है। यह शुभ्र यज्ञोपवीत मुझे सदा बल और तेज प्रदान करता रहे, क्योंकि यह पवित्र वस्तुओं में अग्रणी है।

हे यज्ञोपवीत मैं यज्ञादि कार्यों के सम्पादन के लिये तुझे धारण कर रहा हूं, क्योंकि तेरा नाम ही यज्ञोपवीत यज्ञ के लिये धारण किया जाने वाला है।

यहां पर आचार्य ॐ मित्रस्य चक्षु आदि मन्त्र पढ़ कर बटुक को अजिन (मृगचर्म) धारण करवाते है। मित्रस्य चक्षु० इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है—हे आचार्यजी, अन्न तथा जल (एवं सब प्रकार के पदार्थों व धनधान्य) से युक्त मैं सूर्य के चक्षु स्वरूप बलयुक्त अत्यन्त तेजस्वी यशस्वी अर्थात् तेज और यश दोनों प्रदान करने वाले, वृद्धि समृद्धि के साधन जो अहना अर्थात् उग्र या कठोर नहीं अपितु सुकोमल है, और जो विजय प्रदान करने वाला है, इस अजिन को मैं अपने शरीर को ढकने के लिए धारण करता हूं।

तब आचार्य बटुक को दण्ड पकड़ाते हैं और बटुक **ॐ यो मे दण्डः** आदि मन्त्र पढ़ते हुए उसे ग्रहण करता है। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

हे आचार्य जी, यह जो दण्ड आकाश से धरती पर प्राप्त हुआ है, उसे मैं अपना निर्दोष

बटुकः त प्रतिगृह्णाति। मन्त्रो यथा —

(यो मे दण्ड इति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो दण्डो देवता दण्डग्रहण विनियोगः)।

ॐ यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम् तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ [१२]

दीक्षावदेके दीर्घसत्रमुपैतीति वचनात्।

बटुको दण्डमुच्छ्रयति। मन्त्रो यथा —

(उच्छ्रयस्वेति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो दण्डो देवता दण्डोच्छ्रयणे विनियोगः)।

ॐ उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहसऽआऽस्य यज्ञस्योदृचः ॥ [१३]

अथास्याद्भिरञ्जलिनाऽञ्जलिं पूरयति —

'आपोहिष्ठेति' तिसृभिः।

(आपोहिष्ठेत्यादि तिसृणां सिन्धुद्वीपऋषिः गायत्रीछन्द आपो देवता बटोरञ्जलिपूरणे विनियोगः)।

ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उषतीरिव मातरः ॥ २ ॥

ॐ तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ [१४]

जीवन-यापन, वेदों के स्वाध्याय तथा यजन और अध्यापन के तेज के उत्कर्ष के लिए ग्रहणकर रहा हूं।

तत्पश्चात् बटुक ॐ उच्छ्रयस्व आदि मन्त्र पढ़ते हुए उसे सीधे पकड़ले। इस मन्त्र का अर्थ यह है —

हे वनस्पति या वृक्ष के एक अंग दण्ड! तुम मेरे हाथ में सदा सीधे या खड़े होकर बने रहना तथा इस अनुष्ठीयमान यज्ञ की समाप्ति तक या मेरे सम्पूर्ण वेदाध्ययन-काल में सब प्रकार के पापों और कष्टों से मुझे बचाते रहना।

इसके पश्चात् आचार्य अपनी अञ्जुलि मे भरे हुए जल से बटुक की अञ्जुलि भर दे। उस समय आचार्य ॐ आपो हिष्ठा आदि तीन मन्त्र पढ़ें।

अथैनꣳसूर्यमुदीक्षयति, सूर्यमुदीक्षस्व इति प्रैषवाक्येन । बटुश्च सूर्यमुदीक्षति । मन्त्रो यथा —

(तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वणऋषिर्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योद्वीक्षणे विनियोगः) ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीना स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात् ॥ [१५]

अथास्य दक्षिणाꣳसमधि हृदयमालभते । मन्त्रो यथा —

(मम व्रते ते इति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो बृहस्पतिर्देवता हृदयालम्भने विनियोगः) ।

ॐ मम व्रते ते हृदयन्दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियनक्तु मह्यम् ॥ [१६]

अथास्य दक्षिणꣳ हस्तं गृहीत्वाऽऽह—को नामासि ? इति । [१७]

तब आचार्य बटुक को कहे कि सूर्य का दर्शन करो ।

अब बटुक (उपस्थान करते समय जैसे दोनों हाथ सीधे ऊपर उठाये रहते हैं, वैसे ही उपस्थान करते हुए) **ॐ तच्चक्षु** इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए सूर्य का दर्शन करे ।

इस मन्त्र का अर्थ यह है —

देवताओं का हितकारक तथा सारे विश्व का नेत्र स्वरूप (क्योंकि सूर्य के रहते हुए ही सब कुछ दिखाई देता है) यह सूर्य पूर्व दिशा से उदित हो रहा है । हम प्रति दिन (इसी प्रकार सूर्योपस्थान करते हुए) सौ वर्ष तक देखते रहे, जीवित रहें शुभ शब्द सुनते रहें— हमारी श्रवण-शक्ति बनी रहे । सौ वर्ष तक बोलते रहें, हमारी वाक्शक्ति बनी रहे, और सौ वर्ष तक सदा सशक्त और इस प्रकार समर्थ बने रहें, कि हमें किसी के अधीन न होना पड़े और हे प्रभो सौ वर्ष से भी अधिक समय तक हम इसी प्रकार देखते सुनते तथा बोलते हुए सर्वथा सशक्त हो कर जीवित रहें ।

इसके पश्चात् आचार्य बटुक के दाहिने कन्धे पर से अपना दायाँ हाथ ले जाते हुए उसके हृदय का स्पर्श करे । उस समय आचार्य **'ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि'** इत्यादि मन्त्र पढ़े । इस मन्त्र का अर्थ यह है—

हे बटुक ! मैंने जो विद्याव्रत आदि तीनों व्रत धारण किए हुए हैं, उन्हीं व्रतों की प्राप्ति एवं पालन के लिए मैं तेरे हृदय को अपने हृदय के साथ मिलाता हूं । मेरे चित्त में जो उदात्त भावनाएं हैं, तेरा चित्त भी उनके अनुकूल बना रहे । तू एकाग्रचित्त होकर मेरे उपदेशों का पालन करते रहना । (भगवान् करे) देवगुरु बृहस्पति तुझे सदा मेरे अनुकूल बनाए रखें ।

असावहं भो ३ इति प्रत्याह । [१८]

(अत्र बटुकः अमुक शर्मा, वर्मा, गुप्तो वाहमिति स्वनाम वदति)।

अथैनमाह कस्य ब्रह्मचार्यसि । इति [१६]

'भवत' इत्युच्यमाने (आचार्यः निम्नलिखितं मन्त्रं पठति) (इन्द्रस्येति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुष्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता पाठे विनियोगः)।

ॐ इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव (अमुक शर्मन्) ॥ [२०]

अथैनं भूतेभ्यः परिददाति । मन्त्रो यथा —

(प्रजापतये त्वेति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः षड्यजूंषि लिङ्गोक्ता देवता रक्षणे विनियोगः) ।

ॐ प्रजापतये त्वा परिददामि देवाय त्वा सवित्रे परिददामि अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ॥ [२१]

इति पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे द्वितीया कण्डिका समाप्ता ।

तब आचार्य बटुक का (अंगूठे के साथ) दाहिना हाथ अपने हाथ में पकड़ कर उससे पूछे कि हे बटुक ! तुम्हारा क्या नाम है ?

तब ब्रह्मचारी 'मैं अमुक शर्मा वर्मा आदि हूं' इत्यादि बोलकर अपना नाम बताए। इसी प्रकार आचार्य दो बार और नाम पूछे और बटुक भी दो बार और अपना नाम बताए। (इस प्रकार तीन बार नाम पूछे और बताए जाते हैं) ।

इसके पश्चात् बटुक से पूछे कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो ?

बटुक उत्तर दे कि 'मैं आपका ब्रह्मचारी हूं ।'

तब आचार्य कहे—हे बटुक, तुम भगवान् इन्द्र के ब्रह्मचारी हो । अग्नि तुम्हारे आचार्य हैं। हे अमुक शर्मन् बटुक मैं तो तुम्हारा तीसरा आचार्य या गुरु हूं ।

'गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
गुरुर्भर्ता तु नारीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥

के अनुसार ब्राह्मणों का पहला गुरु 'अग्नि' है और दूसरा ब्राह्मण आचार्य ।

तदनन्तर आचार्य हाथ जोड़े हुए बटुक को 'ॐ प्रजापतये त्वा परिददामि' इत्यादि मन्त्रों से उपस्थान करवाए ।

(पारस्कर गृह्यसूत्र के द्वितीय काण्ड की द्वितीय कण्डिका समाप्त)

अथ तृतीया कण्डिका

प्रदक्षिणमग्निं परीत्योपविशति। [१]

अन्वारब्ध आज्याहुतिर्जुहोति।

ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय ओमद्यकर्त्तव्योपनयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्त्तुमभुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। इति ब्रह्माणं वृणुयात्। ओम्—वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम्। ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं निधाय तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणं कारयित्वाऽस्मिन्कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय, भवानीति तेनोक्ते तदुपरि ब्रह्माणमुदङ्मुखमुपवेशयेत्। ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्। ततः परिस्तरणम्—बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम्। नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तमग्नितः प्रणीतापर्यन्तम्। ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयम्। प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली संमार्जनकुशाः। उपयमनकुशाः। समिधस्तिस्रः। स्रुवआज्यम्। षट्पञ्चाशदुतराचार्यमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नतण्डुलपूर्णं पात्रम्, पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम्। इति पात्रासादनम्।

ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्वा प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षिप्यानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किञ्चित्त्रिरुत्क्षिप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रं त्रिरभिषिच्य प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तुसेचनं कृत्वाऽग्निप्रणीतापात्रयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापोऽधिश्रयणं ततः कुशान्

बटुक अग्नि की एक परिक्रमा करके आचार्य के उत्तर में बैठ जाए और यजमान पुष्प चन्दन आदि से आचार्य एवं ब्रह्मा का वरण करे। तदनन्तर प्रणीता एवं प्रोक्षणीपात्र इत्यादि को यथास्थान रखकर कुशकण्डिका की विधि आचार्य सम्पन्न करे।

तत्पश्चात् पूर्वोक्त मन्त्र से तीन समिधाओं का आधान कर ब्रह्मा से अन्वारम्भ किया हुआ यजमान निम्न मन्त्रों से प्रदीप्त अग्नि में घृताहुतियां दे और 'न मम' उच्चारण करते हुए स्रुवा में बची हुई घृत की एकाध बून्द प्रोक्षणीपात्र में टपकाता जाए। इस प्रकारः—

'ॐ प्रजापतये स्वाहा से लेकर ॐ स्विष्टकृते' तक १४ आहुतियां दे।

इसके पश्चात् संश्रव-प्राशन (प्रोक्षणीपात्र में टपकाए गए घृत-विन्दुओं को हाथ में लेकर हथेलिओं में मसलकर सूंघना) करे। ब्रह्मा तथा आचार्य आदि को पूर्णपात्र तथा दक्षिणा आदि दे। तत्पश्चात् पवित्रों के द्वारा प्रणीता से जल से **'ॐ सुमित्रिया न आप ओषधय सन्तु'** मन्त्र पढ़ते हुए यजमान के सिर पर छींटे देवे।

प्रज्वाल्याज्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वन्हौ तत्प्रक्षिप्य स्त्रुव त्रिः प्रतप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मलैर्बाह्यतः स्त्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्याग्नेर्दक्षिणतो निदध्यात् । तत आज्यमग्नेरवतार्य त्रिः प्रोक्षणीवदुत्पूयावेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरस्य पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम् । तत उत्थायोपयमनकुशान् वामहस्ते कृत्वा मन्त्रैर्वा तूष्णीं वा घृताक्तास्तिस्रः समिधोऽग्नौ प्रक्षिपेत् । पुनरुपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निमुदक्संस्थ पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय प्रोक्षणीपात्रं संस्थापयेत् । ततः पातितदक्षिणजानुर्ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्त्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् । तत्र प्रत्येकाहुत्यनन्तरं स्त्रुवावस्थितघृतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः —

ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । (इति मनसा) । ॐ—इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम (इत्याघारौ) ओमग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम । ॐ—सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम । (इत्याज्यभागौ) ओं भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम । ॐ भुवः स्वाहा । इदं वायवे न मम । ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय न मम । (एता महाव्याहृतयः) ।

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाᳬंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा॥१॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ।

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणᳬरराणो वीहि मृडीकᳬसुहवो न एधि स्वाहा ॥२॥

इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ।

ॐ—अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाअसि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजᳬस्वाहा ॥३॥ इदमग्नये अयसे न मम ॥

ॐ—ये ते शतं वरुण ये सहस्र यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥४॥

इद वरुणाय सवित्रें विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥

'ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः' मन्त्र पढ़कर प्रणीता पात्र को ईशान दिशा में उलट दे। इसके पश्चात् पवित्रों को यज्ञवेदी के चारों ओर बिछाई गई

ॐ—उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमऀश्रथाय । अथा-वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥५॥

इदं वरुणाय न मम ।

(एताः सर्वप्रायश्चित्ताहुतयः) ।

ॐ—प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । (इति मनसा प्राजापत्यम्) ।

ॐ—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।

इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।

इति स्विष्टकृद्धोमः ।

ततः संस्रवप्राशनमाचमनं च कृत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् । ओमद्यैतस्मिन्नुपनयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं सदक्षिणं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे । इति दक्षिणां दद्यात् । ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततः —

ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।

इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन शिरः संमृज्य —

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् । ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिधार्य हस्तेनैव जुहुयात् ।

ॐ देवा गतुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत इमं देवयज्ञऀस्वाहा वातेधाः । स्वाहा ॥

इदं वाताय न मम ।

इति बर्हिहोमः । पञ्चभूसंस्कारब्रह्मवरणादिबर्हिहोमान्तं च सर्वं कर्म सामान्यतया सर्वस्मार्त्तहोमेषु कर्त्तव्यम् ॥

कुशाओं में मिलाकर जिस क्रम से वे बिछायी गई थी, उसी क्रम से उठाकर 'ॐ देवा गातुविदों' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उन घृताक्त कुशाओं की अग्नि में आहुति दे दें ।

इस प्रकार पञ्चभूसंस्कार और ब्रह्मादि के वरण से लेकर 'बर्हि-होम' पर्यन्त यज्ञ की सामान्य विधि सम्पादित करे ।

प्राशनान्तेऽथैनꣳशास्ति —

आचार्यः—ब्रह्मचार्यसि ।

बटुः —असानि ।

आचार्यः—आपोऽशान ।

बटुः —अश्नानि ।

आचार्यः—कर्म कुरु ।

बटुः —करवाणि ।

आचार्यः—मा दिवा सुषुप्था ।

बटुः —न स्वपामि ।

आचार्यः—वाचं यच्छ ।

बटुः —यच्छानि ।

आचार्यः—समिधमाधेहि ।

तब आचार्य ब्रह्मचारी को इस प्रकार उपदेश दे :—

उपदेश—

आचार्य—हे बटुक ! अब तुम ब्रह्म अर्थात् वेदाध्ययन एवं ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति के अधिकारी बन गए हो ।

बटुक — आपके आशीर्वाद से मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर लूंगा अर्थात् वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन करूंगा ।

आचार्य—तुम (भोजन के पूर्व और पश्चात्) जल से आचमन तथा हाथ मुख आदि धो लिया करोगे ।

बटुक — मैं हाथ मुह आदि धोकर तथा आचमन कर के ही भोजन किया करूंगा ।

आचार्य—तुम सन्ध्योपासन तथा भिक्षाचरण आदि ब्रह्मचारियों के कर्मों का यथाविधि सम्पादन करोगे ।

बटुक — मैं ब्रह्मचारियों के ये सब कार्य सावधान होकर किया करूंगा ।

आचार्य—तुम दिन में कभी नहीं सोओगे ।

बटुक — मैं दिन में नहीं सोऊँगा ।

आचार्य—तुम (भोजन एवं शौचादि के समय) मौन रहोगे ।

बटुक — मैं (इन समयों में) मौन रहूंगा ।

आचार्य—तुम यज्ञाग्नि में प्रति दिन प्रातः सायं विधिवत् समिधाधान किया करोगे ।

बटुः —आदधानि ।

आचार्यः—आपोऽशान ।

बटुः —अश्नानि ।

इति [२]

अथास्मै (दक्षिणकर्णे) सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायोपसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय। [३] दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके। [४]

पच्छोर्द्धर्चशः सर्वाञ्च तृतीयेन सहानुवर्तयन् । [५]

तद्यथा —

(ॐ कारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दः परमात्मा देवता । व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि अग्निवायुसूर्या देवताः। तत्सवितुरिति मन्त्रस्य विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवता बटोरुपदेशने विनियोगः) ।

बटुक — मैं नित्य समिधाधान किया करूंगा ।

आचार्य—तुम भोजन करने या कुछ भी खाने के प्रथम व पश्चात् आचमन किया करोगे और हाथ मुंह धो लिया करोगे ।

बटुक — मैं हाथ मुंह धोकर ही खाया करूगा और बाद में भी आचमन कर हाथ मुंह धोया करूंगा ।

सावित्री (गायत्री) मन्त्र का उपदेश —

तदनन्तर बटुक आचार्य के समक्ष बैठकर अपने दोनों हाथों को खुली कैंची की भांति एक दूसरे पर रख कर अपने दाये हाथ से आचार्य के दायें चरण को तथा अपने बायें हाथ से बायें चरण को स्पर्श कर अभिवादन करे । तब अग्नि के उत्तर में पश्चिमाभिमुख बैठ जए और आचार्य उसके समक्ष । इस प्रकार आचार्य और बटुक एक दूसरे को देखते हुए आमने सामने बैठ जाए । (तब आचार्य और बटुक दोनों के सिर पर एक वस्त्र इस प्रकार डाल दिया जाए कि वे उसके अन्दर ढक जाएं) ।

तत्पश्चात् आचार्य बटुक को गायत्री मन्त्र का उपदेश उसके दायें कान में इस प्रकार करे :—

पहले प्रणव और व्याहृति सहित गायत्री मन्त्र का प्रथम पद 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्' बोल कर सुनाए, सिखाए और बटुक से भी बुलवाए। उसके पश्चात् उसका द्वितीय पद 'भर्गोदेवस्य धीमहि' और फिर तीसरा पद 'धियो यो नः प्रचोदयात्'

तत्पश्चात् आचर्य प्रणव एवं व्याहृतियों के सहित सम्पूर्ण गायत्री मन्त्र तीन बार सुनाए और बटुक से बुलवाकर उसे भली-भांति सिखाये ।

(वाससाच्छादनं कृत्वा—आश्वलायनस्मृतिः) प्रणवव्याहृतिपूर्वां गायत्रीं प्रथमं पच्छो ब्रूयात्। यथा हि —

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्

इति प्रथमं पदं श्रावयित्वा वाचयेत्। ततः —

भर्गो देवस्य धीमहि

इति द्वितीयपदं श्रावयित्वा तदपि वाचयेत्। ततः —

धियो यो न प्रचोदयात्।

इति तृतीय पदं श्रावयित्वा वाचयेत्। ततो द्वितीयवारम् —

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि —

इति अर्धर्चं श्रावयित्वा वाचयेत्। ततः —

धियो यो नः प्रचोदयात्।

इति द्वितीयमर्धर्चं श्रावयित्वा वाचयेत्। ततः तृतीयवारं —

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

गायत्री मन्त्र का अर्थ यह है—हम उस सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले श्रेष्ठ तेज का ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता रहे। भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक में भी वही तेज व्याप्त है।

यहां आचार्य पारस्कर ने यज्ञोपवीत धारण के छः मास अथवा तीन, छह, बारह अथवा चौवीस दिन के अन्दर गायत्री मन्त्र के उपदेश की अनुमति देते हुए भी आदेश दिया है कि ब्राह्मण को तो यज्ञोपवीत-धारण के समय ही गायत्री मन्त्र की दीक्षा दे दी जाए।

तदनुसार दूसरों को भी उसी समय गायत्री का उपदेश दे दिया जाता है।

यहां यद्यपि आचार्य ने क्षत्रिय को—देव सवितः आदि त्रिष्टुप् मन्त्र तथा वैश्य को—विश्वारूपाणि आदि उक्त जगती छन्द के मन्त्र के उपदेश का विधान किया है, किन्तु साथ ही यह भी आदेश दे दिया है कि सभी को गायत्री मन्त्र का ही उपदेश दे दिया जाय।

तदनुसार सबको गायत्री मन्त्र का ही उपदेश दिया जाता है। 'देव सवितः' आदि मन्त्र का अर्थ यह है —

हे सबके उत्पादक भगवन् अथवा भगवान् सूर्य-नारायण आप हमें सदा यज्ञ करते रहने की तथा यज्ञपति यजमान को सदा सौभाग्य (के लिए प्रयत्न करते रहने) की प्रेरणा देते रहें। सब के ज्ञान को शुद्ध पवित्र एवं निर्मल बनाए रखने वाला, तथा चराचरमात्र को या सबकी वाणी को धारण करने वाला वह दिव्य गधर्व देव प्रभु हमारे केतः अर्थात् ज्ञान को सदा शुद्ध पवित्र करने वाला है तथा वह वाणी का स्वामी प्रभु हमारी वाणी को सदा मधुर बनाए रख—हमारा ज्ञान निर्मल रहे तथा हम सदा मधुरवचन बोला करें।

संवत्सरे षण्मास्ये चतुर्विꣳशत्यहे द्वादशाहे षडहे त्र्यहे वा । [६]

सद्यस्त्वेव गायत्रीं ब्राह्मणाय ब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण इति श्रुतेः । [७]

त्रिष्टुभꣳ राजन्यस्य । मन्त्रो यथा —

(देव सवित इति मन्त्रस्य बृहस्पतिर्ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः सविता देवता क्षत्रियबटोरुपदेशने विनियोगः) ।

ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।

दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ [८]

जगतीं वैश्यस्य । मन्त्रो यथा —

(विश्वारूपाणि इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिर्जगतीछन्दः सविता देवता वैश्यबटोरुपदेशने विनियोगः) ।

ॐ विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे । वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुशसो विराजति ॥ [९]

सर्वेषां वा गायत्रीम् । [१०]

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे तृतीया कण्डिका) ।

विश्वारूपाणि इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है—

उस वरेण्य क्रान्तदर्शी सूर्य या सविता देवता के प्रभाव से ही विश्व की सब वस्तुएं विविध रूप रंगों को धारण करती हैं, वही मानव आदि द्विपाद् तथा चौपायों को अपने लिये हितकारी कार्यों में प्रेरित करता है, और वे ही उषा के पीछे पीछे आते हुए (धरती और) आकाश को प्रकाशित करते रहते हैं ।

पारस्करगृह्यसूत्र के द्वितीय काण्ड की तृतीय कण्डिका समाप्त ।

समिधाधान—

तब बटुक यज्ञवेदी के पश्चिम में बैठ जाए और आचार्य उसके बायें बैठें। बटुक ॐ अग्ने सुश्रवः इत्यादि पांच मन्त्र पढ़ते हुए पहले से स्थापित अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए घृताक्त पांच इंधन की सूखी लकड़ियां (अथवा आरने उपले) अग्नि में डाले । 'अग्ने सुश्रवा' इत्यादि पांचों मन्त्रों के अर्थ ये हैं—

हे अग्नि देव, आप सुश्रवा हैं अर्थात् आपकी सर्वत्र बहुत बड़ी कीर्ति या प्रतिष्ठा है, इसलिये आप मुझे भी यशस्वी बनाइये । हे अग्नि आप जिस प्रकार सुविख्यात देवताओं मे विख्याततम हैं अथवा सर्वाधिक कीर्तिमान हैं, इसी प्रकार मुझे भी सभी यशस्वीजनों में सत्की-

पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे चतुर्थी काण्डिका

अत्र समिधाधानम्। [१] (बटुः) पाणिनाग्निं परिसमूहति (सन्धुक्षयति, प्रदीप्तां करोति समिधाधानेन)। मन्त्रा यथा —

(अग्ने सुश्रव इत्यादीनां पञ्चानां ब्रह्मा ऋषिः पञ्च यजूंषि अग्निर्देवता परिसमूहने विनियोगः)।

ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसम्मा कुरु।

(इत्येकं काष्ठमग्नौ प्रक्षिपेत्)

ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवाऽसि ।

(इति द्वितीयम्)।

ॐ एवं माँ सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।

(इति तृतीयम्)।

ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधपाऽसि ।

(इति चतुर्थम्)

ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ [२]

(इति पञ्चमम्)।

इति परिसमुह्य तत उपकल्पितोदकेन प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्योत्तिष्ठन् घृताक्तां समिधमादधाति।

तिशाली बनाइए। हे अग्नि आप जिस प्रकार देवताओं के इस यज्ञ रूपी निधि के रक्षक हैं, वैसे ही मैं भी वेदरूपी मनुष्यों की सर्वोत्तम निधि की मैं वेदाध्ययन के द्वारा रक्षा करूं— वेदाध्ययन की परम्परा को बनाए रखूं—मुझे ऐसा सामर्थ्य प्रदान कीजिए।

इसके पश्चात् बटुक आचमानी या चम्मच अथवा हाथ से ही ईशान कोण से उत्तर पर्यन्त प्रदक्षिण क्रम से यज्ञवेदी के चारों ओर जल सिंचन करे।

तीन समिधाओं की आहुति —

इस प्रकार जब पांच घृताक्त शुष्केन्धन से अग्नि खूब प्रज्वलित हो जाए तो बटुक अपने स्थान पर खड़ा हो जाए और **'ॐ अग्नये समिधमहार्षम्'** तथा **'ॐ एषा ते अग्ने** इन दोनों मन्त्रों को पढ़कर अंगूठे के जैसी मोटी और बारह अंगुल लम्बी तीन पलाश की समिधाओं को घी में डुबोकर उनकी अग्नि में आहुति दे। प्रत्येक समिधा की आहुति देते समय ये दोनों मन्त्र पढ़ जाएं। इस प्रकार ये मन्त्र भी तीन बार पढ़े जाएंगे। इन मन्त्रों का अर्थ यह है—

मन्त्रो यथा —

(अग्नय इति प्रजापतिर्ऋषिर्विराकृतिश्छन्दः समिद्देवता समिदाधाने विनियोगः) ।

ओ३म् अग्नये समिधमहार्षं बृहते जातवेदसे । यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसे एवमहमायुषा वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासँस्वाहा ॥ [३]

एवं द्वितीयां तथा तृतीयाम् । [४] 'एषा ते अग्ने समित्तव' इति वा । समुच्चयो वा । [५] पूर्ववत्परिसमूहनपर्युक्षणे । [६]

पाणी प्रतप्य मुखं विमृष्टे (ललाटादि चिबुकान्तं प्रोञ्छति) । मन्त्रा यथा —

(तनूपाऽग्ने इत्यादीनां बृहद्देवा ऋषयो यजुश्छन्दोऽग्निर्देवता मुखविमार्जने विनियोगः) ।

ओ३म् तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि । आयुर्दाऽग्नेऽसि आयुर्मे देहि । वर्चोदाऽग्नेऽसि वर्चो मे देहि । ओ३म् अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ [७]

ओ३म् मेधां मे देवः सविता आदधातु मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु । ओ३म् मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ । [८]

हे देवगण ! मैं जातवेदा अर्थात् उत्पन्न होने वाले प्रत्येक जीव या पदार्थ को जान लेने वाले इस महान् यज्ञाग्नि में इस समिधा की आहुति दे रहा हूं । हे अग्नि देव आप जिस प्रकार इस समिधा के द्वारा प्रदीप्त हो रहे हैं, मैं भी उसी प्रकार दीर्घायुष्य, मेधा (धारणा-शक्ति), ब्रह्मतेज, सन्तति-परम्परा और पशु आदि धन-धान्य से समृद्ध होकर वेद-वेदांगों के अध्ययन के द्वारा ब्रह्मवर्च अर्थात् वेद-ज्ञान के तेज से तेजस्वी बनूं । (इसके पश्चात् बटुक अपने आचार्य के लिए मंगल कामना करता और कहता है कि) मेरे आचार्य के पुत्र और शिष्यादि दीर्घजीवी हों । और मैं मेधावी बनूं तथा वेदादि शास्त्रों के आदेशों का सदा पालन करता रहूं, उन्हें कभी भुलाऊँ नहीं । इस प्रकार यशस्वी, तेजस्वी और ब्रह्मचर्य से युक्त होकर मैं नानाविध (भोज्य) पदार्थों को सदा प्राप्त करता रहूं ।१।

ओ३म् एषा ते अग्ने…

हे अग्नि आपको मैं यह समिधा समर्पित कर रहा हूं । इससे आप भली-भांति प्रदीप्त एवं तृप्त होकर खूब बढ़ें । इसी प्रकार हम भी सदा तृप्त होकर फलते फूलते रहें ।

अङ्गान्यालभ्य जपति । मन्त्रा यथा —

(अङ्गानीत्यादीनां प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता आप्यायने विनियोगः) ।

ॐ अङ्गा नि च मा आप्यायन्ताम् ।

(इति बाहुभ्यां शिरस आपादं सर्वमङ्गमालभ्य जपति) ।

ॐ घ्राणश्च म आप्ययताम् । (इति नासिकारन्ध्रे) ।

ॐ चक्षुश्च म आप्यायताम् । (इति नेत्रे) ।

ॐ श्रोत्रञ्च म आप्ययताम् । (इति कर्णौ) ।

ॐ यशोबलञ्च म आप्यायताम् । (इति बाहू परस्परव्यत्यासेन) ।

(अथोदकस्पर्शः) ।

इसके पश्चात् बटुक बैठ कर पुनः ॐ अग्ने सुश्रवः इत्यादि पांच मन्त्रों से घृताक्त पांच समिधाओं की आहुति दे और ईशान कोण से उत्तर तक वेदी के चारों ओर जल सेचन कर पर्युक्षण करे।

तदनन्तर 'ॐ तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए मस्तक ललाट, नेत्र, नासिका और दाढ़ी सहित मुख को दोनों हाथों से सात बार तपाए । इन मन्त्रों का अर्थ यह है—

हे अग्निदेव! आप मेरे तन या सम्पूर्ण शरीर के रक्षक हैं, अतः मेरे इस शरीर की सदा, रक्षा करते रहें । हे अग्निदेव आप दीर्घायुष्य प्रदान करने वाले हैं, इसलिए मुझे दीर्घायु प्रदान करें । हे अग्निदेव आप ब्रह्मवर्च प्रदान करने वाले हैं, इसलिए मुझे ब्रह्मतेज प्रदान कीजिए । हे अग्निदेव मेरे अंगों में जो कोई कमी अपूर्णता या निर्बलता हो उसे दूर कर, उसे सर्वविध सामर्थ्य से परिपूर्ण और परिपुष्ट बनाइए । हे सविता देव, भगवान् सूर्यनारायण ! मुझे मेधा-(धारणा शक्ति) प्रदान करें । इसी प्रकार भगवती सरस्वती भी मुझे मेधावी बनाए और कमलों की माला धारण करने वाले दोनों अश्विनीकुमार भी मुझे मेधा-सम्पन्न बनाएं ।

अंग स्पर्श —

इसके पश्चात् अंग स्पर्श करे 'ॐ अंगानि च मे आप्यायताम्' इत्यादि मन्त्रों से निर्दिष्ट अंगों का इस मन्त्र से सिर से पैर तक) दोनों हाथों से स्पर्श करे । इन मन्त्रों का अर्थ यह है :— मरे मुख और उसकी वाक्शक्ति नासिका और प्राणशक्ति, नेत्र और उनके देखने की सामर्थ्य, कान और उनकी श्रवणशक्ति, भुजाएं और भुजबल सर्वथा परिपुष्ट होते रहें ।

(इसके पश्चात् यद्यपि त्र्यायुषीकरण किया जाना चाहिए किन्तु इसके साथ ही वेदारम्भ संस्कार भी किया जाता है । वहां पुनः त्र्यायुषीकरण करना है । अतः यहां त्र्यायुषीकरण करें या न करें । यूं दो बार करने में भी कोई आपत्ति की बात तो है नहीं ।)

ततः स्रुवमूलेन अग्नेर्भस्म ऐशन्या गृहीत्वा दक्षिणानामिकया ललाटादिषु तेन भस्मना तिलकं करोति। मन्त्रा यथा —

(त्र्यायुषमिति नारायण ऋषिरुष्णिक्छन्दोऽग्निर्देवता त्र्यायुषीकरणे विनियोगः)।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः (इति लालटें)।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् (इति ग्रीवायाम्)।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् (इति दक्षिणांसे)।

ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्। (इति हृदि)।

अथाभिवादनम् —

पूर्वमग्निमभिवाद्य 'अभिवादये अमुक गोत्रोऽमुकप्रवरो यजुर्वेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी अमुकशर्माहं भो ३ः इति' वाक्यमुच्चरन्कर्णौ स्पृष्ट्वा दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं वामेन च वामं पादं गृहीत्वा शिरसा गुरुमभिवादयेत्।

गुरुश्च 'आयुष्मान् विद्वांश्च भाव सौम्यामुकशर्मन्' इत्याशिषं दद्यात्। ततोऽन्यान् विद्यावयस्तपोवृद्धानभिवादयेत्। तथाचोक्तम् —

ततोभिवादयेद् वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्।
मातुलाश्च पितृव्याश्च श्वसुरास्तत्स्त्रियस्तथा॥१॥

प्रत्युत्थायाभिवाद्याः स्युः ज्येष्ठा भ्रातर एव च।
गुरुर्माता स्तन्यदात्री पित्रादित्रयमेव च॥२॥

अन्नदाता भयत्राता मन्त्रविद्योपदेशकः।
एते नित्याभिवाद्याः स्युः सपत्नीकाः शुभार्थिनः॥३॥

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे चतुर्थी कण्डिका)।

अभिवादन —

इसके पश्चात् बटुक एकाग्रचित्त से अपने इष्टदेव का ध्यान कर उन्हें मन ही मन प्रणाम करे और तत्पश्चात् भगवान् सूर्यनारायण और अग्निदेव को प्रणाम कर अपने नाम और गोत्रादि का उच्चारण करते हुए आचार्यजी के चरणों में प्रणाम करे और वे **'आयुष्मान विद्वान् भव सौम्य** अमुक शर्मन्' कह कर बटुक को आशीर्वाद दें। इसी प्रकार पिता ताया, चाचा नाना मामा श्वसुर बड़ा भाई व गुरु एवं माता सास नानी मामी चाची भाभी आदि स्त्रियों को प्रणाम करें। इसके पश्चात् वे सब लोग भी बटुक को आशीर्वाद देवें।

पारस्कर गृह्यसूत्रे द्वितीये काण्डे पञ्चमी कण्डिका

अत्र भिक्षाचर्यंचरणम् ।[१] भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत ।[२] भवन्मध्या७ राजन्यः । [३] भवदन्त्यां वैश्यः । [४] तिस्रोऽप्रत्याख्यायिन्यः । [५] षड्द्वादशा-परिमिता वा ।[६] मातरं प्रथमामेके ।[७] आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वा वाग्यतो-ऽहः—शेषं तिष्ठेदित्येके । [८] अहि७ सन्नरण्यात्समिध आहृत्य तस्मिन्नग्नौ पूर्व-वदाधाय वाचं विसृजते [९] ।

अधः शाय्यक्षारलवणाशी स्यात् । [१०] दण्डधारणमग्निपरिचरणं गुरु-शुश्रूषा भिक्षाचर्या । [११] मधुमा७समज्जनोपर्यासनस्त्रीगमनानृतादत्तादानानि वर्जयेत् ।[१२] अष्टाचत्वारि७शद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत् । [१३] द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम् ।[१४]यावद्ग्रहणं वा ।[१५]वासा७सि शाणक्षौमाविकानि।[१६]

अब बटुक भिक्षापात्र हाथ में लेकर अपनी माता तथा मौसी, भुआ आदि कम से कम तीन आदरणीय महिलाओं के समक्ष उपस्थित होकर **'भवति ! भिक्षां देहि'** बोलकर भिक्षा मांगे। आचार्य पारस्कर ने कहा है कि क्षत्रिय बालक' **'भिक्षां भवति देहि'** और वैश्य **'भिक्षां देहि भवति'** कहे ।

यदि बटुक चाहे तो तीन से अधिक छह, बारह अथवा और अधिक महिलाओं से भी भिक्षा मांग सकता है ।[1]

समिधाधान—

इसके पश्चात् बटुक 'अग्ने सुश्रव' इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्रों से यज्ञाग्नि में समिधाधान कर आचार्य आदि वृद्ध जनों को पुनः प्रणाम करे ।

ब्रह्मचारी के नियम —

उपनीत ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह भूमि पर सोया करे। नमक तथा अन्य क्षार खारे खट्टे चर्परे पदार्थ न खाए या कम खाए। दण्ड धारण किए रहे और प्रतिदिन प्रातः सायं अग्नि में समिधाधान, गुरु-सेवा तथा भिक्षाचर्य किया करे। मांस आदि का भक्षण न करे तथा स्त्रियों के बीच में बैठकर उनसे वार्तालाप न करे एवं नृत्य-गीत आदि से दूर रहे। वह बिना

---

१. यहां आचार्य ने केवल आदरणीय बड़ी महिलाओं से ही भिक्षा का आदेश दिया है। किन्तु आजकल पुरुषों से भी भिक्षा की प्रथा चल पड़ी है। आचार्य का आदेश है कि भिक्षा में प्राप्त भोज्यान्न लाकर बटुक आचार्य जी को समर्पित कर दे। किन्तु आजकल फल फूल मिठाई तो वे देते नहीं। नकद रुपया देते हैं और भिक्षा भी प्रायः दो बार मांगी जाती है, पहली भिक्षा आचार्यजी को दे दी जाती है और दूसरी बटुक के माता पिता स्वयं रख लेते हैं। यह उचित नहीं है।

ऐणेयमजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य। [१७] रौरवꣳ राजन्यस्य। [१८] आजं गव्यं वा वैश्यस्य। [१९] सर्वेषां वा गव्यमसति प्रधानत्वात्। [२०] मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य (२१) धनुर्ज्या राजन्यस्य। [२२] मौर्वी वैश्यस्य। [२३] मुञ्जाभावे कुशाश्मन्तकबिल्वजानाम्। [२४] पालाशो ब्राह्मणस्य दण्डः। [२५] बैल्वो राजन्यस्य। [२६] औदुम्बरो वैश्यस्य। [२७] (केशसंमितो ब्राह्मणस्य ललाटसंमितः क्षत्रियस्य, घ्राणसंमितो वैश्यस्य) सर्वे वा सर्वेषाम्। [२८] आचार्येणाहूत उत्थाय प्रतिश्रृणुयात्। [२९] शयानं चेदासीन आसीनं चेत्तिष्ठँस्तिष्ठन्तं चेदभिक्रामन्नभिक्रामन्तं चेदभिधावन्। [३०] स एवं वर्तमनोऽमुत्राद्य वसत्यमुत्राद्य वसतीति तस्य स्नातकस्य कीर्तिर्भवति। [३१] त्रयः स्नातका भवन्ति विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति। [३२] समाप्य वेदमसमाप्य व्रतं यः समावर्तते सः विद्यास्नातकः। [३३] समाप्यव्रतमसमाप्य वेदं यः समावर्तते स व्रतस्नातकः। [३४] उभयꣳ समाप्य यः समावर्तते स विद्याव्रतस्नातक इति। [३५] आ षोडषाद्वर्षाद्ब्राह्मणस्य नातीतः कालो

दिए किसी की वस्तु न ले। नदी-तालाब आदि में स्नान न करे (कुएं या नदी से बाहर बाल्टी आदि से लाए गए जल से स्नान किया करे)। चारपाई या किसी दूसरे ऊंचे आसन पर न बैठे।

इस प्रकार एक-एक वेद के लिए बारह-बारह वर्ष तक अध्ययन करने के हिसाब से कुल अड़तालीस वर्ष तक वेदाध्ययन के लिए ब्रह्मचय ब्रत धारण करे। अथवा एक ही वेद के लिए बारह वर्ष तक या जितने समय में वह अपने वेद और वेदांग का अध्ययन कर ले तब तक ब्रह्मचारी रहे।

ब्रह्मचारी के वस्त्र शण या अलसी के बने होने चाहिएं। उसे सदा अजिन (मृगचर्म) धारण किए रहना चाए।

ब्राह्मण की मेखला मूंज की, क्षत्रिय की धनुष की डोरी की और वैश्य की मूर्वी नामक घास की बनी होनी चाहिए। ब्राह्मण का दण्ड पलाश का, क्षत्रिय का बिल्व का और वैश्य का गूलर का बना हुआ हो। ब्राह्मण का दण्ड केश (सिर) के बराबर, क्षत्रिय का मस्तक तक और वैश्य का नाक तक हो। आचार्य यदि खड़े हो तो उनकी बात वह भी खड़े होकर सुने। यदि वे लेटे हुए कुछ बात कहें तो ब्रह्मचारी बैठकर और यदि वे बेठे हुए हों तो खड़े होकर उनकी बात सुने। इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने वाले का यह लोक और परलोक दोनों बन जाते हैं और सर्वत्र इसकी कीर्ति होती है।

स्नातक तीन प्रकार के होते हैं—१. विद्या-स्नातक २. व्रतस्नातक ३. विद्याव्रत-स्नातक। जो वेद का अध्ययन तो कर लेता है, पर ब्रह्मचारी के व्रतों का पालन नहीं कर पाता, उसे 'विद्यास्नातक' जो ब्रह्मचर्य व्रत का तो पालन कर लेता है, किन्तु वेद-वेदांगों का सम्पूर्ण अध्ययन नहीं क पाता, उसे 'व्रत-स्नातक' और जो विद्या और व्रत दोनों का पालन करता है उसे 'विद्याव्रतस्नातक' कहते हैं।

भवति। [३६] आ द्वाविꣳशाद्राजन्यस्य। [३७] आ चतुर्विꣳशाद्वैश्यस्य। [३८] अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। [३९] नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न चैभिर्व्यवहरेयुः। [४०] कालातिक्रमे नियतवत्। [४१] त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकाणामपत्यसंस्कारो नाध्यापनं च। [४२] तेषाꣳ संस्कारेप्सुर्व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन्व्यवहार्या भवन्तीति वचनात्। [४३]

इत्युपनयनसंस्कारः

(इति पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीये काण्डे पञ्चमी कण्डिका)

ब्राह्मण का यज्ञोपवीत-काल सोलह वर्ष तक, क्षत्रिय का बाईस वर्ष तक ओर वैश्य का चौबीस वर्ष तक है। इसके बाद वे 'पतित-सावित्रीक' हो जाते हैं। इस अवधि तक यदि उनका उपनयन न हो तो बिना प्रायश्चित्त किए इनका उपनयन न कराए। इन्हें वेद न पढ़ाए तथा इनसे यज्ञादि न करवाए। जिसकी तीन पीढ़ियां पतित-सावित्रीक' हो जाए, ऐसी सन्तान का यज्ञोपवीत आदि संस्कार तथा वेदाध्यापन का अधिकार समाप्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति यदि अपने यज्ञोपवीत आदि संस्कार करवाना चाहें तो 'व्रात्यस्तोम' यज्ञ करने के पश्चात् उन्हें यज्ञोपवीत एवं वेदाध्ययनाध्यापन का अधिकारी बनाया जा सकता है।

पारस्कर गृह्यसूत्र के द्वितीय काण्ड की पांचवीं कण्डिका समाप्त।

प्रकरण भी समाप्त।

वेदारम्भ संस्कार

विवेचन

यज्ञोपवीत संस्कार के द्वारा व्यक्ति को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसीलिए यज्ञोपवीत धारण कर लेने के तत्काल पश्चात् बटुक को वेद-वेदांगों का अध्ययन आरम्भ कर देना चाहिए। वेद के संहिता भाग, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तथा सूत्र ग्रन्थ यह सब मिलकर 'वेद' संज्ञा से अभिहित है। इसके साथ ही छः वेदांगों का भी अध्ययन करना होता है। क्रम यह है कि पहले वेद की अपनी शाखा जैसे शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन आदि तथा कृष्ण यजुर्वेद की काण्व आदि ऋग्वेद की शाकल आदि को कण्ठस्थ करना होता है। तत्पश्चात् अन्य वैदकि साहित्य तथा वेदांगों को। इसके लिए आचार्य पारस्करने एक-एक वेद के लिए बारह-बारह वर्ष की अवधि नियत की है। और साथ ही यह भी कह दिया है कि यदि कोई सम्पूर्ण वैदिक साहित्य अर्थ सहित कण्ठस्थ न भी कर पाए तो जितना कर सके उतना ही कर ले।

'द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम्। यावद् ग्रहणं वा।' यद्यपि आचार्य ने वेदारम्भ संस्कार का पृथक् उल्लेख नहीं किया है तथापि दूसरे काण्ड को पांचवीं कण्डिका के उक्त दोनों तथा इसके पूर्व के सूत्र में वेदाध्ययन की अपरिहार्यता बता कर आगे समावर्तन संस्कार के आरम्भ में कहा है —

'वेदं समाप्य स्नायात् इति।' इस संस्कार का पारस्करानुमोदित होना स्वतः सिद्ध है। इस संस्कार में यज्ञ एवं गणेश सरस्वत्यादि पूजन के बाद तत्तद् वेद के प्रथम तथा स्वशाखीय वेद के प्रत्येक मण्डल या अध्याय आदि का प्रथम मन्त्र सिखाने की ही विधि सम्पादित की जाती है। अतः इसका हिन्दी अनुवाद अनावश्यक है। इसीलिए यहाँ संस्कृत भाग ही दिया जा रहा है।

अथ वेदारम्भसंस्कारः

आचार्यपारस्करेण स्वकीयगृह्यसूत्रस्य द्वितीयकाण्डस्य पञ्चम्यां कण्डिकायां **बटोर्भिक्षाचर्यविधानेन** सहैव —

अष्टचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत् । द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम् । यावद्ग्रहणं वा ॥१३-१५॥

इति सूत्रत्रयेण यज्ञोपवीतानन्तरं द्वादशवर्षं प्रतिवेदमधीयीत इत्यादिष्टम् । अतः तत्कालमेव वेदारम्भः स्वयमेवोपात्तः । एतदेव स्पष्टीकुर्वता भाष्यकारेण श्रीमता हरिहरेणोक्तम् —

'अत्र वेदब्रह्मचर्यं चरेदित्यनेकवेदाध्ययनाङ्गतया ब्रह्मचर्याचरणमुक्तं, वेदाध्ययनारम्भस्य काल इति कर्त्तव्यता च नोक्ता केवलं समावर्तनकर्मसूत्रकारेणारब्धं वेदाꣳ समाप्य स्नायादिति । तत्र वेदारम्भं विना समाप्तिः कर्तुमशक्येति उपनयनानन्तरमेव वेदारम्भस्य समय इत्यवगम्यते । इति कर्त्तव्यता च पुनरेतदेव व्रतादेशनविसर्गेष्विति उपाकर्महोमातिदेशाद् व्रतादेशने वेदारम्भे प्राप्नोति' इति ।

विधिः

प्राणानायम्य गणपत्यादिपूजनं कृत्वा देशकालौ स्मृत्वा यजुर्वेदव्रतादेशं ऋग्वेदव्रतादेशं वा करिष्य इति यथावेदं संकल्प्य पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं समुद्भवनामानं लौकिकाग्निं स्थापयेत् । तत्र ब्रह्मचारिणमाहूयाग्नेः पश्चात् स्वस्योत्तरत उपवेश्य ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यभागान्तं चरुवर्जं कर्म कृत्वा यजुर्वेदमारभेत-ॐअन्तरिक्षाय स्वाहा—इदंमन्तरिक्षाय न मम—इति सर्वत्र त्यागवाक्यं योज्यम् । ॐवायवे स्वाहा । इति द्वौ आज्याहुती हुत्वा । ॐ ब्रह्मणे स्वाहा । छन्दोभ्यः स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । देवेभ्यः स्वाहा । ऋषिभ्यः स्वाहा । श्रद्धायै स्वाहा । मेधायै स्वाहा । सदसस्पतये स्वाहा । अनुमतये स्वाहा । इति नवाहुतिहोमं कृत्वा शेषं समापयेत् । यदि ऋग्वेदारम्भस्तदाज्यभागानन्तरं पृथिव्यै स्वाहा । अग्नये स्वाहा । इत्याहुतिद्वयानन्तरं ब्रह्मणे स्वाहेत्यादि नवाहुतयः । यदि सामवेदारम्भस्तदाज्यभागान्ते-दिवे स्वाहा । सूर्याय स्वाहा । इति हुत्वा ब्रह्मण इति पूर्ववत् । यद्यथर्ववेदारम्भस्तदाऽज्यभागान्ते-दिग्भ्यः स्वाहा । चन्द्रमसे स्वाहा—इत्याहुतिद्वयानन्तरं

ब्रह्मण इत्यादि पूर्ववत्। यदैकतन्त्रेण सर्ववेदारम्भस्तदाज्यभागानन्तरं क्रमेण प्रतिवेदमुक्ताहुतिद्वयं हुत्वा ब्रह्मणे छन्दोभ्य इत्याहुतिद्वयं हुत्वाघाराज्यभागमहाव्याहृतिपञ्चवारुणिप्राजापत्य स्विष्ट कृताश्चैचतुर्दशभिराहुतिभिः जुहुयात्। ततः संस्रवप्राशनमुखमार्जनपवित्रप्रतिपत्तिःप्रणीताविमोकः पूर्णपात्रदानादिकाः सर्वे विधयः सम्पादनीयाः ते च विधयः पूर्वमेवोपनयनसंस्कारे २४६-४६ पृष्ठे प्रदत्ता अतएव ग्रन्थविस्तारभयादत्र पुनर्नैव प्रतिपादितास्तत्रैव दृष्टव्याः।

प्राशनादिविमोकान्ते कृत्वा विघ्नेशपूजनम्।
सरस्वतीं हरिं लक्ष्मीं स्वविद्यां पूजयेत्ततः॥

इति कारकिावचनात् प्रथमं गणेशादीन् पूजयेत्। तद्यथा—अद्येहामुकोऽहं वेदारम्भकर्म्मणः पूर्वाङ्गत्वेन गणेशादीनाम् आवाहनस्थापनपूजनानि करिष्ये इति संकल्प्य ताम्रस्थाल्यादौ दध्यक्षतान् गृहीत्वा उत्तरवृद्धया स्थापयेत्—ॐ भूर्भुवः स्वः गणेश इहागच्छ पूजार्थं त्वामावाहयामि इह तिष्ठ। ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णो इहा०। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वविद्ये इहा०। "ॐ एतन्ते" इति अग्नि प्रतिष्ठाप्य नाममन्त्रेण ध्यानादिर्नीराजनान्तं सम्पूज्य गुरुं च गन्धपुष्पादिभिरभ्यर्च्य पूर्ववत्पादोपसङ्ग्रहणं कुर्यात्। गुरुश्च ततो ब्रह्मचारिणं यथाविधि वेदमध्यापयेत्। तद्यथा अग्नेरुत्तरतो ब्रह्मचारिणमुदङ्मुखं प्राङ्मुखं वा प्रागग्रेषु कुशेषूपवेश्य स्मार्त्ताचमनं प्राणायामं ब्रह्माञ्जलिं च कारयित्वा प्रणवमहाव्याहृतिपूर्वां गायत्रीं पाठयित्वा स्ववेदारम्भं कुर्यात्।

(तत्र ॐ इषेत्वादिखम्ब्रह्मान्तस्य माध्यन्दिनीयकस्य वाजसनेयकस्य यजुर्वेदाम्नायस्य विवस्वान् ऋषिर्गायत्र्यादीनि सर्वाणिच्छन्दांसि सर्वाणि यजूꣳषि लिङ्गोक्ता देवताः स्वाध्यायाध्ययने विनियोगः) ॐ हरिः ॐ। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयत्। ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मण ऽआप्यायध्वमघ्न्या ऽइन्द्राय भागम्। प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मावस्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्य्यजमानस्य पशून्पाहि॥

ततः 'वसोः पवित्रम्' इति स्वल्पारम्भं कारयित्वा अध्यायदीन्प्रब्रूयात्।

ॐ कृष्णोसि० २, ॐ समिधाऽग्निम्, ३, ॐ एदम्, ४, ॐ अग्नेस्तन् ५, ॐ देवस्य त्वा. ६, ॐ वाचस्पतये. ७, ॐ उपयामगृहीतोऽसि०. ८, ॐ देव सवितः. ९, ॐ अपो देवाः. १०, ॐ युञ्जानः प्रथमम्. ११, ॐ दृशानो रुक्मः. १२, ॐ मयि गृह्णामि. १३, ॐ ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिः. १४, ॐ अग्ने जातान्. १५, ॐनमस्ते. १६, ॐ अश्मन्नूर्जम्. १७, ॐ वाजश्च. १८, ॐ स्वाद्वीन्त्वा. १९, ॐ क्षत्रस्य योनिः २०, ॐ इमम्मे. २१, ॐ तेजोऽसि. २२, ॐ हिरण्यगर्भः सम् २३, ॐ अश्वस्तूपरः. २४, ॐ शादन्दद्भिः. २५, ॐ अग्निश्च. २६, ॐसमास्त्वा. २७, ॐ होता यक्षत्. २८, ॐ समिद्धोऽअञ्जन्. २९, ॐ देव सवितः.

३०, ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः. ३१, ओं तदेवः. ३२, ओं अस्या जरासः. ३३, ओं यज्जाग्रतः. ३४, ओं अपेतः । (जलस्पर्शः विष्णोर्वा स्मरणम्.) ३५, ऋतंवाचम्. ३६, ओं देवस्य त्वा. ३७, ओं देवस्य त्वा. ३८, ओं स्वाहा-प्राणेभ्यः. ३९, ओं ईशावास्यम्. ४०, ।

ओं हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम् । योऽसावादित्ये पुरुषः सोसावहम् ओं खम्ब्रह्म ४० ।

ओं व्रतमुपैष्यन्नन्तरेणाहवनीयञ्च गार्हपत्य च प्राङ्तिष्ठन्नप ऽउपस्पृशति तद्यदप ऽउपस्पृशत्यमेध्यो वै पुरुषो यदनृत वदति तेन पूतिरन्तरतो मेद्ध्या वा आपो मेद्ध्यो भूत्वा व्रतमुपायानीति पवित्रा वाऽआपः पवित्रपूतो व्रतमुपायानीति तस्म्माद्वाऽअप ऽउपस्पृशति ॥ १ ॥ सोऽग्निमेवाभीक्षमाणो व्रतमुपैति ।

ओं प्राश्नीपुत्त्रादासुरिवासिनः । प्राश्नीपुत्र ऽआसुरायणादासुरायणऽआसुरेरासुरिर्याज्ञवल्क्याद्याज्ञल्क्य ऽउद्दालकादुद्दालकोऽरुणादरुण उपवेशेरुपवेशिः कुश्रेः, कुश्रिर्वाजश्रवसो, वाजश्रवा जिह्वावतो बाद्ध्योगाज्जिह्वावान्बद्ध्योगोऽसिताद्वार्षगणादसितो वार्षगणो हरितात्कश्यपाद्धरितः कश्यपः शिल्पात्कश्यपाच्छिल्पः कश्यपः कश्यपान्नैध्रुवेः, कश्यपो नैध्रुविर्वाचो वागम्भिण्या, अम्भिण्यादित्याद्, आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूꣳषिवाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते ॥ २ ॥ इत्येवं यजुर्वेदारम्भं परिसमापयेत् ।

(अथ ऋग्वेदादिमन्त्रस्य मधुच्छन्दा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्द्देवता स्वाध्यायाध्ययने विनियोगः) ।

ओं अग्निमीले पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् । इति ऋग्वेदारम्भः ।

(अथ सामवेदादिमन्त्रस्य गौतम ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्द्देवता स्वाध्यायाध्ययने विनियोगः) ।

१ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र

ओं अग्न आयाहि वीतयेगृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ इति सामवेदारम्भः ।

(शन्नो देवीरिति अथर्ववेदादिमन्त्रस्य दध्यङ्ङाथर्वणऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्द्देवता स्वाध्यायाध्ययने विनियोगः) ।

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तुनः — इत्यथर्ववेदारम्भः ॥

पुनः पूर्ववत् प्रणवमहाव्याहृतिपूर्विकां गायत्रीं पठित्वा "ओं विरामोऽस्तु" इति वदन्तं गुरुं शिष्यः पादोपसङ्ग्रहणपूर्वकं प्रणम्य विरमेत् ।

ततः सप्रणवं स्वस्तिवाचयित्वोत्थाय फलपुष्पसमन्वितब्रह्मचारिदक्षिण-करस्पृष्टेन घृतपूर्णेन स्रुवेण पूर्णाहुतिं दद्यात् ।

ॐ मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातग्निम् । कविँसम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा ॥

इदमग्नये वैश्वानराय न मम ।

तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना ललाटादि स्पृशेत् । ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे । ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणबाहुमूले । ॐ तन्नोऽस्तु त्र्यायुषमितिहृदि । अनेनैव क्रमेण ब्रह्मचारिणः ललाटादावपि भस्म योजयेत् । तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इत्यूहः कार्यः ।

यान्तु मातृगणाः सर्वे० इति मातृविसर्जनानन्तरं ब्रह्मणान् भोजयेत् ।

केशान्त संस्कार

विवेचन

ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए २५ वर्ष की आयु तक बाल कटवाना निषिद्ध है। किन्तु समावर्तन से पूर्व ब्रह्मचारी को दाढ़ी मूछ आदि कटवा लेने का विधान किया गया है। समावर्तन से पूर्व की जाने वाली इसी 'केशच्छेदन' विधि को केशान्तसंस्कार कहा गया हैं। इस केशान्त संस्कार में भी यज्ञ-पूजन के पश्चात् केशच्छेदन की विधि ही मुख्य है। यहां भी हिन्दी में समझने-समाझाने योग्य कुछ विशेष वक्तव्य न होने के कारण इस केशान्त संस्कार का विशेष वैज्ञानिक विवेचन नहीं दिया जा रहा है। यूँ भी पारस्कर ने केशान्तसंस्कार का उल्लेख नहीं किया है तथा अनेक पद्धतियों में भी यह समाविष्ट नहीं है, तथापि 'षोडश संस्कार' इस संख्या की पूर्ति के लिए अनेक पद्धतियों में इसका समावेश होते हुए भी यह प्रचलन में नहीं है, क्योंकि आज-कल कोई भी इतने वर्षों तक दाढ़ी-मूंछ आदि बढ़ाकर नहीं रह पाता। यह केशान्त संस्कार समावर्तन के साथ (तत्काल पूर्व) किया जाता है।

केशान्तसंस्कारः

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः ॥ —मनु० अ० २

जन्मतः षोडशे वर्षातीते सप्तदशे प्राप्ते यद्वा व्रतविसर्गात्पूर्वमुत्तरायणे शुक्लपक्षे चूड़ाकर्मोक्ततिथ्यादौ केशान्तः कार्यः। येषां ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति तैर्ब्राह्मणैः सप्तदशे, क्षत्रियैस्त्रयोविंशे वैश्यैश्च पञ्चविंशे वर्षे केशान्तो नियमेन कार्यः। ब्रह्मचारिभिः सप्तदशादौ व्रतसमाप्तेः पूर्वं वा कार्यं इति विवेकः। श्मश्रुवपनप्रारम्भः केशान्तः। जटिलब्रह्मचारिणा तु सर्वकेशवपनं केशान्तसंस्कारः। स चोत्तरायणशुक्लपक्षादौ ज्योतिषोक्तशुभमुहूर्ते कार्यः।

अथ प्रयोगः

आचार्यः पिता वा वहिःशालायां पत्न्या सह शुभासन उपविश्य तस्या दक्षिणतो ब्रह्मचारिणमुपवेश्य-आचम्य प्राणायामं कृत्वा देशकालकीर्त्तनान्ते—अस्य ब्रह्मचारिणः केशान्तकर्माहं करिष्य इति संकल्प्य तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनस्वस्तिपुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धादिकं च करिष्य इति च संकल्प्य

यद्यपि पारस्कर ने केशान्त संस्कार का विधान नहीं किया, तथापि मनु ने कहा है कि जन्म से सोलहवें वर्ष के समाप्त होने पर सत्रहवें के आरम्भ में ब्राह्मण का केशान्त संस्कार करे, तेईसवें वर्ष में क्षत्रिय का और २५वें वर्ष में वैश्य का करे। अथवा ब्राह्मणादि ब्रह्मचर्याश्रमी हों तो उनका ब्रह्मचर्य समाप्ति से पहिले या सत्रहवें वर्ष में आचार्य कुल में स्वयं आचार्य ही केशान्त संस्कार करे। ब्रह्मचारी न होने पर नियम से सत्रहवें आदि वर्ष में ही केशान्त संस्कार करना चाहिये। जटिल ब्रह्मचारियों का शिखा को छोड़ के सिर के तथा दाढ़ी मूंछ और बगलों के सब केशों का छेदन केशान्त कहा जाता है, तथा अन्यों के दाढ़ी मूंछ बगलों के केशच्छेदन के प्रारम्भ का नाम केशान्त संस्कार है। सब प्रकार का केशान्त उत्तरायण शुक्ल पक्ष में तथा ज्योतिष शास्त्र में चूड़ाकर्म के लिए बताए तिथि नक्षत्रादि में शुभमुहूर्त्त में करना चाहिये।

आचार्य या पिता यज्ञशाला के बाहर पत्नी सहित शुभासन पर बैठ पत्नी से दक्षिण में ब्रह्मचारी को बैठा के आचमन प्राणायाम कर संकल्पान्त में कहे कि इस ब्रह्मचारी का केशान्त

गणपतिपूजनादिकं कृत्वा पुण्याहवाचनान्ते प्रजापतिः प्रीयतामित्यूहः कार्यः। परिष्कृतभूमौ वेदिकां कृत्वा होमं कुर्यात्। तत्र क्रमः—कुशैर्हस्तमितां भूमि परिसमुह्य तामैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेन प्रादेशमात्रन्त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य वारिणां तं देशमभ्युक्ष्य कांस्यपात्रेणाग्निमानीय सूर्यनामानमग्निमभिमुखं स्थापयेत्। ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय—

ॐ अद्यैतस्मिन् कर्त्तव्यकेशान्तहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे।

इति ब्रह्माणं वृणुयात्।

ॐ वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम्। ओम् यथाविहितं कर्म कुर्विति यजमानेनोक्ते ॐ करवाणि।

इति प्रतिवचनम्। ततो यजमानोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्याग्निप्रदक्षिणंकारयित्वाऽस्मिन्कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय। ओम् —भवानीति तेनोक्ते ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्य प्रणीतापात्रं पुरतकृत्वा वारिणापूर्य चूडाकरणोक्तविधिना सर्वं कुर्यात्।

(यत्क्षुरेणेति वामदेवऋषिर्यजुश्छन्द क्षुरो देवता केश परिहरेण विनियोगः)।

ॐ यत् क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्त्वावा वपति केशांश्छिन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीर्मुखम्।

इति मन्त्रेण घृताक्ताभिरेवाद्भिः समस्तं शिरः संक्लिद्य—

संस्कार मैं करूंगा। तदनन्तर संकल्पपूर्वक गणपति पूजनादि करके पुण्याहवाचन आदि करे। उसके अनन्तर शुद्ध भूमि में स्थण्डिल वेदिका बना के विधिपूर्वक होम करे। प्रथम वेदी में पञ्चभूसंस्कार करे—तीन कुशों से वेदीभूमि को झाड़ कर कुशों को ईशान कोण में फेंककर गोबर और जल से लीपकर स्रुवा के मूल वा स्फ्य से उत्तर वेदी से प्रागायत तीन रेखा करे। अनामिका और अंगुष्ठ से रेखाओं में से मिट्टी को उठा कर फेंक के वेदी में जल सेचन करे। कांसे के या मिट्टी के पात्र में अग्नि को लाकर सूर्यनामक अग्नि को अभिमुख स्थापन करे। तत्पश्चात् पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रों को लेकर (ओमद्य०) इत्यादि वाक्य पढ़ के यजमान ब्रह्मा का वरण करे और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर [ओं वृतोऽस्मि] कहे। तब (यथावि०) यजमान कहे और ब्रह्मा (करवाणि) कहे। तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि बिछा कर उन पर पूर्व को जिनका अग्रभाग हों ऐसे कुश बिछाकर अग्नि की प्रदक्षिणा

(अक्षण्वन्नेति वामदेवऋषिः यजुश्छन्दः क्षुरो देवता नापिताय क्षुरदाने विनियोगः)।

ओ३म् अक्षण्वन्परिवप । इति नापिताय क्षुरं प्रयच्छति।

ततः नापितः शिखां धृत्वा समस्तकेशश्मश्रु वपनं कुर्यात्। ब्रह्मचारी स्नात्वाऽऽचार्याय गौ गौमूल्यं वा दक्षिणां दद्यात् । ब्रह्मचारी त्रिरात्रं केशवपनं वर्जयेत्। पूर्ववत्पूर्णाहुतिः।

ओ३म् मूर्धानंदिवो अरति पृथिव्या । इत्यादिना।

तत उपविश्य स्त्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना त्र्यायुषं कुर्यात्।

ओ३म् त्र्यायुषं जमदग्नेः । इति ललाटे।

ओ३म् कश्यपस्य त्र्यायुषम् । इति ग्रीवायाम्।

ओ३म् यद्देवेषु त्र्यायुषम् । इति दक्षिबाहुमूले।

ओ३म् तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् । इति हृदि।

अनेनैव क्रमेण ब्रह्मचारिललाटादावपि। तत्र तत्ते अस्तु इति विशेषः। ततस्तान् केशान् सगोमयपिण्डान् गोष्ठे सरित्तीरे वा अन्यस्मिन्नुदकान्तरे वा निदध्यात्।

'यान्तु मातृगणाः सर्वे' इति पठित्वा मातृविसर्जनं कृत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्॥

इति केशान्तः समाप्तः।

करके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कह कर ब्रह्मा के (भवानि) कहने पर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठाकर प्रणीतापात्र को सामने रख के जल से भर ले। इसके पश्चात् चूड़ाकरण की भांति सब विधि सम्पन्न कर घृतादि मिले शीत और उष्ण जल से केशों को भिगोकर (ओ३म् क्षण्वन परिवप०) ऐसा कहकर नाई को उस्तरा देवे। और नाई शिखा को छोड़ कर शेष सब बाल तथा दाढ़ी मूंछ को बनावे। तब ब्रह्मचारी स्वय स्नान करके आचार्य को गौ या गौ का मूल्य दक्षिणा देवे। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी तीन दिन तक ब्रह्मचर्य रहे और केशच्छेदन न करावे। तदनन्तर (मूर्धानं०) मन्त्र से पूर्णाहुति देकर बैठ के स्रुवा द्वारा भस्म ले के दाहिने हाथ की अनामिका अङ्गुली के अग्रभाग से (त्र्यायुषं०) से मस्तक में (कश्यपस्य०) से कण्ठ में (यद्देवेषु०) से दक्षिण बाहु के मूल में और (तन्नोअस्तु०) से हृदय में भस्म लगावे। इसी क्रम से ब्रह्मचारी के मस्तकादि में भी भस्म लगावे पर यहां मन्त्रस्थ (तन्नो) के स्थान में (तत्ते०) ऊह करे। तब उन गोबर सहित केशों को गोशाला में या नदी के किनारे वा अन्य तालाब आदि के किनारे गाड़ दें। पश्चात् मातृगणों का विसर्जन करके यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे।

केशान्त संस्कार समाप्त।

समावर्तन संस्कार

विवेचन

पारस्करगृह्यसूत्र के द्वितीय काण्ड की छठी कण्डिका में समावर्तन संस्कार का वर्णन है।

यह एक प्रमुख एवं आवश्यक संस्कार है। 'समावर्तन' शब्द का अर्थ है—सम्यक् आवर्तनम्—अर्थात् गुरु-गृह से वेदाध्ययन के बाद सकुशल भली-भांति वापिस लौट कर घर आना। उपनयन के पश्चात् ब्रह्मचारी वेदाध्ययन के लिए गुरु गृह या गुरुकुल—अपने-अपने वेद की की शाखा का अध्ययन कराने वाली 'चरण' (गुरुकुल) नाम से अभिहित संस्था में—प्रविष्ट होता है। स्मरण रहे कि वेद की शाखा-विशेष का अध्ययन कराने के लिए पहले अनेक संस्थाएं हुआ करती थीं। इन्हीं संस्थओं के लिए 'चरण' यह पारिभाषिक नाम प्रयुक्त होता है।

इस संस्था में रहते हुए बटुक जब साङ्ग वेद का अध्ययन कर ब्रह्मतेज से युक्त हो वापिस अपने घर लौटता है, उस समय ब्रह्मचारी आचार्य से निवेदन करे कि गुरु जी, अब मैं (गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए) स्नान करूँगा। तब आचार्य (गुरु जी) यज्ञवेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख और अपने दायीं ओर ब्रह्मचारी को अपने उत्तराभिमुख बैठा कर आगे बतायी गयी यज्ञ-विधि सम्पन्न करें। तत्पश्चात् यज्ञवेदी के उत्तर में पहले से रखे हुए जल पूरित आम्र-पल्लव युक्त आठ ताम्बे के कलशों के जल से ब्रह्मचारी अपना अभिसिंचन करता है। और दही या तिल खाकर अपने बाल व नाखून कटवा कर दातुन कर के अपने शरीर पर उबटन मल कर गर्म जल से स्नान कर ले।

तत्पश्चात् अब बटुक को आंखों में अंजन, आदि श्रृंगारों से श्रृंगारित कर दर्पण में उसका मुख दिखाय जाता है कि देखो अब तुम ब्रह्मतेज से किस प्रकार तेजोदीप्त हो रहे हो। सुन्दर नये वस्त्र, पादत्राण (जूते) भी उसे पहनाए जाते हैं तथा छत्र धारण करवाया जाता है। (ब्रह्मचर्य काल में ये सब वस्तुएं उसके लिए निषिद्ध थीं)। क्योंकि इस संस्कार में आठ कलशों से स्नान ही मुख्य है, अतः अपना विद्याध्ययन भली-भांति सम्पन्न कर लेने वाले विद्यार्थी को 'स्नातक' कहा जाता है। इसी आधार पर आजकल Graduate को स्नातक कहा जाता है। इस प्रकार यह संस्कार दूसरे (गृहस्थ) आश्रम में प्रवेश का प्रमुख द्वार है।

इसी प्रसंग में पारस्कर गृह्यसूत्र की सातवीं ओर आठवीं कण्डिका में व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक बनने के लिए शिष्टाचार के कुछ नियम बताए गये हैं।

आवश्यक सामग्री

समावर्तन संस्कार के लिये गणपत्यादि पूजन एवं यज्ञ हवन आदि के लिए विहित सम्पूर्ण सामग्री के साथ कुछ अन्य निम्न सामग्री भी अपेक्षित है—

१. यज्ञोपवीत की भांति अग्नि समर्धिन के लिए पांच विशिष्ट समिधाएं। २. हरी कुशा। ३. सर्वौषधी (आठों जल कुम्भों में डालने के लिए), ४. गंगा, पुष्कर आदि तीर्थों के जल से भरे हुए आठ कलश। दही अथवा तिल (ब्रह्मचारी के खाने के लिए), ६. शुद्ध जल (पुनः स्नान के लिए)। गूलर की दातुन। ८. गर्म जल (फिर स्नान के लिए)। ९. केशर-चन्दन (तिलक के लिए)। १०. अहत शुद्ध नवीन वस्त्र धोती व उत्तरीय। ११. यज्ञोपवीत। १२. पुष्पहार १३. साफा या पगड़ी। १४. नए सिले हुए पहनने के वस्त्र। १५. अंजन (सुरमा)। १६. दर्पण। १७ छतरी। १८, जूते और बैंत की छड़ी आदि।

विशेषः—यज्ञ-पूजन आदि की त्र्यायुषी-करण तक की विधि हिन्दी में पहले अनेकत्र दी जा चुकी है, अतः यहां पुनः उस विधि को हिन्दी में उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं, इसलिये वह केवल संस्कृत में ही दी गई है।

अथ समावर्तनसंस्कारः

(पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे षष्ठी कण्डिका)

वेदꣳसमाप्य स्नायात्। [१] ब्रह्मचर्यं वाऽष्टाचत्वारिꣳ शतम्। [२] द्वादशकेऽप्येके। [३] गुरुणानुज्ञातः। [४] विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः। [५] षडङ्गमेके। [६] न कल्पमात्रे। [७] कामं तु याज्ञिकस्य। [८] उपसंगृह्य गुरुꣳ समिधोऽभ्याधाय परिश्रितस्योत्तरतः कुशेषु प्रागग्रेषु पुरस्तात्स्थित्वाऽष्टानामुदकुम्भानाम्। [९]

विधिः

भो गुरो अहं स्नास्यामि, इति सम्प्रार्थ्य।

'स्नाहि, इति लब्धानुज्ञः वक्ष्यमाणविधिना स्नायात्।

आचार्यः समावर्तनवेदीसमीपमागत्य प्राङ्मुख उपविश्य स्वदक्षिणत उदङ्मुखं बटुमुपवेश्य गणेशादीन् प्रणम्य सम्पूज्य च वेद्याः पञ्चभूसंस्कारं कुर्यात्। अद्येह अमुकोऽहं अमुकस्यास्य बटोः स्नातकत्व सिद्धये समावर्तनसंस्कारं करिष्ये इति संकल्प्य ब्रह्मोपवेशनादि पात्रासादनादिकं कुर्यात्।

पारस्कर ने कहा है कि वेदाध्ययन के समाप्त हो जाने पर अथवा ब्रह्मचर्य काल की समाप्ति पर अपने गुरु या आचार्य से अनुज्ञा लेकर ब्रह्मचारी स्नान करे। आचार्य ने चौथे सूत्र में कहा है कि वेद से विधि (ब्राह्मणभाग), विधेय-मन्त्रभाग और तर्क अर्थात् (अर्थवाद या मीमांसा) अथवा षडंग वेद अभिप्रेत हैं। साथ ही छठे सूत्र में यह भी कह दिया है कि यहां कल्प मात्र अर्थात् वेदों के कण्ठस्थ कर लेने मात्र से प्रयोजन नहीं है, अपितु उनका अर्थज्ञान भी होना चाहिए[1]। इसके साथ ही आचार्य ने समावर्तन संस्कार का काल निश्चित करने के लिए यह भी विकल्प बता दिया है कि यज्ञ के आचार्य जब चाहे तभी समावर्तन संस्कार किया जा सकता है। इस प्रकार आचार्य ने समावर्तन संस्कार काल के लिए तीन विकल्प बताए हैं— क. अर्थ सहित वेद-वेदांगों की समाप्ति के पश्चत्, ख. वेदादि का अध्ययन न भी किया हो तो

---

१. इसी आशय को स्पष्ट करते हुए भाष्यकार पहले कर्कचार्य ने और फिर जयराम ने कहा कहा है कि "न च कल्पमात्रे ग्रन्थमात्रेऽधिगते स्नानार्हो भवति, तस्माद् ग्रन्थतोऽर्थतश्चाधिगम्य स्नायात्।"

ततः पवित्रच्छेदनादि पर्य्युक्षणान्तं कर्म्म कृत्वा द्रव्यदेवताभिध्यानं कुर्य्यात्—अद्येह अस्य बटोः समावर्त्तनकर्म्मणाऽहं यक्ष्ये । तत्र प्रजापतिम्, इन्द्रम्, अग्निं, सोमम्, अन्तरिक्षं, वायुं, ब्रह्माणं, छन्दाꣳसि, पृथिवीम्, अग्निं, ब्रह्माणं, छन्दाꣳसि, दिवं, सूर्य्यं, ब्रह्माणं, छन्दाꣳसि, दिशः, चन्द्रमसं, ब्रह्माणं, छन्दाꣳसि, प्रजापतिं, देवान्, ऋषीन्, श्रद्धां, मेधां, सदसस्पतिम्, अनुमतिम्, अग्निं, वायुं सूर्य्यम्, अग्नीवरुणौ, अग्नीवरुणौ, अग्निं, वरुणꣳसवितारं विष्णुं विश्वान् (देवान्) मरुतः स्वर्कान्, वरुणम्, प्रजापतिं, स्विष्टकृतं चाज्येनाहं यक्ष्ये ।

(पित्रादेरन्यस्य वृतस्याचार्यस्य होमकर्तृत्वे पित्रादिः "इदमाज्यं तत्तद्देवतार्थं मया परित्यक्तं यथादैवतमस्तु न मम" इति त्यागं पूर्वमेव कुर्यात्) ।

ततः राजपुत्रनामानमग्निम् ॐ भूर्भुवः स्वः राजपुत्रनामाग्ने सुप्रतिष्ठितो वरदो भव इति प्रतिष्ठाप्य नाममन्त्रेण ध्यानावाहनपाद्यादिनीराजनान्तं सम्पूज्य रेखापूजनं च कृत्वा दक्षिण जान्वाच्य ब्रह्मणाऽन्वारब्धो जुहुयात् —

ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये न मम (इति मनसा) । ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय न मम । ॐ अग्नये स्वाहा—इदमग्नये न मम । ॐ सोमाय स्वाहा—इदꣳ सोमाय न मम ।

इति आघारावाज्यभागौ च हुत्वा अन्वारम्भं त्यक्त्वा वेदारम्भवत्प्रधानाहुतीर्जुहुयात् ॥

ब्रह्मचर्य काल के समाप्त होने पर गृहस्थाश्रम या विवाह से पूर्व, ग. ब्रह्मचर्य काल (२५ वर्ष) की समाप्ति से पूर्व भी आचार्य यदि चाहें तो ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार करवा सकते हैं। इसी आधार पर आज के युग में यह प्रचलन उचित ही है कि विवाह के समय गणेश-स्थापन से पूर्व युवक का समावर्तन संस्कार विधिपूर्वक किया जाए, भले ही उसने वेदादि का अध्ययन न भी किया हो। और वेद न पढ़ने वाले का भी उपनयन संस्कार किया जाता है, वैसे ही विवाह से पूर्व प्रत्येक द्विज का समावर्तन संस्कार अवश्य किया जाना चाहिए। आजकल यह प्रथा भी चल पड़ी है कि यज्ञोपवीत, वेदारम्भ और समावर्तन तीनों संस्कार एक साथ ही कर दिए जाते हैं। 'अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः' के अनुसार यह भले ही ठीक हो, किन्तु उचित तो यही है कि समावर्तनसंस्कार विवाह से पूर्व ही किया जाए।

विधि-विधान

ब्रह्मचारी गुरुजी से प्रार्थना करे कि अब मैं (स्नातक बनने के लिए शास्त्रीय विधि से) स्नान करूंगा ।

'अब तुम स्नान कर सकते हो', गुरुजी उसे यह आज्ञा देकर निम्न विधि से स्नान करवाएं ।

तत्र पूर्वं यजुर्वेदाहुतयः —

ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा—इदमन्तरिक्षाय न मम। ॐ वायवे स्वाहा—इदं वायवे न मम। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा—इदं ब्रह्मणे न मम। ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा—इदं छन्दोभ्यो न मम।

अथ ऋग्वेदाहुतयः — ॐ पृथिव्यै स्वाहा इदं पृथिव्यै न मम। ॐ अग्नये स्वाहा—इदमग्नये न मम। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा—इदं ब्रह्मणे न मम। ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा—इदं छन्दोभ्यो न मम।

अथ सामवेदाहुतयः — ॐ दिवे स्वाहा— इदं दिवे न मम। ॐ सूर्य्याय स्वाहा—इदꣳ सूर्य्याय न मम। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा— इदं ब्रह्मणे न मम। ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा—इदं छन्दोभ्यो न मम।

अथाथर्ववेदाहुतयः— ॐ दिग्भ्यः स्वाहा— इदं दिग्भ्यो न मम। ॐ चन्द्रमसे स्वाहा— इदं चन्द्रमसे न मम। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा — इदं ब्रह्मणे न मम। ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा—इदं छन्दोभ्यो न मम।

अथ सर्वसामान्याहुतयः— ॐ प्रजापतये स्वाहा— इदं प्रजापतये न मम। ॐ देवेभ्यः स्वाहा— इदं देवेभ्यो न मम। ॐ ऋषिभ्यः स्वाहा— इदम् ऋषिभ्यो न मम। ॐ श्रद्धायै स्वाहा— इदꣳ श्रद्धायै न मम। ॐ मेधायै स्वाहा— इदं मेधायै न मम। ॐ सदसस्पतये स्वाहा— इदꣳ सदसस्पतये न मम। ॐ अनुमतये स्वाहा—इदमनुमतये न मम।

इत्थं प्रधानाहुतीर्हुत्वा ब्रह्मणाऽन्वारब्धः —

(व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि अग्निवायुसूर्या देवताः समावर्तनहोमे विनियोगः)।

ॐ भूः स्वाहा— इदमग्नये न मम। ॐ भुवः स्वाहा— इदं वायवे न मम। ॐ स्वः स्वाहा— इदꣳ सूर्याय न मम।

(त्वन्नोऽअग्ने, स त्वन्नोऽअग्ने इत्यनयोर्वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्नीवरुणौ देवते समावर्तनहोमे विनियोगः)।

ॐ त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्-स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ स त्वं नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याउषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि-स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

आचार्य समावर्तन संस्कार की यज्ञवेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठकर दायीं ओर ब्रह्मचारी को उत्तराभिमुख बैठाकर स्वस्तिवाचन एवं गणेशादि की पूजा करने के पश्चात् कुश-कण्डिका एवं पात्रासादनादि कार्य सम्पन्न कर संकल्प करे।

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्य नभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजᳫं स्वाहा ॥

इदमग्नये अयसे इदं न मम ।

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्र यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳫं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम-स्वाहा । इदं वरुणाय न मम ।

एताः सर्वप्रयश्चित्तसंज्ञका आहुतयः । ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये न मम । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।

सस्रवप्राशनम्, मुखमार्जनं, पवित्रप्रतिपत्तिः, प्रणीताविमोकः । ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम् । तत्र सङ्कल्पः-अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहम् अमुकराशेरस्य बटोः समावर्त्तनाङ्गहोमकर्म्मणः साङ्गफलप्राप्तये अपूर्णपूरणार्थं च इदं पूर्णपात्रं सदक्षिणं ब्रह्मन् तुभ्यं सम्प्रददे इति सङ्कल्प्य दद्यात् ।

ततो ब्रह्मचारी पूर्ववद्गुरुमभिवाद्य "अग्नेसुश्रवः" इत्यादिमन्त्रैः अग्निपरिसमूहनं कुर्य्यात् ।

(अग्नेसुश्रव इत्यादीनां पञ्चानां ब्रह्मा ऋषिर्यजुश्छन्दोऽग्निर्देवता परिसमूहने विनियोगः) ।

ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु १ इत्येकं काष्ठं गोमयपिण्डं वाऽग्नौ प्रक्षिप्य, ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवाऽअसि २ इति द्वितोयम्, ॐ एवं माᳫं सुश्रवः सौश्रवसं कुरु ३ इति तृतीयम्, ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपाऽअसि ४ इति चतुर्थम् ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ५ इति पञ्चमं प्रक्षिपेत् । ततः प्रदक्षिणमग्निं पर्य्युक्ष्योत्थाय घृताक्ताम् एकां समिधमादाय तिष्ठन्—

(अग्नये समिधमिति प्रजापतिर्ऋषिराकृतिश्छन्दः समिद्देवता समिदाधाने विनियोगः) ।

ॐ अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । यथा त्वमग्ने समिधा समिद्धयसऽएवमहमायुना मेधया वर्च्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे । जीवपुत्रो ममाचार्य्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो

इसके पश्चात् उपर्युक्त विधि से आचार्य हवन करे तथा ब्रह्मचारी पांच घृताक्त समिधाओं को मन्त्र-पूर्वक यज्ञाग्नि में डाले और उसके पश्चात् तीन समिधाओं का आधान कर अंग प्रतपन और त्र्यायुषीकरण आदि सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करे (ऊपर संस्कृत में दी गई विधि

भूयासꣳस्वाहा—इति मन्त्रेण अग्नौ आदध्यात्।

एवं द्वितीयां तथा तृतीयां च समिधम् आधाय उपविश्य—

"अग्ने सुश्रव" इत्यादिपञ्चभिर्मन्त्रैः पूर्ववत्परिसमूहनं पर्युक्षणं च विधाय तूष्णीं पाणी प्रतप्य वक्ष्यमाणमन्त्रैः —

(तनूपाऽअग्ने इत्यादीनां मन्त्राणां बृहद्देवा ऋषयः यजुश्छन्दः अग्निर्देवता मुखप्रोञ्छने विनियोगः)।

ॐ तनूपा ऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाहि १ ॐ आयुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि २ ॐ वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि ३ ॐ अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण। ४ ॐ मेधाम्मे देवः सविता आदधातु। ५ ॐ मेधां देवी सरस्वती आदधातु। ६ ॐ मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ। ७ इति सप्तभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं ललाटाच्चिबुकपर्य्यन्तं मुखं प्रोञ्छति।

ततः :—

(अङ्गानीत्यादीनां प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः लिङ्गोक्ता देवताः अङ्गाप्यायने विनियोगः)।

इत्येवमृष्यादिकं स्मृत्वा—ॐ अङ्गानि च मऽआप्यायन्ताम्— इति शिरस आपादमङ्गान्यालभ्य जपेत्। ॐ वाक्च मऽआप्यायताम्—इति मुखम्। ॐ प्राणश्च मऽआप्यायताम्। इति नासिकारन्ध्रे युगपत्। ॐ चक्षुश्च मऽआप्यायताम्—इति चक्षुषी युगपत्। ॐ श्रोत्रं च मऽआप्यायताम्—इति दक्षिणवामे श्रोत्रे मन्त्रावृत्त्या क्रमेण। ॐ यशो बलञ्च मऽआप्यायताम्—इति परस्परव्यत्यासेन। तत उदक-स्पर्शः। अथानामिकयाऽग्नेर्भस्म गृहीत्वा त्र्यायुषाणि कुरुते वक्ष्यमाणमन्त्रैः —

(त्र्यायुषमिति नारायणऋषिरुष्णिक्छन्दः अग्निर्देवता त्र्यायुषीकरणे विनियोगः)।

ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः—इति ललाटे। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्— इति ग्रीवायाम्। ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्—इति दक्षिणांसे। ॐ तन्नो ऽअस्तु त्र्यायुषम्—इति हृदि।

अथाग्न्यभिवादनं व्यत्यस्तपाणिभ्यां कार्य्यम्। "अमुकगोत्रोऽमुकेत्येतावत्—प्रवरोऽमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी अमुकशर्म्मा अहं भो अग्ने त्वामभिवादये" इत्यग्निमभिवाद्य ततः व्यत्यस्तपाणिभ्याम् कर्णौ स्पृष्ट्वा अमुकगोत्र इत्यादि

का हिन्दी अनुवाद पहले उपनयन संस्कार में दिया जा चुका है, अतः यहां पुनः नहीं दिया गया)।

जल-पूरित आठ कुम्भों को स्थापना

यज्ञ वेदी के उत्तर में कुशासन या चटाई आदि के ऊपर क्रमशः दक्षिण से उत्तर की ओर एक के आगे एक तांबे के आठ तीर्थजलपूर्ण कलश स्थापित कर दिए जाए। और इनमें

पूर्ववदभिवादनवाक्यमुक्त्वा "भो गुरो त्वामभिवादये" इति गुरुमभिवादयेत् । गुरुश्च "आयुष्मान्भव सौम्यामुकशर्म३न्" इत्याशिषं दद्यात् । (अत्रैव क्वचित्पुस्तके पूर्णाहुतिहोमो निर्दिष्टः । अस्माभिस्तु स्नातकस्य नियमश्रावणान्ते निर्देक्ष्यते) ।

अथ परितः कटादिनाऽऽच्छादितस्य स्थलस्यैकदेशेऽग्नेरुत्तरतः दक्षिणोत्तरायतानामाम्रादिपल्लवमुखानां ताम्रादिमयानामनुपहतानाम् उदक्संस्थानां कुम्भानां पुरस्तात् प्रागग्रान् हरितान् कुशानस्तीर्य तेषु उदङ्मुखः स्थितो ब्रह्मचारी "प्राञ्चि उदञ्चि वा कर्माणि भवन्ति" इति न्यायात् दक्षिणस्य प्रथमत्वं परिकल्प्य प्रथमादुदककुम्भादप आदत्ते वक्ष्यमाणमन्त्रेण ।

(येऽप्स्वन्तरिति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः आपो देवता अपामादाने विनियोगः) ।

ओ३म् येअप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्यऽउपगोह्यो मयूखो मनोहाऽस्खलो विरुजस्तनूदूषिरिन्द्रियहा तान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥ [१०] इति मन्त्रेण प्रथमोदककुम्भाद्दक्षिणचुलुकेन अपो गृहीत्वा आत्मानमभिषिञ्चति वक्ष्यमाणमन्त्रेण ।

(तेनेति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः आपो देवताः अभिषेचने विनियोगः) ।

ओ३म् तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय—इति ॥ [११]

अथ द्वितीयोदककुम्भात् पूर्ववत् येऽप्स्वन्तरिति जलादानम् । अभिषेचने तु मन्त्रविशेषः ।

सर्वौषधी आदि को डाल दिया जाय । उनके मुखों पर आम्रपल्लव रख दिए जाएं । अपने आगे हरी कुशा रख कर ब्रह्मचारी 'ओ३म् येऽप्स्वन्तरग्नयः' इत्यादि मन्त्र पढ़कर पहले कलश से जलग्रहण कर आम्रपल्लवों के द्वारा अपना अभिसिंचन करे अर्थात् सिर तथा दूसरे अंगों पर जल के छींटे दे ।

'ओ३म् यऽप्स्वन्तरग्नयः' इत्यादि मन्त्र का अर्थ यह है—('अग्नेराप' इस श्रुति के अनुसार जल अग्नि तत्त्व से ही उत्पन्न हुए हैं, अतः जल में वह विद्यमान ही है) हे अग्निदेव, आप इन कलशों के जल में व्याप्त हैं । इस जल में मन के उत्साह को कम करने वाले रोगाणुओं से युक्त, शरीर को दूषित करने वाले और इन्द्रियों की शक्ति को क्षीण करने वाले जो आठ प्रकार के अनिष्टकारक तत्त्व हैं, उनको दूर हटाकर जो मंगलदायक शोभन व रोचक तत्त्व है, उसे मैं ग्रहण करता हूं ।

मैं श्री अर्थात् धन-सम्पत्ति और शोभा, यश, वेदज्ञान तथा ब्रह्मतेज अथवा उस ब्रह्मज्ञान को सदा सबल बनाए रखने के लिए इस मंगलकारी जल से अपना अभिषेक कर रहा हूं ।

(येनेति प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवताः अभिषेचने विनियोगः)।

येन श्रियमकृणुतां येनावमृषताᳯसुराम् । येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः इति ॥ [१२]

अथ तृतीयचतुर्थपञ्चम कलशेभ्यः 'आपो हिष्ठा' इत्यादिभिरभिषिञ्चेत् ।

(आपोहिष्ठेत्यादितिसृणां सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवताः अभिषेचने विनियोगः)।

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ इत्यभिषिञ्चेत् ।

अथ चतुर्थकुम्भात् जलमादाय —

ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशीतिरिव मातरः ॥ इति अभिषिञ्चेत् ।

अथ पञ्चमकुम्भात् जलमादाय —

ॐ तस्माऽअरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥

इति शिरोऽभिषिञ्चेत् ॥ [१३]

तब 'ॐ येन श्रियमकृणुतां' इत्यादि मन्त्र से दूसरे कलश के जल से अपने ऊपर छींटे दे । इस मन्त्र का अर्थ यह है—

'हे देवताओं के वैद्य दोनों अश्विनीकुमारों आप दोनों ने जिस जल के प्रभाव से देवताओं को श्रीसम्पन्न बनाया और उन्हें अमृतपान कराया, जिस जल का अभिसिञ्चन करके आपने अन्धे हुए उपमन्यु की आंखों को फिर से ज्योति प्रदान कर दी और जो जल आपके यश का विस्तारक है, उसी जल से मैं अपना अभिषेक कर रहा हूं।'

इसके पश्चात् 'ॐ आपो हिष्ठा' इत्यादि तीन मन्त्रों से तीसरे, चौथे व पांचवें कलश में से जल लेकर अपने ऊपर छीटे दे।

इसके पश्चात् शेष बचे तीन कलशों के जल से बिना किसी मन्त्र के क्रमशः अपना अभिसिंचन करे।

तत्पश्चात् 'उदुत्तमम्' इत्यादि उपर्युक्त मन्त्र से अपनी कमर में बंधी मेखला को ऊपर की ओर से उतार दे और दण्ड रख दे। तब दूसरे वस्त्र पहन कर 'ॐ उद्यन्भ्राजिष्णु' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर सूर्योपस्थान करे। इस मन्त्र का अर्थ यह है —

त्रिभिस्तूष्णीमितरैः। [१४]

उदुत्तममिति मेखलामुन्मुच्य दण्डं निधाय वासोऽन्यत्परिधायादित्यमुपतिष्ठते। [१५] मन्त्रो यथा —

ॐ उदुत्तमं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।

(उद्यन्भ्राजिष्णुरिति प्रजापतिर्ऋषिः शक्वरी छन्दः आदित्यो देवता आदित्योपस्थाने विनियोगः)।

ॐ उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय। उद्यन्भ्राजिष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय। उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्सायं यावभिरस्थात्सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय॥ [१६]

ततो दधि तिलान्वा तूष्णीं प्राश्याचम्य जटालोमनखादींश्छेदयित्वा स्नात्वाचम्य प्रादेशमितोदुम्बरकाष्ठेनान्नाद्यायेतिमन्त्रेण दन्तधावनं कुर्यात्।

(ॐ अन्नाद्यायेत्याथर्वणऋषिरनुष्टुप्छन्दः सोमो देवता दन्तधावने विनियोगः)।

ॐ अन्नाद्याय व्यूहध्वꣳसोमो राजाऽयमागमत्। स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च॥ [१७]

हे सूर्य प्रातः सवन के समय जैसे इन्द्र सर्वत्र व्यापक अथवा गमनशील मरुद्गणों से युक्त होकर सुशोभित होते हैं वैसे ही उदित होते हुए आप भी गमनशील सप्तर्षि गणों से सेवित होकर शोभायमान होते हैं। हे सूर्यनारायण! आप जिसप्रकार सभी प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को जानते हैं वैसे ही मुझे भी सर्वज्ञ बना दीजिए और जिस प्रकार आप प्रातः सवन के समय गौ आदि दश पशुओं के प्रदाता हैं उसी प्रकार मुझे भी ऐसा बनाइए कि मैं दसियों गौओं का दान करने वाला बन सकं अथवा दस गुणित दे सकूं। और जिस प्रकार मध्याह्न सवन के समय आप शतगुणित एवं सायं सवन के समय सहस्रगुणित द्रव्यादि के प्रदाता हैं, वैसे ही मैं भी शत-सहस्रगुणित दान करने वाला और सर्वज्ञ बन जाऊं।

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी अपनी हथेली में दही या तिल लेकर चुपचाप थोड़ा सा खा ले और अपने सिर व दाढ़ी मूंछ के बाल यदि बढ़े हुए हों तो उन्हें कटवाकर स्नान कर ले तथा 'ॐ अन्नाद्याय' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए गूलर की दातुन करे। 'ॐ अन्नाद्याय' आदि मन्त्र का अर्थ यह है —

(हे दांतो!) आप भोजन आदि के लिए मेरे मुख में पंक्तिबद्ध रूप से स्थित हैं, इसलिए मैं आपको सोम तत्त्व से युक्त इस वनस्पति की दातुन से शुद्ध और स्वच्छ कर रहा हूं। वही सोम मुझे यश और सौभाग्य से युक्त बनाए।

इति दन्तधावनमन्त्रः। ततो दन्तकाष्ठं परित्यज्याचम्य सुगन्धिद्रव्येणोद्वर्त्तनं विधायोष्णोदकेन स्नात्वा च द्विराचम्य चन्दनकुङ्कुमादिना नासिकादेरालम्भनं कार्यम्।

(ॐ प्राणापानावितो प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः लिङ्गोक्ता देवता चन्दनोपसंग्रहणे विनियोगः)।

ॐ प्राणापानौ मे तर्पय। ॐ चक्षुर्मे तर्पय। ॐ श्रोत्रं मे तर्पय॥ [१८]

इति मन्त्रेणानुलिम्पेत्। ततो हस्तौ प्रक्षाल्य पातितवामजानुः कृतापसव्यो दक्षिणमुखो द्विगुणभुग्नकुशत्रयतिलजलान्यादाय—आस्तृतकुशत्रयोपरि पितॄंस्तर्पयेत्।

(ॐ पितर इति प्रजापत्यश्विसरस्वत्य ऋषयो यजुश्छन्दः पितरो देवताः निषेचने विनियोगः)।

ॐ पितरः शुन्धध्वम्॥

ततः सव्यं कृत्वाऽपउपस्पृश्याचम्य चन्दनादिनात्मानमनुलिप्य जपेत्।

इसके पश्चात् बेसन, हल्दी तथा छेलछबीला आदि सुगन्धित द्रव्यों में तेल मिलाकर उससे ब्रह्मचारी उबटन करके गर्म जल से स्नान कर ले। तत्पश्चात् 'ॐ प्राणापानौ' इत्यादि मन्त्र से (तिलक करने के लिए घिसे हुए) केशर युक्त चन्दन अपनी नासिका, नेत्र और कानों में लगा ले, फिर हाथ धोकर बायां घुटना टेककर अपसव्य हो दक्षिण की ओर मुंह करके तीन मोटक (दोहरी मोड़ी हुई कुशाएं) बिछाकर हाथ में तिल और जल लेकर उन कुशों पर 'ॐ पितरः शुन्धध्वं' यह मन्त्र बोलकर पितरों का तर्पण करे।

फिर सव्य हो दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके आचमन कर ले और घिसे हुए चन्दन से मस्तक, कान, हृदय और भुजा आदि पर तिलक कर ले।

फिर 'ॐ परिधास्यै' आदि मन्त्र पढ़ते हुए शुद्ध नवीन कञ्चुक आदि वस्त्र पहन ले। इस मन्त्र का अर्थ पहले विवाह-संस्कार में दिया जा चुका है। तत्पश्चात् 'ॐ यज्ञोपवीत' आदि मन्त्र पढ़कर एक दूसरा यज्ञोपवीत धारण कर ले (क्योंकि ब्रह्मचारी को एक तथा स्नातक आदि दूसरों को दो यज्ञोपवीत धारण करने होते हैं)। इसके पश्चात् आचमन कर ॐ यशसा आदि मन्त्र पढ़ते हुए दुपट्टा कन्धे पर डाल ले तथा 'ॐ या अहरत' इत्यादि मन्त्र से फूलों की माला हाथ में लेकर 'ॐ यद्यशो' इत्यादि मन्त्र से उसे अपने गले में पहन ले। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

जमदग्नि ऋषि ने श्रद्धा, मेधा अभिलाषा की पूर्ति और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को

(ॐ सुचक्षा इति प्रजापतिर्ऋषिः यजुश्छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः)।

ॐ सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳसुवर्चा मुखेन सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ॥ [१९]

ततोऽहतं वासोऽमौत्रधौतं वा परिधास्य इति परिदधीत्।

(ॐ परिधास्यै इत्याथर्वणऋषिः पंक्तिश्छन्दो वासो देवता अधोवस्त्र परिधाने विनियोगः)।

ॐ—परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूचीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ [२०]

* ततो यज्ञोपवीतमिति द्वितीयं यज्ञसूत्रं धारयेत्[1] —

ऋष्यादयः पूर्वमुक्ताः।

ॐ—यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥*

तत आचम्योत्तरीयं वासः परिदधीत् —

ॐ यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ [२१]

सशक्त और सक्षम बनाए रखने के लिए जो पुष्प ग्रहण किये थे, मैं भी उन पुष्पों को ग्रहण कर रहा हूं। हे प्रभो ! आपकी कृपा से इन पुष्पों को ग्रहण करने से मेरा यश और ऐश्वर्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता रहे।

ॐ यद्यशो आदि मन्त्र का अर्थ यह है—

जिन पुष्पों के द्वारा इन्द्र ने अप्सराओं के वेणीबन्धन से अत्यन्त सौन्दर्य और लोकप्रियता आदि प्राप्त किये थे, उसी विपुल यश की प्राप्ति के लिए मैं पुष्पों की गुथी हुई इस माला को धारण कर रहा हूं।

---

१. यद्यपि पारस्करेणात्र यज्ञपवीतधारणं नैव निर्दिष्टम् तथापि गदाधरणोक्तम् —

धारयेद् वैणवीं यष्टिं सोदकञ्च कमण्डलुम्।
यज्ञोपवीतं वेदञ्च शुभे रौप्ये च कुण्डले ॥

इति मनूक्तत्वाद्यज्ञोपवीतद्वयधारणमिति हरिहरः प्रयोगरत्नाकरश्च।
(यद्यपि हरिहरेण तु नेदमुक्तं तथापि प्रयोगरत्नाकरेऽस्य विधानं भवेदिति मन्तव्यम्)।

एकमेव वासश्चेत्पूर्वस्यैवोत्तरभागेनोत्तरीयधारणम्। ततः —

(या आहरदिति भरद्वाजऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुमनसो देवताः पुष्पमालाग्रहणे विनियोगः)।

ॐ या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय। या अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥ [२३]

इति मन्त्रेण पुष्पमालां गृहीत्वा यद्यश इति तां कण्ठे धारयेत्।

(यद्यशोऽप्सरसामिति भरद्वाजऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुमनसो देवताः पुष्पमालाधारणे विनियोगः)।

ॐ यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु। तेन संग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥ [२४]

अथ युवा सुवासा इत्युष्णीषेण शिरो वेष्टयेत्।

(युवासुवासा इति मन्त्रस्य विश्वामित्रऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः (उष्णीषं) शिरोदेवता उष्णीषधारणे विनियोगः)।

ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ [२५]

ततो अलङ्करणमिति मन्त्रावृत्त्या दक्षिणे वामे च कर्णे क्रमेण कुण्डले परिदधीत।

(अलंकरणमिति प्रजापतिः यजुः अलंकरणं देवतं अलंकरणे विनियोगः)।

ॐ अलङ्करणमसि योऽलङ्करणं भूयात् ॥ [२६]

इसके पश्चात् 'ॐ युवा सुवासा आदि मन्त्र पढ़कर अपने सिर पर साफा या पगड़ी बांध ले। (इस मन्त्र का अर्थ पहले दिया जा चका है)।

फिर 'ॐ अलंकरणमसि' इत्यादि मन्त्र पढ़कर कानों में कुण्डल पहन ले।

तदनन्तर 'ॐ वृत्रस्यासि' इत्यादि मन्त्र पढ़कर अपनी आंखों में अञ्जन लगाले। इस मन्त्र का अर्थ यह है —

हे अञ्जन तू वृत्र की कनीनिका है, (कनीनिका रूप होने के कारण दृष्टिप्रद है) इसलिए तू मुझे भी देखने की क्षमता प्रदान किये रहना। फिर 'ॐ रोचिष्णुरसि' (अर्थात् हे दर्पण तू प्रकाशयुक्त है) यह मन्त्र पढ़कर दर्पण में अपनी छवि निहारे (कि अब मैं कितना सुन्दर दिखाई दे रह हूं)।

ततो वृत्रस्यासीति मन्त्रावृत्या प्रथमं वामं ततो दक्षिणं चक्षुरञ्ज्यात् ।

(वृत्रस्येति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः अञ्जनं देवता अक्ष्यञ्जने विनियोगः) ।

ओ३म्—वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥ [२७]

(रोचिष्णुरसि प्रजापतिर्यजुः आदर्शो देवता आदर्शे प्रेक्षणे विनियोगः) ।

निम्न मन्त्रेणादर्शे आत्मानं प्रेक्षते ।

ओ३म् रोचिष्णुरसि । [२८]

ततो बृहस्पत इति छत्रं प्रतिगृह्णाति । मन्त्रो यथा —

(बृहस्पतेरिति गौतमः बृहतिश्छत्रं छत्रग्रहणे विनियोगः) ।

ओ३म् बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि ॥ [२९]

ततः पद्भ्यामुपानहौ प्रतिगृह्णीयात् । मन्त्रो यथा —

(प्रतिष्ठे स्थ इति विश्वामित्रऋषिर्विराट्छन्दो लिंगोक्ता देवता उपानत्प्रतिमोके विनियोगः) ।

ओ३म् प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मा पातम् ॥ [३०]

ततो विश्वाभ्य इतिमन्त्रेण वैणवं दण्डमादत्ते । मन्त्रो यथा —

(विश्वाभ्य इति याज्ञवल्क्य ऋषिर्यजुश्छन्दो दण्डो देवता दण्डग्रहणे विनियोगः) ।

ओ३म् विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः ॥ [३१]

दन्तधावनादिकर्माण्यग्रेऽपि नित्यं मन्त्रैः स्नातकेनानुष्ठेयानि । वासश्छत्रोपानहं दण्डश्च यदाऽपूर्वं नूतनं धारयेत्तदा मन्त्रेण । [३२]

तत आचार्याय वरं दक्षिणां दद्यात्, तत उत्थायाचार्यो मूर्द्धानमिति मन्त्रेण फलपुष्पसमन्वितघृतपूर्णस्रुवेण स्नातकदक्षिणकरस्पृष्टेन पूर्णाहुतिं कुर्यात् ॥

फिर 'ओ३म् छदिरसि' इत्यादि मन्त्र पढ़कर छत्र धारण करे या छत्री लगाले । इस मन्त्र का अर्थ यह है—हे छत्र, तू देवगुरु बृहस्पति के सिर पर से धूप आदि को बचाने वाला है, अतः मुझे भी पाप कर्मों से बचाते रहना, किन्तु तेज और यश का निवारण मत करना । अर्थात् मुझे तेजस्वी और यशस्वी बनाना । फिर 'ओ३म् प्रतिष्ठे स्थ' इत्यादि मन्त्र पढ़ने के पश्चात् पावों में जूते पहन ले । इस मन्त्र का अर्थ यह है—

हे जूतो, तुम मेरे और सब लोगों के धारक हो इसलिए (मुझे, कांटों आदि से मेरे पावों को) बचाते रहना ।

ॐ—मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कवि ँसम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा ॥

तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणकरानामिकाग्रगृहीतभस्मना ललाटादिं स्पृशेत् —

ॐ—त्र्ययुषं जमदग्नेः। इति ललाटे।

ॐ—कश्यपस्य त्र्यायुषम्। इति कण्ठे।

ॐ—यद्देवेषु त्र्यायुषम्। इति दक्षिणबाहुमूले।

ॐ—तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्। इति हृदि ॥

अनेनैव क्रमेण स्नातकललाटादावपि त्र्यायुषं कुर्यात्। तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इत्यूहः कार्यः। आचार्यादिमान्यानां पूजनं कृत्वा तेषामाशिषो गृहीत्वा गणपतिमातृगणादीनां विसर्जनं कृत्वा संकल्पपूर्वकं यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्।

इति समावर्त्तनसंस्कारः समाप्तः।

इति पारस्करगृह्यसूत्रे द्वितीयकाण्डे षष्ठी कण्डिका।

अथ पारस्करगृह्यसूत्रे सप्तमी काण्डिका

[१] स्नातस्य यमान्वक्ष्यामः।

[२] कामादितरः।

[३] नृत्यगीतवादित्राणि न कुर्यान्न च गच्छेत्।

फिर 'ॐविश्वाभ्यः' आदि मन्त्र पढ़कर बांस का डंडा या बेंत की छड़ी अपने हाथ में लेले। इस मन्त्र का अर्थ यह हे —हे डंडे तू सभी प्रकार के विघातक या विनाशक तत्त्वों या दुष्ट लोगों से रक्षा करने वाला है, अतः मेरी सब प्रकार से रक्षा करते रहना।

फिर आचार्य को दक्षिणा दे तथा 'ॐ मूर्धानं दिवो' आदि मन्त्र से पूर्णाहुति के पश्चात् 'त्र्यायुषम्' आदि मन्त्रों से स्रुवे से यज्ञभस्म लेकर मस्तक आदि पर उसका तिलक कर ले।

इसके पश्चात् गुरुजनों को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद ले। गणपति एव मातृगणों आदि का विसर्जन कर ब्राह्मण-भोजन के पश्चात् स्वयं भी अपने पारिवारिक जनों के साथ भोजन करे।

आचार्य पारस्कर का आदेश है कि प्रतिदिन दातुन आदि तो मन्त्र पढ़कर ही किया करे, किन्तु छत्र आदि जब नए लगाए, तभी मन्त्र पढ़े।

इसके बाद सातवीं काण्डिका में स्नातक के कुछ नियम बताए गए हैं, इनकी संस्कृत सरल है, अतः इनका हिन्दी अनुवाद नहीं दिया गया।

इन उपदेशों का सार यही है कि स्नातक को (जब तक विवाह न हो जाय) नृत्यगानादि से तथा स्त्रियों से दूर रहना चाहिए। रात के समय किसी दूसरे गांव में न जाय। पानी

[४] कामं तु गीतं गायति वैव गीते वा रमत इति श्रुतेर्ह्यपरम्।

[५] क्षेमे नक्तं ग्रामान्तरं न गच्छेन्न च धावेत्।

[८] ···—······अप्स्वात्मानं नावेक्षत्।

[९] अजातलोम्नीं विपुंसी षण्डञ्च नोपहसेत्।

[१०] गर्भिणीं विजन्येति ब्रूयात्।

[११] सकुलमिति नकुलम्।

[१२] भगालमिति कपालम्।

[१४]···गां धयन्तीं परस्मै नाचक्षीत।

[१५] उर्वरायामनन्तर्हितायां भूमावुत्सर्पंस्तिष्ठन्न मूत्रपुरीषे कुर्यात।

[१६] विक्तं वासो नाच्छादयीत।

[१८] दृढव्रतो वधत्रः स्यात् सर्वतः आत्मानं गोपयेत्सर्वेषां मित्रमिव।

[१] तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेत्।

[८]··· सत्यवदनमेव वा। [२-८-८]

इति पारस्करगृह्यसूत्रस्य द्वितीयकाण्डस्य सप्तम्यष्टमी च कण्डिके समासत उक्ते।

गुरुपूर्णिमा दिने सोमे वह्न्यब्धिखाक्षिवत्सरे।
मण्डनप्रियसंस्कारप्रकाशोऽयंप्रकाशितः ॥१॥
श्रीसंस्कारप्रकाशेन कृतयार्चनयानया।
सर्वश्रेयस्करो देवः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥२॥

इति श्रीभवानीशंकरत्रिवेदविरचितः संस्कारप्रकाशः समाप्तः।

में अपनी परछाईं न देखे। जिसके (सिर पर) बाल न हों, या जिसके दाढ़ी मूंछ के बाल उग आए हों ऐसी स्त्री तथा हिजड़े आदि की हँसी न उड़ाये। गर्भिणी को 'विजन्या' (राजस्थानी में उसका पग भारी है) कहे। यदि किसी गौ का बछड़ा या बछड़ी उसका दूध पी रही हो तो उसके मालिक को न बताए (उसे दूध पीने दे)। बोए हुए खेत या खुले में वृक्ष या दीवार आदि की ओट के बिना तथा खड़े-खड़े शौच और पेशाब न करे। फटे पुराने और मैले वस्त्र न पहने (सदा सुन्दर और स्वच्छ वेष धारण किए रहे)। सदा दृढ़ प्रतिज्ञ रहे। इतना सशक्त और बलवान हो कि कोई दूसरा उसका या किसी अन्य का वध न कर सके। उसे सभी प्रकार से अपनी रक्षा करते रहना चाहिए। सबके साथ मित्र भाव रखे। स्नातक संस्कार के पश्चात तीन दिन तक व्रत रखे। अथवा सदा सत्यशील रहे, क्योंकि 'सत्य भाषण' में सब गुण आ जाते हैं।

पारस्करगृह्यसूत्र के द्वितीय काण्ड की सातवीं और आठवीं कण्डिका समाप्त।

श्री संस्कार प्रकाश ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ।

ग्रन्थकृदात्मवृत्तम्

(१)

राजस्थानेषु मेवाड़ः प्रदेशः सुमनोरमः ।
अस्ति रायपुरं तत्र भीलवाड़ाख्यमण्डले ॥१॥
तिवारीलोइमागोत्रो गुर्जरगौड़मौद्गलः ।
तत्र श्री टेकचन्द्रोऽभूत्षट्सुतास्तस्य जज्ञिरे[1] ॥२॥
तेष्वेव रम्यगौराङ्गो बिहारीलालपण्डितः ।
जातौ तस्य सुतौ श्रीमान् कालूरामस्तथापरः ॥३॥
श्री हरदेवशर्मास्ति ज्योतिर्विल्लोकविश्रुतः ।
सुधाकरोऽस्य पुत्रोऽस्ति रोहितोऽस्य सुतः शिशुः ॥४॥

(२)

उज्जयिन्याश्च सिप्रायाः कालूहेड़ास्ति सन्निधौ ।
राज्ञ उदयसिंहस्य नाहर्‌सिंहोऽभवत्पिता ॥५॥
श्रीमान् किशनसिंहोऽभूत् पितास्य धार्मिको नृपः ।
बिहारीलालशर्माणं व्यधात्स राजपण्डितम् ॥६॥
परिवारसमेतोऽसौ तत्रागत्यावसच्चिरम् ।
तत्रैव लब्धजन्मा श्रीकालूरामात्मजोऽस्म्यहम् ॥७॥

---

१. श्रीकृष्णजी, बिहारी लाल जी, मायारामजी, मुरलीधर जी राम प्रताप जी ।
लक्ष्मण जी, लक्ष्मणस्य संततिर्नाभूत्
एषु श्री कृष्णजीत्यस्य नारायण जी, गोविंदरामजी, गणेशलालजीति त्रयः सुतास्तस्य चैषा संतति परम्परा—
१. नारायण जी> १. मांगीलाल २. रामचन्द्रजी (गोविंदरामजीत्यस्य दत्तक पुत्रः)
२. रामप्रतापजीत्यस्यापि> १. रामनाथ जी २. रामेश्वरजी इति द्वौ सुतौ ।
रामनाथ जी>माधव लालः >वंशीलाल>मनोज कुमारः ।
रामेश्वर जी>१. नन्द किशोरः २. गंगाधरः ।
नन्दकिशोर>१. श्यामलाल २. गुरु प्रसादः ।
गंगाधरः>१. बसन्त कुमारः २. गोपालः ।
बसन्त कुमार>१. राजेन्द्रः २. विपिनः ।
गोपालः>१. गोविन्दः २. कृष्णचन्द्रः ।

(३)

दत्त्वैव जन्म मे माता हाँसी बाई दिवं गता।
न्यवात्सीन्मे पिता तत्र गतेऽपि स्वर्पितामहे ॥८॥
पितृव्यं मे समुद्वाह्यात्यजद् ग्रामं त्रिभिः सह।
केलवाड़े मजेरे च जीलवाड़े श्रीचार्भुजे ॥९॥
नाथद्वारे च मेवाड़े सानुजः पाठयन् शिशून्।
पुनरुज्जयिनीं प्राप्य महाकालं समर्चयन् ॥१०॥
ज्योतिर्विज्ञानदाक्ष्यायानुजं तत्र प्रवर्तयन्।
ज्योतिर्विद्भास्करादाप्टे श्रीगोविन्दसदाशिवात् ॥११॥
कतक्यध्ययनायात्रागाच्छ्रीमुकुन्दवल्लभः ।
सार्धं जयपुरं तेनाध्येतुं बधुञ्च प्रेषयन् ॥१२॥
अनुष्ठानादिसंलग्नो विहरन् यत्रकुत्रचिद्।
चन्दूखडयादिग्रामेषु कथाः पुण्याश्च श्रावयन् ॥१३॥
लक्ष्मीनारायणीयेऽथाऽऽलोटस्थे नवमदिन्रे ।
पूजारिप्रमुखस्थानमधितिष्ठन् समादृतः ॥१४॥
प्राप्यवन्तीन् पुनस्तत्र शिवस्याराधने रतः।
उषित्वैवं समाः काश्चिदनिकेतः पिता मम ॥१५॥
जले समाधिमास्थाय महाकाले व्यलीयत।
सूर्यनारायणस्याथ पितुः संकर्षणस्य च ॥१६॥
कुले नारायणस्यर्षेः सपितृव्यस्तदा ऽवसम्।
विद्यारम्भोपवीताद्या उज्जयिन्यां ममाभवन् ॥१७॥

(४)

पितरौ शैशवेऽभ्यस्तौ[1] ब्यावरे तदनन्तरम्।
श्रीहरदेवमाहूय मिश्रो मुकुन्दवल्लभः ॥१८॥
तत्साहाय्येन मार्तण्डपञ्चाङ्गमुपचक्रमे।
पितृव्येन च तेनाथ प्रापितोऽहं सुधासरः ॥१९॥
पुरामृतसरः प्रेम्णापूर्णं लवपुरं ततः।
साहित्यिकप्रवृत्तीनां स्वाध्यायाध्यापनस्य च ॥२०॥
क्षेत्रे मे शोभने आस्तां कौमारेऽप्यथ यौवने।
त्यक्त्वा लवपुरं रम्यं भारतस्य विभाजने ॥२१॥

(५)

प्राकारपरिखारम्यं भव्यद्वारसुशोभितम्।
कुल्यापद्माकरोद्यानवापीप्रासादसंकुलम् ॥२२॥

---

१. अष्टाध्यायी जगन्मातामरकोषो जगत्पिता।

वणिग्जनश्च सामन्तैर्व्याप्तं विद्वद्भिर्भूषितम् ।
शाहपुराख्यमागच्छम्पुरं स्वश्वसुरालयम् ॥२३॥
तत्र नाहरसिंहस्य प्रख्यातनृपतेः सुतः ।
विज्ञो राजाधिराजेति पदवीभाक् प्रजाप्रियः ॥२४॥
श्रीमानुम्मेदसिंहोऽभूदाहिताग्निर्नृपोत्तमः ।
राज्ये सुदर्शनं देवमभिषिच्य सुतं स्वयम् ॥२५॥
वानप्रस्थाश्रमं लेभे राजासौ शास्त्रमर्मवित् ।
तेनैव राजकीयस्य ब्रह्मविद्यालयस्य वै ॥२६॥
प्रधानाध्यापकस्याहं पदे श्रेष्ठे नियोजितः ।
परं साहित्यसेवार्थं त्यक्त्वा तत्पदमुत्तमम् ॥२७॥
दिल्लीं प्राप्तो वसाम्यत्र निर्वहन्येनकेनचित् ।
रविशर्मसुभासौ च भारतानन्दशर्मणौ ॥२८॥
सन्त्येते मे सुताः सौम्या वामाङ्गं मे शकुन्तला ।
रवेर्विजयकृष्णोऽथ पुत्रोऽन्यो जयशङ्करः ॥२९॥
राजीवश्चारविन्दश्च सुभासस्य सुताविमौ ।
गुरुवर्यः शिवः साक्षादाचार्योऽमृतवाग्भवः ॥३०॥
जीवनं मे च साहित्यं कृपया तस्य राजितम् ।
सद्गुरुः साइनाथोऽस्ति शिर्डीतीर्थे प्रतिष्ठितः ॥३१॥
सिद्ध्यन्ति तद्दयादृष्ट्या कार्याण्यखिलान्यपि ।
सेवारतस्य वाग्देव्याः शंकरस्य प्रसादतः ॥३२॥
सप्ततिवर्षदेशीयो हृद्रुग्णोऽप्यधनास्म्यहम् ।

जोशीगणेशलालस्य पूज्यमातामहस्य मे ॥३३॥
प्रपौत्रस्य च पौत्रस्य पन्नालालस्य श्रीमतः ।
भंवरलालस्य पुत्रस्य ओम् प्रकाशस्य शर्मणः ॥३४॥
दिवसेषु विवाहस्य रायपुरेमरवड्योः ।
भ्रात्रोर्नन्दकिशोरस्य गेहे गंगाधरस्य च ॥३५॥
दशम्यां ज्येष्ठकृष्णस्य वह्न्यब्धिखाक्षिवत्सरे ।
वसता बन्धुभिः सार्धमात्मवृत्तं विनिर्मितम् ॥३६॥

केचित् सहायका ग्रन्था:

१. मोक्षमूलर भट्टः (सम्पादकः) — ऋग्वेदः सायणभाष्यसहितः।

२. ज्वालाप्रसाद मिश्रः ,, — शुक्ल यजुर्वेद

३. — पारस्कर गृह्यसूत्रम् (भाष्यपञ्चकोपेतम्)

४. — आश्वलायनगृह्यसूत्रम्

५. — मनुस्मृतिः (अन्ये च स्मृतिग्रंथाः)

६. कालिदास — रघुवंशम्

७. ,, — कुमारसम्भवम्

८. पं० नित्यानन्द पर्वतीय — संस्कार दीपक

९. स्वामि सहजानन्द सरस्वती — कर्मकलाप

१०. पं० मुकुन्द वल्लभजी ज्योतिषाचार्य — कर्मठगुरु

११. रामनाथ बौद्धेय- — विवाहपद्धति

१२. पं० भीमसेन शर्मा — संस्कारचन्द्रिका

१३. पं० बेणीराम शर्मा — विवाहपद्धति

१४. काणे पाण्डुरंग वामन — धर्मशास्त्र का इतिहास ५ भाग

१५. पं० पी० एन० पट्टाभिरामशास्त्री — संस्कारविज्ञान

१६. पं० रामचन्द्र त्रिवेदी शास्त्री — गायत्रीरहस्यदर्पण

१७. दुर्गादत्त झा — संस्कार दीपक

१८. पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी—सम्पादक — ज्योतिष्मती (अनेक अंक)

१९. डा० रुद्रदेव त्रिपाठी — तन्त्रशास्त्र व मन्त्रविद्या आदि से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ

२०. आचार्य अमृतवाग्भव जी महाराज — सप्तपदीहृदय

२१. दुर्गादत्त — ब्रह्मकर्मसमुच्चय

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

बी-4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली-110016